East or weast
Home is the best



धर्मशास्त्रम् ।

संभाषयेत्स्त्रियं नैव पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि ॥ २ ॥

यति स्त्रीके साथ संभाषण न करे और पहलेकी देखी हुईका मनमें स्मरण भी न करै और स्त्रियोंकी कथाओंको भी न करे और लिखी हुई स्त्रीकी मूर्त्तिको भी न देखै ॥ २ ॥

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत्तु मैथुनम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३ ॥

जो संन्यासी होकर फिर स्त्रीके साथ मैथुनको करता है वह साठ हजार वर्ष विष्ठामें कृमिकी योनिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति ।
यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

जिस यतिका चित्त विषयोंमें आसक्त रहता है वह यति मोक्षको कदापि नहीं प्राप्त होता है। इसलिये यति यत्न करके विषयासक्तिसे चित्तको हटावे ॥ ४ ॥

ऐसे ऐसे धर्मशास्त्रके वाक्योंका विचार करके फिर विवेकाश्रम अपने मनमें कहते हैं-यदि यह सुन्दरी इस जगहमें रह जायगी तब हमारा छोटा भाई जो वैराग्य आश्रम है, वह कैसे यहांपर रहेगा ? वह तो बड़ा भीरु है, स्त्रीकी परछांईसे भाग जाता है। और जो कि शमदमादिक संन्यासी हैं वह कैसे इसके साथ सहवास करेंगे ? किन्तु कदापि नहीं करेंगे। और फिर मुमुक्षाभी यहांपर नहीं आवेगी। इन सबके न आनेसे संसारमें मुक्तिकी रेखा भी उच्छिन्न होजायगी। इसलिये इसको यहांसे निकालनेका कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचारके फिर विवेकाश्रम यह विचार करते हैं, प्रथम इससे पूँछना चाहिये कि तू कौन है और क्यों यहांपर आई है ? सो दूसरा आदमी तो इदानींकालमें इस स्थानमें है नहीं जो कि इससे बातचीत करे इसलिये हमहीं इससे पूछते हैं। विवेकाश्रम कहते हैं—हे ललने ! तू कौन है और किसकी है और

कहांसे तू आई है, क्या तुम्हारा प्रयोजन है, यहांपर तू अब रहेगी या चली जायगी ? विवेकाश्रमके ऐसे मधुर वचनोंको सुनकर वह ललना हँसकरके बोली। हे विवेकाश्रम ! तू मेरेको नहीं जानता है, मैं तेरी बडी भगिनी हूँ. चित्तवृत्ति मेरा नाम है, मेरेको तू इसवास्ते नहीं जानता है जो तू मेरेसे पीछे पैदा हुआ है और संसारमण्डलमें भ्रमण करके जिन २ मठोंको तूने त्याग दिया है अपने निवासके योग्य नहीं जाना है, उन सब मठोंमें निवास करके मैंने उनको सुशोभित किया है और यह जो तूने पूँछा है तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरको सुनो—सुन्दर भोगोंको भोगना, सुन्दर गीतोंको श्रवण करना, सुन्दर स्त्रियोंके साथ क्रीडा करना, सुन्दर सुगंधियोंको लगाना, सुन्दर वस्त्रोंको पहरना, सुन्दर भोजनोंके रसोंको आस्वादन करना, सदैवकाल प्रसन्नमन रहना और जहाँतक बनसके विषयानंदको लेना, संसारमें इतर पुरुषोंकोभी विषयानन्द लेनेका उपदेश करना यही मेरा मुख्य प्रयोजन है। और यह जो रमणीक मठ है जिसमें कि तुम इदानींकालमें विराजमान हो, इसी मठमें मेराभी रहनेका संकल्प है क्योंकि यह भोगके योग्य अतीव अच्छा मठ है, इसीमें निवास करके मैं अब पूर्ण रीतिसे भोगोंको भोगूंगी। चित्तवृत्तिके विचारको सुनकर विवेकाश्रम बोले—हे चित्तवृत्ते ! यह मठ मिथ्या भोगोंके भोगनेके लिये नहीं है, क्योंकि स्त्री पुत्रादिरूप भोग तो इतर मठोंमें जो कि मैंने त्याग दिये हैं उनमेंभी होसक्ते हैं, यह मठ तो केवल आत्मानंदकी प्राप्तिके लिये है। यदि तेरेको भोगोंकी इच्छा है तब तो इस मठसे अतिरिक्त जो मठ हैं, जो कि मैंने त्याग दिये हैं, उनमें जाकर तू भोगोंको भोग। इस मठका त्याग करदे, क्योंकि यह मठ विरक्त मुमुक्षु संन्यासियोंके योग्य है, या हमसरीखे ज्ञानवान् आत्मानंदके आस्वादन करनेवालोंके लिये है। यदि तुम्हारेको भी आत्मानंदके लेनेकी इच्छा हो तब इन सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंका त्याग करके मुंडित होकर हमारे साथ निवास करो। चित्तवृत्ति कहती है—हे भ्राता ! तुम्हारी तरह बुद्धिहीन मूर्ख मैं नहीं हूं जो मुंडित होकर भस्म लगाकर शून्य मंदिरोंमें और श्मशानोंमें भ्रमकर स्वादहीन और कल्पित आत्माकी प्राप्तिके लिये दुःखको उठाऊँ। प्रत्यक्ष आत्माका त्याग करके अप्र-

त्यक्षके पीछे राखको छानती फिरूं । मैं तो सुन्दर भोगोंको भोगतीहूँ, सुन्दर वस्त्रोंको पहरतीहूँ, सुगन्धीवाले द्रव्योंको लगातीहूँ, अनेक प्रकारके रसोंवाले भोजनोंको खाती हूँ, अनेक प्रकारके वीणा आदिक बाजोंके शब्दोंको श्रवण करती हूँ, कोमल २ शय्यापर शयन करतीहूँ, सदैवकाल विषयानंदको अनुभव करती हूँ । यह तो आत्मानंद है और इसीका नाम स्वर्गसुख है । जो लोक इस लोकमें सुन्दर स्त्री आदिक भोगोंको भोगते हैं, वेही मानो स्वर्गवासी कहे जाते हैं । जिनको यह भोग प्राप्त नहीं हैं या जो इनका त्याग करके तुम्हारी तरह मुंडित होकर बनोंमें और श्मशानोंमें भ्रमण करते हैं वेही मानो नरकवासी कहेजाते हैं । हे मूढ ! यह संन्यास तो विधातानें लूले लंगडोंके लिये बनाया है तुम्हारे जैसे सर्वांगसम्पन्न पुरुषोंके लिये संन्यास विधान नहीं किया है सो ऐसाही लिखा है—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुंठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥ १ ॥

अग्निहोत्र करना, तीनों वेदोंका पाठ करना, तीन दण्डोंको धारण करना, भस्मका लगाना, ये सब बातें उनके लिये ब्रह्माने बनाई हैं जो कि बुद्धि और पुरुपार्थसे हीन पुरुष हैं । हे विवेकाश्रम ! तुम्हारे जैसे बुद्धिमान् और पुरुषार्थियोंके वास्ते नहीं बनाई हैं ॥ १ ॥

त्रयो वेदस्य कर्तारो मुनिभांडनिशाचराः ॥ १ ॥

मुनि और भांड तथा निशाचर इन तीनोंका बनाया हुआ वेद है, आंख मून्दकर बैठजाना ये मुनियोंका कर्म है सो वेदमें आंख मून्दकर बैठना लिखा है और नाक पकडना ताली बजाना ये भांडोंका काम है सो वेदमें नाक पकडकर ताली बजाना भी लिखा है और पशुओंको मारकर खाजाना ये पिशाचोंका कर्म है सो वेदमें यज्ञोंमें पशुओंको मारकर खाना भी लिखा है और पंडितोंने निरर्थक शब्द भी जरफरी आदिक और स्वाहाकार और स्वधाकर बहुतसे बनाकर वेदोंमें भर दिये हैं । हे विवेकाश्रम ! और बहुत कष्टदायक कर्म कल्पित

उसको कह दो यदि नहीं आना हो तो हमको जवाब देदे हम और जगहसे खरीद करलेवैं । लडकेने फिर जाकर बापके कानमें कहा लाला जल्दी चलो नहीं तो वह जाता है । तिसके बापने और दो चार गाली पंडितको देकर कहा तुम चलो मैं अभी आताहूँ । लडका दो तीन मिनट वहांपर खडा होगया उस उमय ऐसी कथा होतीःथी कि, भगवान् उद्धवसे कह रहे थे हे उद्धव ! सब प्राणियोंमें एकही आत्माको तुम जानो,सो आत्मा मैं ही हूँ मेरेसे भिन्न कोई भी जीव नहीं है, इसलिये किसी प्राणीमात्रसे भी विरोध मत करो । इतनी कथा सुनकर लडका जब दूकानमें आकर बैठा तब एक गैया आकर उसके अनाजके ढौरेमेंसे अन्नको खाने लगी, लडका मनमें विचार करता है जब कि इसका और हमारा आत्मा एकही है तब हम किसको हटावें । इतनेमें तिसका बाप भी कथासे उठकर दूकानकी तरफ चला । दूरसे तिसने देखा गैया तो अनाज खारही है और लडका देख रहा है गैयाको हटाता नहीं है । तब वह दूरसेही गाली देने लगा, समीप आकर तिसने एक लाठी गैयाकी पीठ पर जोरसे मारी गैया तो भाग गई, परन्तु लडका चिल्लाकरके रोने लगा । बापने कहा मैंने तो गैयाको लाठी मारी है, तुम क्यों चिल्लाकर रो उठे हो ? लडकेने कहा आज जो कथामें निकला था कि, सब प्राणियोंमें एकही आत्मा है । मैं उसका विचार कर रहा था और मेरे आत्माका गैयाके आत्माके साथ अभेद होरहाथा इसलिये वह लाठी हमको लगी है । इतना कहकर लडकेने जब कुडता उतार कर अपनी कमर बापको दिखलाई तब उसकी कमर पर लाठी लगनेका निशान पडगया था, बापने गुस्सेमें आकर कहा अरे मूर्ख ! वहांकी कथा वहां परही छोडी जाती है । क्या कोई तुम्हारी तरह साथ बांध लाता है । लडकेने कहा जो हुआ सो हुआ अब हमारा रास्ता दूसरा है, तुम्हारा रास्ता दूसरा है । इतना कहकर लडका वहांसे चलदिया । हे चित्तवृत्ते ! वह लडका उत्तम अधिकारी था इसीवास्ते उसको एकही वाक्य श्रवण करनेसे पूरा बोध हो गया था और तिस कथाके सुननेवाले मध्यम अधिकारी थे क्योंकि यत्किंचित् धारण करतेथे और लडकेका बाप कनिष्ठ अधिकारी था जो कि, एक कानसे सुनता था दूसरेसे निकाल देता था।संसारमें प्रायः करके तो कनिष्ठही अधिकारी बहुत हैं, मध्यम तो

कोई एक है, उत्तम तो करोडोंमें भी मिलना दुर्लभ है. बिना उत्तम अधिकारीके दूसरेका मोक्ष नहीं होता है ॥ ३७ ॥

एक राजाने किसी वार्तासे प्रसन्न होकर अपने मन्त्रीको एक दुशाला इनाम दिया, मन्त्री दुशालेको लेकर जब कि, दरबारसे बाहर निकला तब तिसका नाक बहने लगा उस कालमें वजीरके पास कोई रूमाल नहीं थी, इसलिये वजीरने दुशालासेही नाकको पोंछ दिया । उस जगहपर एक मन्त्रीका द्रोही खडा देखता था उसने राजासे जाकर कहा आपने जो वजीरको इनाममें दुशाला दिया है तिस दुशालेको तुच्छ समझ कर वजीरने तिससे नाक पोंछ दिया है । राजाने वजीरको बुलाकर डाटा और नौकरीसे निकाल दिया । अर्थात् वजीरीसे उतार दिया । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टांतमें परमेश्वरने जो जीवको मनुष्यशरीररूपी दुशाला दिया है तिसके साथ जो विषयभोगरूपी नाकको पोंछता है तिसका आदर नहीं करता है,जो यह शरीररूपी दुशाला मोक्षकी प्राप्तिका साधन है उसको परमेश्वर मनुष्यपदसे उतार कर पशुआदिक योनियोंमें वारवार फेंकता है, क्योंकि यह शरीर वैराग्यकी प्राप्तिका साधन है भोगोंमें राग करनेका साधन नहीं है ॥ ३८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टान्तको तुम सुनो, यह दृष्टान्तभी वैराग्यका उत्पादक है:—

एक राजाके कोईभी पुत्र नहीं था, और अनेक प्रकारके यत्नोंके करनेसे भी तिसके पुत्र जब कि उत्पन्न न हुआ तब राजाने मनमें विचारा, कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे राज्यभी मेरे पीछे बना रहे और कोई एक पुरुष इसका मालकभी न होने पावै; राजाने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि पांच मन्त्री मिलकर राज्यका प्रबन्ध हमेशा किया करें । उनमें एक मन्त्री प्रधान बनाया जावे, वह सवेरे सारे नगरमें घूमकर प्रजाके हालको देखा करे और छह महीनोंके पीछे वह मन्त्री नदी पार कर दिया जाय और एक नया बनाया जावे । फिर दूसरेको पांचोंमें प्रधान बनाया जावे । अब येही प्रबन्ध राजाने जारी करदिया । जो प्रधान बनाया जावे वह छह महीनोंके पीछे नदीपार किया जावे

जब कि, वह नदी पार जंगलमें जाय वहांपर विना खानेसे दुःख पाकर मर जाय इसीतरह बहुतसे मन्त्री जब नदी पार किये गये, तब एक मन्त्री जो प्रधान बना वह बडा चतुर था और जो प्रधान बनता था उसको सब तरहके अखत्यारात मिल जाते थे। उस मन्त्रीने नदीपार बहुतसे मकान और बगीचे तथा कुएँ वगैरह बनवादिये और आरामदारीके लिये सब प्रकारके सामान वहांपर जमा करादिये। जब कि छह महीने पूरे हुए तब वह वजीर नदीके पार जाकर जैसे कि, इसपार आनन्द करता था वैसेही उसपारभी आनंद करने लगा। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाइये। यह मनुष्य जन्म छः महीनेकी वजीरी है जो कि, मूर्ख हैं, वह इसको विषयभोगोंमें लगाकर छः महीनेरूपी अपने पदको व्यतीत कर देते हैं। जो कि, विचारवान् हैं, वह परलोककी सामग्रीकोभी साथ २ जमा करते रहते हैं। नदीपार कौन है लोकान्तरमें जन्मान्तरका होना, लोकान्तरमें जन्मान्तरमें जाकर फिर वहां परभी आनन्दकोही प्राप्त होते हैं; सो विना वैराग्यके लोकान्तरके साधन जमा नहीं हो सकते हैं, इसलिये वैराग्यको आश्रयण करनाही मनुष्यजन्मका मुख्य प्रयोजन है ॥ ३९ ॥

हे चित्तवृत्ते! वैराग्यवान् दो और महात्माओंके दृष्टांतको तुम सुनो:—

एक नगरके बाहर नदीके किनारेपर एक कुटी बनाकर दो महात्मा बडे वैराग्यवान् रहते थे और किसीभी राजा बाबूके द्वारपर नहीं जाते थे। अपनी भिक्षा मांगकर निर्वाह करते थे। प्राणधारणके अतिरिक्त जिनका और कोईभी व्यवहार नहीं था। लोकोंमें उनके गुणोंकी बडी चर्चा फैली, क्योंकि वह बडे भारी त्यागी थे। राजाके दरबारमेंभी उनके त्यागकी चर्चा फैली। तब राजाके मनमेंभी उनके दर्शन करनेकी इच्छा हुई। एक दिन राजाभी पालकी पर सवार होकर उनके पास गये, आगे उसीवक्त वह महात्मा भिक्षा मांगकर लाये थे और हाथ पांव धोकर खानेको बैठे थे। राजाको आते हुए दूरसे जब उन्होंने देखा तब आपसमें विचार किया, इस राजाकी श्रद्धाको हटाना चाहिये नहीं तो राजाके संगसे वैराग्य ढीला हो जायगा। ऐसा विचार

करके जब कि, राजा समीपमें आगये तब वह दोनों आपसमें एक रोटीके टुकडेपर लडने लगे। एक तो कहे तुमने रोटी अधिक खाई है, दूसरा कहे तुमने अधिक खाई है, राजा उनकी लडाईको देखकर दूरसेही लौट गया। राजाने जान लिया यह दोनों कँगले हैं, जो एक रोटीके टुकडेपर परस्पर लडते हैं। हे चित्तवृत्ते! पूर्ण वैराग्यवान् राजोंसे भेट नहीं करते हैं। और न तिनका अन्नही खाते हैं। जो कि, दाम्भिक है, कामनासे भरे हैं वह अनेक प्रकारका झूठा त्याग दिखलाकर राजा बाबुओंको अपना सेवक बनाते हैं। और बहुतसे ऐसे भी हैं, राजा बाबुओंको फँसानेके लिये बीचमें दलालोंको डाल कर उनको अपना पशु बनालेते हैं वही नरकगामी होते हैं॥ ४० ॥

हे चित्तवृत्ते! राजोंकी संगति वैराग्यवान्के लिये बहुत ही बुरी है। जिसको दृढ़ वैराग्य है, वह राजोंसे दूर भागता है। इसमें तुमको दृष्टान्त सुनाते हैं:—

एक महात्मा वैराग्यवान् एक नगरके बाहर बनमें रहतेथे। और उसी नगरके राजाके मंदिरोंमें राजाके पास एक और महात्मा रहते थे। दैवयोगसे वह राजा और तिसके पास रहनेवाले महात्मा दोनों मरगये, कुछ दिन पीछे एक दिन उन वनवासी महात्माके समीप गरीब सत्सगी दो चार बैठेथे। इतनेमें अकस्मात्ही वह महात्मा हँसने लगे, तब उन सत्संगियोंने पूंछा महाराज! बिना ही प्रयोजनके आप आज क्यों हंसे हैं। महात्माने कहा बिना प्रयोजनके हम नहीं हंसे हैं। एक प्रयोजनको लेकरके हम हंसे हैं। राजाके पास जो महात्मा रहतेथे वह और राजा दोनों मृत्युको प्राप्त होगये हैं। राजा तो उत्तम गतिको गया है। क्योंकि, राजाका मन नित्यही महात्मामें और उनके वाक्योंमें लगा रहताथा और वह महात्मा अधोगतिको गये हैं। क्योंकि राजाका अन्न खाकर उनका मन नित्यही राजामें और राजसम्बन्धी भोगोंमें रहता था. हे चित्तवृत्ते! राजोंकी संगतिका ऐसा अनिष्ट फल है इसीवास्ते वैराग्यवान् पुरुषके लिये राजाका अन्न और राजाकी संगतिको करना मना किया है॥ ४१ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और महात्माके दृष्टान्तको सुनोः—

पूर्वकालमें एक विरक्त महात्मा एक लंगोटीको धारण करके कई बरसतक गंगाके तीरपर विचरते रहे. तत्पश्चात् काशीमें आकर उन्होंने निवास किया। जब कि, उनको दश पांच बरस काशीमें व्यतीत होगये तब लोक उनके पास बहुतसे जानेलगे और हरएक आदमी उनको भोजनके लिये अपने घरमें ले जाया करें। तब उन्होंने देखा लोकोंके घरोंमें जानेसे तो बहुत विक्षेप होता है, कोई ऐसी युक्ति करैं जो लोक हमको अपने घरोंमें न लेजाया करें। ऐसा विचार करके उन्होंने लंगोटियोंकोभी फेक दिया। लंगोटियोंके फेंकनेसे उनका मान आगेसे भी सौगुणा अधिक बढगया। धीरे २ अब राजा बाबू उनके चेले होने लगे। थोडेही दिनोंमें हजारों चेले होगये और दिनरात चेलोंकी भीड लगने लगी। अब तो केवल नंगाही रहना रहगया बाकीके सब गुण जाते रहे। क्योंकि, रात दिन उनका मन राजोंकी बडाईमें और मुलाकातमें लगा रहै। एक दिन एक महात्मा उनके पास ऐसे वक्तपरही गये जिस वक्त वे अकेले पडे थे, महात्माने पूँछा क्या हालचाल है? उन्होंने कहा बवासीरकी बीमारीसे मरते हैं, महात्माने कहा लोक तो आपको सिद्ध बताते हैं, तब उन्होंने अपने चित्तका सच्चा हाल कहा, लोक मूर्ख हैं हमको तो सैकडों वासना भरी हैं, न मालूम हम किस नीच योनिमें जन्मेंगे; हमारा तो सब वैराग्य इन धनियोंकी संगतिमें नष्ट होगया। हे चित्तवृत्ते ! निवृत्तिमार्गवालेको प्रवृत्तिमार्गवालेकी संगत खराब करदेती है ॥ ४२ ॥

चित्तवृत्ति कहती है हे विवेकाश्रम ! निवृत्तिवाला पुरुष यदि उपकार करनेके लिये धनी राजोंकी संगत करै तब तो तिसकी कुछ हानि नहीं है। विवेकाश्रम कहते हैं तब भी तिसकी बडी हानि है। इसीमें एक दृष्टान्तको दिखाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! एक राजाके दरबारमें एक भांडने तमाशा किया और अनेक प्रकारके स्वांग राजाको दिखाये, राजाने भांडसे कहा एक विरक्त अवधूत महात्माका भी स्वांग हमको दिखावो। भांडने कहा फिर कभी हम आपको

विरक्तका स्वांग दिखलावेंगे । जब छह महीना व्यतीत होगया और राजा वह बात भूल गये तब वह भांड एक दिन एक लंगोटी बांधकर और वद-नमें धूली लगाकर अतीव विरक्तकी सूरत वनाकर नगरसे थोडी दूर नदीके किनारे जंगलमें आकर आंख मूँदकर वैठ गया। और जो कोई आवे उससे वातचीत भी न करे । कोई आदमी कुछ धर जाय, कोई उठा ले जाय किसीकी तरफ भी न देखै । थोडे ही दिनोंमें नगरमें तिसके महत्त्वकी वर्डी चर्चा उठी, अव तो हजारों आदमी तिसके दर्शनको आने लगे । राजा-तक उसके महत्त्वकी खबर पहुँची । राजा भी परिवारके सहित आये और आकर एक हजार अशरफियोंकी थैली तिसके आगे धर दीं । तिसने राजासे कहा राजन् ! इस उपाधिको उठा लीजिये, यह तो विरक्तके लिये विषके समान है, विरक्तका धर्म नष्ट करनेवाली है । राजाने कहा महाराज ! किसी शुभ काममें लगा दीजिये । विरक्तने कहा राजन् ! आप क्यों नहीं शुभ काममें लगा देते? हम अपने एक हाथमें थुकाकर दूसरेके मुँह पर मलते फिरैं । लेना और दिलवाना ये तो दोनों बराबर ही हैं । जो विरक्त आप नहीं लेता है दूसरेको दिलवा देता है, यह विरक्त नहीं कहा जाता है । क्योंकि, दूसरा जो देता है वह तो उस विरक्तको ही देता है तिसपर तिसकी श्रद्धा है दूसरे पर तो तिसकी श्रद्धा है नहीं, इसलिये प्रतिग्रहका लेनेवाला वह विरक्त हो जाता है । जो एकसे लेकर दूसरेको दिलवाता है वह विरक्त नहीं कहा जाता है. वह दाम्भिक कहा-जाता हैं । विरक्त वही है जो न आप द्रव्यको लेता है और न दूसरेको दिल-वाता है । राजाने कहा सत्य है, राजा अपनी अशरफियोंको लेकर चले आये । दूसरे दिन वह भांड भी वहांसे उठ गया और अपने घरमें जाकर भांडोवाली पगड़ी बांधकर और लम्बा अँगरखा पहनकर राजाके दर्बारमें आकर कहने लगा महाराजकी जै जैकार हो इनाम मिले । राजाने कहा कैसा इनाम ? भांडने कहा कल जो आपने विरक्तका स्वांग देखा है और आप परिवारके सहित हमारे पास आये थे और एक हजार अशरफियोंकी थैली आपने मेरे आगे धरदी थीं मैंने तिसको नहीं लिया था और आपको विरक्तका स्वरूप दिखला दिया था । उसी स्वांगका मैं इनाम मांगता हूँ । राजाने कहा जबकी हमने तुम्हारे आगे

एक हजार अशरफी धर दी थीं, तब तुमने क्यों न लीं ? इतने भारी द्रव्यका त्याग करके अब थोडासा द्रव्य इनाम मांगनेको आया है, यह कौन अकलकी बात है। भांडने कहा राजन् ! आप तो सत्य कहते हैं, यदि मैं उस वक्त वह द्रव्य ले लेता तब फिर आपके पास इनाम मांगनेको न आता परन्तु दो बात इसमें होजाती। एक तो दम्भ साबित होता दूसरा स्वांगको बट्टा लग जाता फिर वह विरक्तका स्वांग पूरा न उतरता, इन दो बातोंको हटानेके लिये हमने आपसे अशरफियोंकी थैलीको नहीं लिया था। इसी वास्ते वह स्वांग निर्दोष पूरा उतर गया। राजा उसकी वार्त्ताको सुनकर बडे प्रसन्न हुए और तिसको बहुतसा इनाम दिया। हे चित्तवृत्ते ! स्वांगका धारण करना तो सहज है परन्तु पूरा उतारना कठिन है॥ ४३॥

हे चित्तवृत्ते ! एक नगरके समीप एक जंगलमें महात्मा रहते थे, एक दिन राजा उनके पास गये और कुछ द्रव्यको राजाने उनके आगे धरकर कहा महाराज ! कोई संसारसे छुडानेवाली वार्ताका मेरेको उपदेश करिये। महात्माने कहा राजन् ! इस द्रव्यके तो हम अधिकारी नहीं हैं, इस द्रव्यको तो आप किसी अधिकारीके प्रति दे दीजिये। क्योंकि, हम जंगलमें रहते हैं इसके रखनेकी जगह हमारे पास नहीं है। फिर इस द्रव्यके पीछे कोई चोर हमारी जानकोही लेवैगा, हम लोगोंके लिये यह अनर्थका हेतु है। जब तुम इसको उठा लेवोगे तब हम तुमको उपदेश करेंगे। राजाने द्रव्यको जब उठा लिया तब महात्माने कहा राजन् ! भारी उपदेश हमारा यही है जो हरवक्त मरनेको याद रखना। राजाने कहा मरनेको याद रखनेसे क्या होगा ? महात्माने कहा पुरुषसे जितने पाप होते हैं वह सब मरनेको भुलानेसे ही होते हैं, जिनको हरवक्त मरना याद रहता है उनसे कोई पाप नहीं होता है। वैराग्यका मूल कारण मरनेको याद रखना ही है, राजाने कहा ठीक॥ ४४॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टान्त तुमको सुनाते हैं:—

एक वैराग्यवान् महात्मा कहींको जाते थे, रास्तामें एक नदी आगई तिस नदीसे पार होनेके लिये बहुतसे लोक नावमें बैठे थे, महात्मा भी उनके साथ तिस नावमें बैठ गये, जब कि नाव किनारेसे खुलकर नदीके बीचमें

पार जानेके लिये चलने लगी तब तिस नावमें एक बद आदमी बैठा था वह उस महात्माको हँसी दिल्लगीसे मारने लगा, इस कदर उसने महात्माको मारा जो उनके खून बहने लगा । इतनेमें आकाशवाणी हुई, महात्मासे आकाशवाणीने कहा यदि आपका हुक्म हो तो इस नावको डुबो दिया जावे । महात्माने कहा हम ऐसे बुरे हैं जो हमारे सबबसे इतने आदमी नाहक डुबो दिये जायँ ? फिर आकाश वाणीने कहा हुक्म हो तो इस बदमाशको डुबो दिया जाय । महात्माने कहा मैं नहीं चाहता हूँ जो कि मेरे साथका डुबोया जाय । फिर आकाशवाणीने कहा कुछ न्याय तो होना चाहिये । महात्माने कहा इसकी बुद्धि धर्ममें हो जावे यही न्याय हो, तुरन्त उसकी बुद्धि धर्ममें हो गई, वह महात्मासे अपनी भूलको बख्शा लगा । हे चित्तवृत्ते ! जो वैराग्यवान् पुरुष है वह किसीका भी बुरा नहीं चाहता है ॥ ४५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयका और भी दृष्टान्त तुमको सुनाते हैं:—

एक नदीमें एक नाव परले किनारेको जाती थी, तिसमें बहुतसे आदमी बैठे थे एक महात्मा परमहंस मुंडित शिर भी तिसमें बैठे थे और उसी नावमें एक साहूकार और एक भांड भी बैठा था । जब कि, नाव चली, तब भांड तमाशा करने लगा और लोगोंको हँसानेके लिये महात्माके शिर पर अपने जूतेको फेरने लगा । बल्कि दो चार जूते तिसने उन महात्माके शिर पर लगा भी दिये महात्मा तब भी कुछ नहीं बोले । उस साहूकारने महात्माको पहचान करके उस भांडको डाटा और महात्मासे कहा मैंने आपको पहँचाना है आप फलाने राजा हैं राज्य छोडकर आपने फकीरी लई है, इस भांडने जो कि आपसे बुराई की है, उसको आप माफ करैं । महात्माने कहा इस भांडने कोई भी बुराई नहीं की है इसने हमारे शिरको दण्ड दिया है क्योंकि यह पहले किसीके भी आगे नहीं झूकता था, यदि इससे भी अधिक इसको दण्ड मिलता तो अच्छा होता । हे चित्तवृत्ते ! इतनी बडी क्षमा होनी, यह वैराग्यका ही फल है ॥ ४६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वैराग्यवान्‌की कथाको सुनोः—

एक नगरके समीप वनमें कुटी बनाकर एक महात्मा रहते थे और किसी राजा बाबूसे मुलाकात नहीं करते थे किंतु भिक्षा मांगकर अपनी क्षुधाकी निवृत्ति कर लेते थे। राजाने जब लोकोंसे उनके त्यागको सुना तव राजाके भी मनमें उनके दर्शनकी इच्छा हुई। तव राजा भी पालकी पर सवार होकर उनके दर्शनको गये। जब कि, महात्माकी कुटीके समीप पहुँचे तब महात्माने अपनी कुटीका दर्वाजा बन्द करलिया। राजाने जाकर कितना ही कुटीके किंवाडेको हिलाया और खोलो २ करके पुकारा परन्तु महात्माने किंवाडा नहीं खोला। तब राजाने कहा आप धन्य हैं और आपका वैराग्यभी धन्य है क्योंकि आपने इस लोकको लात मार दी है। महात्माने कहा आप भी धन्य हैं और आपका राग भी धन्य है, क्योंकि आपने परलोकको लात मारी है। महात्माके उत्तरको सुनकर राजाको भी वैराग्य हुआ तव महात्माने किंवाड खोल दिया और राजासे कहा हे राजन्। संसारके भोगोंमें जो राग है वही इस लोक परलोकमें दुःखका हेतु है, इनसे जो वैराग्य है वही दोनों लोकोंमें सुखका हेतु है और राग ही अज्ञानका चिह्न है, सो पञ्चदशी ग्रन्थमें कहा भी है:—

रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु।
कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरे तरोः॥ १॥

चित्तकी विस्तृत भूमियोंमें अज्ञानका चिह्न पदार्थोंमें राग ही है। जिस वृक्षके कोटरमें आग लगी है तिस वृक्षको हरियालता कैसे हो सक्ती है? किन्तु कदापि नहीं।

हे राजन्! जिन पुरुषोंका स्त्री पुत्रादि भोगोंमें राग बना है, उनको नित्य सुखकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है। राजाने कहा महाराज! गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री पुत्रादिकोंमें राग तो अवश्य ही कुछ न कुछ बनाही रहेगा रागका अभाव तो किसी कालमें भी नहीं होगा। तब गृहस्थाश्रमीका मोक्ष कदापि नहीं होना चाहिये। महात्माने कहा ऐसा नियम नहीं है जो

गृहस्थाश्रममें सदैवकाल स्त्रीपुत्रादिकोंमें राग ही वनारहे किसी कालमेंभी उनसे वैराग्य न हो । किन्तु ऐसा नियम तो है कि, गृहस्थाश्रममें एक न एक दुःख अवश्य बना रहता है उस दुःखके वने रहनेसे कुछ न कुछ वैराग्य भी बना रहता है । क्योंकि, विषयोंमें दुःखबुद्धि ही वैराग्यका हेतु है और विषयोंमें सुख बुद्धि रागका हेतु है । जो कि, अतीव मूढ पुरुष हैं उनको भी यत्किंचित् वैराग्य वना रहता है, परन्तु वह मन्द वैराग्य होता है । जिस क्षणमें स्त्री-पुत्रादिकोंमें कोई कष्ट आकर बना तिसी क्षणमें वह अपनेको और संसारको धिक्कार देने लगते हैं, जब कि वह कष्ट हट जाता है फिर उनका वैराग्य भी नहीं रहता है, वैराग्यका कारण गृहस्थाश्रमही है । क्योंकि जितने वडे २ महात्मा हुए हैं, जैसे रामचन्द्रजी वसिष्ठजी आदिक सबको गृहस्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ है और जितने कि वडे वडे संन्यासी हुए हैं उनको भी प्रथम गृहस्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ है । तत्पश्चात् उन्होंने गृहस्थाश्रमका त्याग कर दिया है, विना गृहस्थाश्रमके तो किसीकी उत्पत्ति भी नहीं होती है । इसलिये गृहस्थाश्रम ही सबका मूल कारण है । और ऐसा भी नियम नहीं है, जो गृहस्थाश्रममें ज्ञान नहीं होता है । क्योंकि, जनकादिक सब गृहस्थाश्रममें ही ज्ञानी हुए हैं । ज्ञानका कारण वैराग्य है, जिसको गृहस्थाश्रममें भी सदैवकाल वैराग्य और विचार बना रहता है, उसके ज्ञानी होनेमें कोई भी सन्देह नहीं है और संन्यासाश्रममें भी जिसका पदार्थोंमें राग बना है, उसके अज्ञानी होनेमें भी कोई सन्देह नहीं है । वैराग्यकोही आत्मज्ञानके प्रति साधनता कही है वह ब्रह्मचर्याश्रममें हो, गृहस्थाश्रममें हो, वानप्रस्थाश्रममें हो, या संन्यासाश्रममें हो, विना वैराग्यके ज्ञान नहीं होता है और ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता है, ऐसा वेदने नियम कर दिया है । हे राजन् ! जो पुरुष गृहस्थाश्रममें अनासक्त होकर उसमें कमलकी तरह रहता है उसके मुक्तिमें कोई भी सन्देह नहीं है । इसमें जनकजीके दृष्टान्तको तुम्हारे प्रति सुनाते हैं ।

जिस कालमें व्यासजीने शुकदेवजीको राजा जनकजीके पास उपदेश लेनेको भेजा है और शुकदेवजीने द्वारपर जाकर अपने आनेकी खबर जनक-

जीको भेजी है, तब जनकजीने शुकदेवजीकी परीक्षाके लिये कहला भेजा अभी द्वार पर ठहरो । जनकजीका यह तात्पर्य था देखें इनको क्रोध होता है या नहीं । तीन दिन शुकदेवजी द्वार पर खडे ही रहे और उनको कुछ भी क्रोध न आया । तब जनकजीने चौथे दिन शुकदेवजीको भीतर बुलाया जब कि शुकदेवजी भीतर गये तब देखा कि,जनकजी स्वर्णके सिंहासन पर स्थित हैं और सुन्दर सुन्दर स्त्रियें चरण दबा रही हैं । और मधुर गीतोंको गायन कर रहीं हैं और अनेक प्रकारके भोग खान पानादिक चारों तरफ धरे हैं, बंदीगण स्तुति कर रहे हैं, जनकजीकी विभूतिको देखकर शुकदेवजीके मनमें घृणा उपजी । यह तो भोगोंमें अति आसक्त है, यह कैसे ज्ञानी होसकते हैं, जो मेरेको पिताने उपदेश लेनेके लिये इनके पास भेजा है । जनकजी शुकदेव-जीके चित्तकी वार्ताको जान गये, तब जनकजीने एक ऐसी माया रची जो मिथिलापुरीको आग लग गई और बाहरसे दूत दौड आये और उन्होंने कहा महाराज मिथिलाको आग लग गई है और अब द्वार पर भी आ गई है थोडी देरमें अन्दर भी आनी चाहती है तब शुकदेवजीके चित्तमें फुरा बाहर द्वार पर तो हमारा भी दण्ड कमण्डलु पडा है कहीं जल ही न जाय । जनकजी जानगये और तिस कालमें जनकजीने इस आगेवाले श्लोकको पढा—

अनन्तवत्तु मे वित्तं यन्मे नास्ति हि किञ्चन ॥
मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन ॥ १ ॥

जनकजी कहते हैं मेरा जो आत्मरूपी वित्त धन है सो अनन्त है अर्थात् जिसका अन्त कदापि नहीं हो सक्ता है । इस मिथिलापुरीके दग्ध होनेसे मेरा तो किञ्चित् भी दग्ध नहीं होता है ॥ १ ॥

इस वाक्यसे जनकजीने पदार्थोंमें अपनी अनासक्ति दिखलाई । अर्थात् जनकजीने अपनी असंगताको दिखलाया । तब शुकदेवजीको पूर्ण विश्वास होगया कि जनक भी ब्रह्मज्ञानी हैं, फिर जनकजीने शुकदेवजीको उपदेश किया । महात्मा राजासे कहते हैं, यदि जनककी तरह तुम भी आसक्तिको

त्याग करके राज्य करोगे तो तुमभी मुक्त होजावोगे । हे चित्तवृत्ते ! राजाभी महात्माके उपदेशको ग्रहण करके ज्ञानवान् होगया ॥ ४७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! वैराग्यका जनक एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं। नदीके किनारे पर एक विधवा स्त्रीका मकान था और तिसके समीप राजाका भी एक बाग था। एक दिन राजा जो अपने बागमें गये तब राजाके मनमें आया यदि इस विधवा स्त्रीका मकान लेकर बागमें मिलाया जावै तो बाग बहुत बडा हो जायगा। बडा होजानेसे सुन्दर चौरस भी हो जायगा। तब राजाने तिस स्त्रीसे कहा तुम अपना मकान हमको देदेवो । स्त्रीने कहा, मेरा पति नहीं है एक लडका और एक छोटीसी मेरी लडकी है। मैं इनको लेकर कहां जाऊँगी ? मैं अपना मकान नही देऊँगी। तब राजाने अपने नौकरको हुक्म दिया इस स्त्रीको मकानसे निकाल दो। नौकरने मार पीटकर निकाल दिया। स्त्रीके पास एक गधा था वह गधेपर लडका लडकीको चढाकर रुदन करती हुई वहांसे चल पडी। जब कि, वह रोती रोती थोडी दूर गई तब वहांपर एक महात्मा खडे थे। उन्होंने स्त्रीसे,पूछा तू क्यों रुदन करती है ? स्त्रीने अपना सब हाल उन महात्मासे कहा। महात्माने कहा तू हमारे साथ एक दफा राजाके पास चल, हम एक युक्तिसे राजाको समझावेंगे। स्त्री उनके साथ चलपडी जब कि महात्मा राजाके समीप गये, तब राजासे कहा महाराज ! इस स्त्रीकी इच्छा है जो थोडीसी मिट्टी मेरे मकानकी जमीनकी मुझको मिले जो मैं जहांपर जाकर मकान बनाऊँगी वहांपर उस मिट्टीको गाडकर अपने बडोंकी एक समाधि यादगारीके लिये बनाऊँगी, राजाने कहा खोद लेवे, महात्माने बहुतसी मिट्टी खोदकर एक बोरामें भरकर राजासे कहा महाराज ! इस मिट्टीके बोरेको जरा आप उठवाकर गधे पर लदवादीजिये, राजाने कहा क्या इतना भारी मिट्टीका बोरा हमसे उठाया जाता है ? जो हम इसको गधेपर लदवादें। महात्माने कहा जब कि यह मिट्टीका बोरा आपसे नहीं उठाया जाता है तब इतनी बडी जमीन और मकान आपसे कैसे उठाया जावैगा ? जो आपने इसका छीन लिया है फिर इसको किस तरहसे उठाकर आप मरती बार अपने साथ लेजावैंगे, महात्माकी वार्ताको सुनकर राजाको

भी वैराग्य होगया और तिस स्त्रीके मकानको फेर दिया, बल्कि अपना भी बाग तिसीको देदिया । हे चित्तवृत्ते ! संसारमें जो कि मूर्ख अज्ञानी हैं, दूसरोंकी जमीन और धनको अधर्मसे दबालेते हैं, क्योंकि उनको इतना भी ज्ञान नहीं है जोकि यह शरीर भी तो साथ नहीं जायगा तब और पदार्थ कैसे जायँगे ? यदि ऐसा विचार उनको हो तब क्यों दूसरोंकी जमीनको दबालेते ? वही लोक मरकर बार बार पशुयोनिमें जाते हैं और जोकि विचारशील वैराग्यवान् हैं वह ऐसा नहीं करते हैं क्योंकि वह जानते हैं धर्म अधर्म ही पुरुषके साथ जाते हैं । और सब माल धन तो मरे पीछे दूसरे तिसके वारस लेलेतेहैं इसलिये वैराग्यकाही आश्रयण करना उत्तम है ॥ ४८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! संसारमें पुरुष कौन और स्त्री कौन है ? इसपर एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं । एक राजाके घरमें सन्तति नहीं होती थी बहुतसा यत्नकरनेसे एक कन्या तिसके घर उत्पन्न हुई । वह कन्या बाल्यावस्थासेही वस्त्रोंको नहीं पहनती थी जब कि वह बडी होगई तब भी उसकी वही आदत रही वस्त्रोंको न पहरना किंतु नंगीही रहना तिसको पसन्द था । राजाने कोटिन यत्न किये तब भी तिसने वस्त्र न पहने जब कि जोरसे तिसको वस्त्र पहनाते तब तुरन्त फाड-कर फेंकदेती । एक दिन दैवयोगसे वहांपर एक महात्मा साधु आगये । उनको देखकर वह लडकी लज्जायमान होगई और तुरंत उसने वस्त्रोंको पहर लिया । तब राजाने प्रसन्न होकर अपनी लडकीसे पूछा आज क्या उत्तम दिन है ? जो आपको सुमति आगई है । भला यह तो बताओ आगे बडे २ हमने यत्न किये तब भी तुमने वस्त्रोंको न पहरा और आज एक साधुको देखकर आपसे आप तुमने वस्त्रोंको पहर लिया इसका कारण क्या है ? उस कन्याने कहा, राजन् ! स्त्रीको मर्दसे शरम लज्जा होती है स्त्रीसे स्त्रीको लज्जा नहीं होती है, जबसे मैंने होश सँभाला है, तबसे तुम्हारे नगरमें कोई भी हमको पुरुष नहीं दिखाई पडा, आज हमने एक पुरुषको देखा है उससे हमने लज्जा की है, लज्जा होनेसे मैंने कपडोंको भी पहन लिया है । हे राजन् ! मर्द नाम उसका है जिसने अपने शरीर और इंद्रियोंको अपने काबूमें कर लिया है और जिसने अपने शरीर और इंद्रियोंको अपने वश नहीं किया है वह मर्द नहीं है । सो

वैराग्यवान्से बिना दूसरा कोई भी अपने इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर-सक्ता है इसलिये वैराग्यवान् पुरुष ही मर्द है, रागवान् स्त्री है। आज मैंने एक वैराग्यवान्को देखा है इसलिये वस्त्रोंको भी मैंने पहन लिया है ॥

हे चित्तवृत्ते ! गार्गीने भी इसी वार्ताको याज्ञवल्क्यके प्रति कहा है—

आत्मपुराण।

अहं पश्यामि विप्रेन्द्र जगदेतदपौरुषम् ।
नपुंसकमहं तद्वदहं स्त्री च पुमानहम् ॥ १ ॥

गार्गी कहती है हे याज्ञवल्क्य ! इस जगत्को मैं अपौरुष अर्थात् पुरुषसे हीन देखती हूँ, मैं ही नपुंसक हूँ, मैं ही पुरुष हूँ, मैं ही स्त्री हूँ ॥ १ ॥

नपुंसकः पुमान् ज्ञेयो यो न वेत्ति हृदि स्थितम् ।
पुरुषं स्वप्रकाश तमानंदात्मानमव्ययम् ॥ २ ॥

जो पुरुष अपने हृदयमें स्थित आत्माको नहीं जानता है, वह नपुंसक है। कैसे आत्माको ? जो पुरुषरूप है और स्वप्रकाश आनन्दरूप अव्यय है ॥ २ ॥

अयमेव पुमान् योषिन्नाहं पीनपयोधरा ।
यतः स्वस्मात्परस्तस्य पतिरस्ति स्त्रिया यथा ॥ ३ ॥

गार्गी कहती है जो पुरुष हृदयमें स्थित आत्माको नहीं जानता है वही स्त्री है, मैं पीनपयोधर स्त्री नहीं हूं क्योंकि जैसे स्त्रीका अपनेसे भिन्न पति होता है. तैसे तिसने भी अपनेसे भिन्न पति मान रक्खा है ॥ ३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो पुरुष वैराग्यसे और आत्मविचारसे शून्य है, वह पुरुष नहीं है किन्तु शास्त्रदृष्टिसे वह स्त्री है ॥ ४९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अब तेरेको एक प्रमादी धनीकी कथाको सुनाते हैं:—

दक्षिण देशके एक नगरमें धनमदांध एक बनियां रहता था, अपने तुल्य किसीको भी वह बुद्धिमान् और धनी नहीं जानता था। दिन रात्रि द्रव्यके ही कमानेके फिकरमें रहता था और कभी भी किसी साधु ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता था। दैवयोगसे एक दिन एक महात्मा उस

रास्तासे आनिकले कि जहांपर उसकी दुकान थी । महात्मा उसकी दुकानके सामने जाकर खडे होगये और तिस बनियेकी तरफ देखने लगे । वह बनियां अपने धनके मद करके ऐसा उन्मत्त था जो उसने आंखको उठाकर महात्माकी तरफ न देखा, क्योंकि धनमद बडा भारी होता है । आत्मपुराणमें कहा है:—

समर्थः श्रीमदांधोयं राजानं देवतां गुरुम् ।
अवजानाति सहसा स्वात्मनो बलमाश्रितः ॥ १ ॥

जो पुरुष समर्थ है और धनके मद करके अंधा हो रहा है, वह अपने बलको आश्रयण करके राजाकी, देवताकी तथा गुरुकी भी अवज्ञा कर देता है ॥ १ ॥

समर्थो धनलोभेन परदारान् धनादिकम् ।
हृत्वा चोपहसत्यन्यान्सर्वशोच्यो नराधमः ॥ २ ॥

जो समर्थ धनी है वह धनके लोभ करके दूसरोंकी स्त्रियोंको और धनादिकोंको भी जबरदस्ती छीन लेता है और हंसता है, वही पुरुषोंमें अधम है ॥ २ ॥

मातरं पितरं पुत्रान् ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।
कर्मणा मनसा वाचा समर्थो हंति मोहितः ॥ ३ ॥

धनमदांध, समर्थ जो है सो माता, पिता, पुत्र और वेदपाठी ब्राह्मणको कर्म करके मन करके वाणी करके मारता है ॥ ३ ॥

फिर महात्माको दया आई क्योंकि महात्माका दयालु स्वभाव होता ही है महात्माने मनमें कहा इस कीचसे इसको निकासना चाहिये ऐसा विचार करके उस साहूकारसे कहा राम राम कहो, वह साहूकार बोला ही नहीं, जब कि दो तीन बार कहनेसे भी वह नहीं बोला तब महात्माने सोचा यह भारी मूर्ख है इस तरहसे यह नहीं मानेगा, इसको दण्ड दिया जावैगा तब यह मानेगा ऐसा विचार करके महात्मा नदीके तीरपर चले गये । सबेरे वह

साहूकारभी नदीके तीरपर स्नान करनेको जाताथा दूसरे दिन सवेरे जब कि साहूकार नदीपर स्नान करनेको गया तब महात्माने अपने योगबलसे अपनी उस बनियांकी तरह सूरत बनाली । वह तो अभी स्नानही उधर करने लगा इधर महात्मा तिसके घरकी तरफ आये, आगे लडकोंने देखा पिताजी आज जल्दी स्नान करके चले आये हैं, उन्होंने पूछा आज जल्दी आनेका क्या कारण है ? उन्होंने कहा आज एक ठग हमारी सूरत बनाकर आवैगा हम देख आये हैं वह नदी किनारे पर बैठा बनाता, था तुम लोगोंने होश्यार रहना अभी थोडी देरमें वह आवेगा उसको धक्के देकर निकाल देना यदि कुछ बोले तब दो चार जूता लगाना लडकोंसे ऐसा कहकर वह तो भीतर जाकर पलंग पर लेट रहे । उधर सेठजी स्नान करके घरको चले । जब कि समीप घरके पहुँचे तब लडकोंने डाटा क्यों तुम इधरको आते हो ! सेठने कहा बेटा ! मैं अपने घरको आता हूँ तुम हमारे लडके हो मैं तुम्हारा बाप हूँ आज क्या तुमको कोई पागलपना तो नहीं होगया जो तुम हमको ऐसा कठोर शब्द बोलते हो । लडकोंने कहा हम तुम्हारे लडके नहीं हैं, जिसके हम लडके हैं वह घरमें बैठे हैं तुम तो कोई बहुरूपिया हो । हमारे बापका स्वांग बनाकर हम लोगोंको वंचन करनेके लिये आयेहो । सूधी तरहसे पीछेको लौट जावो नहीं तो मार खाकर जावोगे । ज्योंही सेठ आगेको बढा त्योंही दो चार धक्के लगा दिये तब सेठने गुस्सेमें आकर ज्योंही लडकोंको गाली दी त्योंही एक लडकेने दशपांच जूते सेठके सिरपर लगादिये अब तो सेठजी भागे और राजाके पास जाकर सब अपना हाल कहा । राजाने सेठके लडकोंको बुलाकर जब पूँछा तब उन्होंने कहा हमारा बाप तो हमारे घरमें है यह तो कोई बहुरूपिया है । राजाने घरवाले उनके बापको बुलाकर देखा तो दोनोंकी एकही तरह सूरत दिखाई पडी किसी अंगमेंभी यत्किञ्चित् फरक नहीं था तब राजा बडे शोचमें पडे अब किसको सच्चा कहा जावे और किसको झूठा कहा-जावे । महात्माने कहा राजन् ! यदि यह असली सेठ है तब यह इस वार्ताको बतावें बडे लडकेकी शादीमें कितना रुपया लगा था, जब कि मकान

बना था तब मकानपर कितना रुपैया लगा था । राजाने सेठसे पूँछा सेठने कहा हमको याद नहीं है महात्माने योगबलसे सब जबानी बतला दिया जब कि वही खाता देखा गया तब वह ठीक निकला । राजाने भी सेठको झूठा करके निकाल दिया । अब तो सेठजीका सब धनका मद उतर गया और नदीके किनारे पर जाकर अपने भाग्यको धिक्कार देकर रोने लगे । दूसरे दिन महात्मा सबेरे नदीपर स्नान करनेको जब गये तब देखा सेठजी रुदन कररहे हैं और बडे दुःखी होरहे हैं तब महात्माने अपना असली रूप बना लिया और सेठके पास जाकर ऐसा कहा राम राम कहो, महात्माके वाक्यको सुनकर सेठ कांपने लगा और राम राम करके पुकारने लगा, जब कि सेठ वार वार रामको प्रेमसे कहने लगा तब महात्माने सेठसे कहा अब तू धक्के और जूते खाकर राम राम करने लगा है यदि पहलेसेही तू राम नामसे प्रेम रखता तब क्यों जूते खाकर घरसे निकाला जाता ? जिन लडकोंके सुखके लिये तुमने अनर्थोंसे धनको जमा किया था उन्ही लडकोंने तेरेको जूते मारकर निकाल दिया है फिर जो उनसे तू राग करेगा तब आगेसे भी अधिक जूते खायगा. अरे मूर्ख ! तूने अपना जन्म व्यर्थ खो दिया अब तो वैराग्यको प्राप्तहो, महात्माके चरणोंपर सेठ गिर पडा तब महात्मानेकहा जो तुम्हारे घरमें सेठ घुसे थे तुमको दण्ड दिलानेके लिये सो हमही हैं, अब तुम अपने घरमें जावो और आनन्दसे रहो परन्तु उन्माद मत करना, धर्म करना सत्संग करना ऐसा उपदेश करके महात्मा तो चले गये और सेठ घरमें आकर उसी दिनसे वैराग्यपूर्वक धर्म करने लगा और महात्माओंकी सेवा करने लगा ॥ ९० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और आलसी वनियेंकी कथा तुमको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! पूर्वदेशके एक नगरमें एक वनियां बडा धनी रहता था धनके कमानेमें और संग्रह करनेमें तो वह बडाही निपुण था, परन्तु भजन स्मरणमें बडा आलसी था, किसी क्षणमें भी वह वैराग्यको प्राप्त न होता और न कभी मुखसे राम इस नामका उच्चारण करता था, परन्तु तिसकी स्त्री बडी विचारवाली थी, और भजन स्मरणमें तथा उदारतामें भी वह एक ही

थी, वह नित्यही पतिसे कहाकरे हे स्वामिन्! यह मनुष्यशरीर विषयभोगोंके लिये नहीं है यह परमेश्वरकी भक्ति करनेके लिये है आपभी नित्य एक दो घडी भजन स्मरण किया करें क्योंकि बार बार यह शरीर मिलना कठिन है तब बनियां कहा करे कोई जल्दी नहीं है भजन स्मरणभी कर लेवैंगे। इसी तरह कहते सुनते बहुत काल बीतगया। एक रोज बनियां बीमार होगया स्त्रीसे बनियांने कहा किसी वैद्यको बुलावो स्त्रीने एक वैद्यको बुलाया वैद्यने आकर बनियांका हाथ देखकर दवाई लिखदी और तिसका अनुपान भी बता दिया स्त्रीने दवाईको मँगाकर ताखे पर धर दिया, दिन भर बीत गया बनियांको दवाई तिसने न दी, तब संध्याके समय बनियाँने स्त्रीसे कहा औषधिको आपने मंगाया है वा नहीं? स्त्रीने कहा औषधिको मँगाकर मैंने रखा है, बनियांने कहा तिसको तू मेरे प्रति देती क्यों नहीं है? स्त्रीने कहा कुछ जल्दी नहीं है आज न दी जायगी कल दी जायगी, कल न दी जायगी परसों दी जायगी, कभी तो दी जायगी। बनियांने कहा यदि मैं मरगया तब वह औषधि हमारा क्या काम देगी? स्त्रीने कहा मरनेको तो आप मानते नहीं हैं यदि मानते होते तब मैं जब आपको भजन स्मरणके लिये कहती थी आप यही कह देते थे कोई जल्दी नहीं है, फिर होजायगा। यदि आपको मरना याद होता तब ऐसा न कहते क्योंकि क्या जाने फिर तबतक शरीर रहे या न रहे, आज औषधीके लिये आप मरनेको भी याद करने लगे हैं। यदि इस जन्ममें न भी औषधि दी जायगी तब दूसरे जन्ममें दी जायगी यदि कहो औषधिकी हमको इसी जन्ममें जरूरत है, क्योंकि वर्तमान दुःख तिसके बिना दूर नहीं होता है। तब भजन स्मरणकी भी तुमको इसी जन्ममें जरूरत है फिर क्या जानै कहीं पशु आदि योनि मिल जावेगी तब उस योनिमें तो होना कठिन है। स्त्रीके उपदेशसे बनियांको भी वैराग्य हुआ और भजन स्मरणमें लगा स्त्रीने औषधि पिलादी वह अच्छा भी होगया। हे चित्तवृत्ते! बिना वैराग्यके पुरुषका मन भजन स्मरणमें भी नहीं लगता है इसलिये वैराग्यही कल्याणका कारण है॥ ९१॥

हे चित्तवृत्ते ! विना वैराग्यके देहादिकोंमें जो अभिमान होरहा है वह भी दूर नहीं होता है । इसीपर तुमको एक महात्माके दृष्टांतको सुनाते हैं ।

एक महात्मा गुरु और एक उनके चेला दोनों देशाटन करते फिरते थे । एक दिन रास्तेमें चलते २ चेलेने गुरुसे कहा महाराज ! कुछ उपदेश करिये । गुरुने कहा बेटा ! कुछ बनना नहीं जो पुरुष कुछ बनता है वही मारा जाता है जो कुछ भी नहीं बनता है उसको कालभी मार नहीं सक्ता है । चेलेने कहा सत्य वचन । आगे थोडी दूरपर सडकके किनारे एक राजाका बाग था उस बागमें एक बडी भारी कोठी बनी थी उसी बागमें गुरु चेला चले गये और तिस कोठीमें जाकर एक कमरेके पलँग पर गुरु सो रहे । दूसरे कमरेके पलँगपर चेला सोरहा । जब कि तीसरा पहर हुवा तब राजा हवा खानेके लिये तिस बागमें आये प्रथम उस कमरेमें गये जिसमें चेला पलँगपर सोया था तिसको देखकर राजाके सिपाहीने कहा अरे तू कौन है ? जो महाराजके पलँगपर सो रहा है । चेलेने कहा मैं साधु हूं सिपाहीने कहा तू कैसा साधु है, तू तो बडा मूर्ख है, जो महाराजके पलँगपर आकर सो रहा है, दो चार थप्पड लगाकर तिसको बाहर निकाल दिया, फिर राजा घूमते फिरते उस कमरेमें जा निकले जिसमें गुरु पलँगपर सोये थे, सिपाहीने जाकर कितनाही पुकारा परन्तु वह आगेसे बिलकुल न बोले । जब कि, सिपाहीने पकडकर हिलाया तब आंख मलते २ उठे परन्तु मुखसे कुछ भी न बोले तब राजाने सिपाहीसे कहा तुम इनको कुछ मत कहो मालूम होता है यह कोई महात्मा है । इनको बागसे बाहर कर देवो सिपाहीने उनका हाथ थामकर उनको बागसे बाहर कर दिया रास्तामें जाकर दोनों गुरु चेला फिर मिले तब चेलेने गुरुसे कहा महाराज ! हमको तो बडी मार पडी है गुरुने कहा कुछ बना होगा । चेलेने कहा मैं कुछ बना तो नहीं था कहा था मैं साधु हूं, गुरुने कहा फिर साधु तो बना जो कुछ बनता है वह मारा जाता है । देखो हम कुछ भी नहीं बनेथे इसलिये हम मारे भी नहीं गये हैं । महात्मा वहीहै, जो कुछ भी नहीं बनता है कि, जो मान और प्रतिष्ठाके लिये विरक्त और अवधूत बनते हैं वह भी

मारे पीटे जाते हैं क्योंकि जो कुछ बनते हैं और अपनेको मानी और प्रतिष्ठित मानते हैं, वेही मारे पीटे जाते हैं क्योंकि उनमें अनेक प्रकारकी कामना भरी रहती हैं। इसीसे वह आडम्बर करके मानके लिये चेले चाटियोंको बढाते वह शास्त्र दृष्टिसे महात्मा नहीं कहे जाते हैं; शास्त्रदृष्टिसे वही महात्मा है जो निष्काम है ॥ ९२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी अभिमानपर तेरेको एक और दृष्टांत सुनाते हैं:—

पञ्जाबके मालवा देशके एक ग्रामसे हरद्वारके मेलेपर बहुतसे लोक जाने लगे। तब उस ग्रामके निवासी एक चमारने जिमीदारोंसे कहा मैं भी आपके साथ हरद्वारके मेलेपर जाऊँगा। जिमीदारोंने कहा तू भी चल वह चमार भी उनके साथ हरद्वारपर गया और सबके साथ तिसने भी गंगामें स्नान करके पंडोंको दान यथाशक्ति दिया। पंडे फिर सब यात्रियोंको अक्षयवटके नीचे लेगये और सबसे यह वार्ता कही तुम सब कोई इस वटके नीचे एक २ फलको छोड देवो सबने एक २ फलको छोड दिया। फल छोडनेका यह तात्पर्य है जिस फलको लोक वहांपर छोड आते हैं अर्थात् जिस फलका त्यागकर देते हैं फिर उस फलको नहीं खाते हैं। चमारसे फल छोडनेके लिये पंडेने कहा तब चमारने कहा मैं आजसे बोझा ढोना छोड देता हूं। आजसे फिर कभी भी मैं बोझा नहीं ढोवोंगा, ऐसा कहा चमारने और पंडेने जाना बोझा ढोना भी कोई फल ही होगा। वहांसे फिर जब सब यात्री अपने २ घरोंको आये तब चमार भी उनके साथ अपने घरको लौट आया। और अपने घरमें आनन्दसे रहने लगा। कुछ दिनके पीछे जब कि बिगार पडी तब सिपाहियोंने आकर उसी चमारको बिगारी पकडा। चमारने उनसे कहा मैं हरद्वार अक्षयवटके नीचे बोझा ढोनेको छोड आया हूं, सिपाहियोंने उसकी बातको न समझा और तिसको पकडकर जब कि लेचले तब चमारने कहा तुम नम्बरदारोंसे चलकर पूछ लेवो, मैं हरद्वारपर बोझा ढोना छोड आयाहूं। चमार सिपाहियोंको नंबरदारके पास लेगया और उनसे कहने लगा नंबरदार साहिब मैं आपके सामने धर्मसे कहताहूँ कि, हरिद्वार पर बोझा ढोना छोड आयाहूँ

और यह सिपाही इस बातको नहीं मानते हैं आप इनको समझा दीजिये। नंबरदारोंने कहा बोझा ढोना तो तुम छोड आयेहो, परन्तु चमारपना तो तुमने नहीं छोडा है जबतक तुम्हारेमें चमारपना रहैगा तबतक तुमको बोझ ढोना पडेहीगा। फिर सिपाही तिसको पकडकर लेगये। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है दार्ष्टान्तमें यह जो चमारका स्थूल शरीर है, तिसके अभिमानीका नाम ही चमार है, जाती आदिक जो कि शरीरके धर्म हैं उनको जो आत्माके धर्म मानता है वही चमार है अभिमानसे जो रहित है वही ज्ञानी है॥ ९३॥

हे चित्तवृत्ते! विवेक वैराग्यके विना ज्ञानवान् भी शोभाको नहीं पाता है इसीपर एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

उत्तरखंडमें एक धर्मात्मा राजा रात्रिके समयमें भेष बदलकर अपने नगरमें नित्यही घूमता था जिसको वह गरीब दुःखी जानलेता उसके दुःखको धन देकर दूर कर देता। एक दिन रात्रिके समय एक अँधेरी गलीमें राजा जा निकला और अँधेरेमें खडा होकर एक गरीब घरवालोंकी बातोंको सुनने लगा उस घरवाले बडे गरीब थे नित्यकी मजदूरीसे अपना पेट भरते थे उस दिन उनको कहींसे मजदूरी नहीं मिली थी. वह परस्पर अपने दुःखकी बातोंको कर रहे थे। राजाने उनके भीतर जरासा ताक दिया उन्होंने जाना कोई बाहर चोर खडा है, आकर उन्होंने राजाको पकड लिया और मारने लगे। चोरकी आवाज सुनकर इधर उधरसे दो चार आदमी बत्ती लेकर आये जब चांदनेमें उन्होंने देखा तब उनको मालूम हुआ कि, चोर नहीं है यह तो राजा है तब अपनी भूलको दरशाने लगे, राजा अपने घरमें चले गये। हे चित्तवृत्ते! यद्यपि वह राजाही थे तथापि राज्यकी सामग्री जो कि, छत्र चामरादिक हैं उनके न होनेसे उन्होंने मार खाई क्योंकि छत्र चामरके बिना वे राजा जान नहीं पडते थे वैसे ही ज्ञानवान्के चिह्न भी छत्र चामरादिक विवेक वैराग्य हैं इनके विना ज्ञानवान् भी शोभाको नहीं प्राप्त होता है और दुर्जनोंके कुवाक्यरूपी मारको खाते हैं इसलिये ज्ञानवान्को भी वैराग्ययुक्त रहना चाहिये॥ ९४॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वैराग्यवान् राजाकी कथाको तुम सुनो:—

एक राजा बडा धर्मात्मा और सत्संगी था। राज्य करते २ जब कि, उसको बहुत काल व्यतीत होगया तब एक दिन उसको राज्यसे बडी ग्लानि हुई। क्योंकि, राज्यके प्रबन्ध करनेमें अनेक प्रकारके विक्षेप नित्यही बने रहते हैं। राजाको जब वैराग्य हुआ तब उसने अपने पुत्रको राज्य सिंहासन देदिया और आप वनमें जाकर तप करने लगा। राजाने जब राज्यको त्याग दिया तब उसके त्यागकी बडी चर्चा फैली। उसके राज्यके समीप एक दूसरे राजाका राज्य था, तिस राजाको भी माळूम हुआ कि, अमुक राजाने राज्यको त्याग दिया है, तब इस राजाको तिसके मिलनेकी इच्छा हुई। यह राजा वनमें शिकारके बहानेसे जाकर तिसकी खोज करने लगे। खोजते २ एक वनमें एक वृक्षके नीचे बैठे। उनको देखकर राजाने दंडवत प्रणाम किया और समीप बैठकर क्षेम कुशलको पूछा। तत्पश्चात् कुछ सत्संगकी बातें होनेलगीं। जब कि, राजा आने लगे तब राजाने कहा, भगवन् ! एक मेरी प्रार्थना है वह यह है जो आप कल सवेरे मेरे गृहमें चलकर भोजन करैं, इस मेरी इच्छाको आप पूर्ण कर दीजिये। उन्होंने कहा अच्छा कल हम आपके घरपर सवेरे आकर भोजन करेंगे। राजा अपने मकानपर चले आये। दूसरे दिन सवेरे राजाने अपने भृत्योंको रास्तामें खडा करदिया और कहा जिस कालमें वह महात्मा आवें तुरन्त हमको खबर करनी। जब कि, जंगलसे वस्तीकी तरफको आये उनको दूरसेही आते देखकर राजाके भृत्योंने जाकर कहा महात्माजी चले आते हैं। राजा उनकी पेशवाईको गये और उनको लाकर अपने सिंहासनपर बैठाया। थोडी देरके पीछे राजाने अपने मन्त्रीसे कहा महात्माको लेजाकर हमारी विभूति सब दिखलादेओ। मन्त्रीने महात्माको लेजाकर जितने कि, उत्तम २ राजाके घोडे हाथी और जवाहिरात वगैरह पदार्थ थे वे सब दिखलादिये। राजाने वजीरसे पूँछा, महात्मा सब पदार्थोंको देखकर कुछ बोले थे ? वजीरने कहा कुछ भी नहीं बोले थे। इतनेमें राजाका भोजन तैयार होगया।

राजा महात्माको भीतर लेगये और एक आसनपर बिठाकर आप दूसरे आसनपर बैठे। रानीने दो थालोंमें भोजन परोसकर दोनोंके आगे धर

दिया । एक २ थालमें चार २ बाजरेके पिसानकी रोटी और थोडा बथुवेका साग । महात्मा भोजनको देख करके हंसे तव राजाने कहा आप हमारे हाथी घोडे और खजाने वगैरहको देखकर नहीं हंसे हैं अब इस भोजनको देखकर आप क्यों हंसते हैं; कुछ कृपणताके सबबसे मैं ऐसा मोटा खाना नहीं खाता हूँ, इस मोटे खानेका सबब यह है, मैं राज्यसम्बन्धी खजानेसे एक पैसा भी नहीं लेता हूँ, क्योंकि राज्यके अंशको मैं अच्छा नहीं समझता हूँ, ये जो हमारे घरके पीछे पांच दस बीघा जमीन है इसमें मैं और रानी दोनों मिलकर खेती करते हैं, उसमें जो कुछ उपजता है उसीको हम खाते हैं। इसीसे हमारा खाना मोटा है । महात्माने कहा तुम धन्य हो और तुम्हारा वैराग्य भी धन्य है । एक तो वह लोक है हम सरीखे जिन्होंने राज्यको त्याग करके फकीरी ली है । तव भी उनको फकीरीकी लज्जत नहीं मिली है । एक आप सरीखे हैं जो कि अमीरीमें फकीरी कर रहे हैं । अमीरीमें फकीरी करनी बडे शूरोंका काम है इसी वार्तापर हम हंसे हैं । हे चित्तवृत्ते ! वैराग्यवान् घरमें भी रहकर शोभाकोही पाता है । रागवान् वनमें रहकरके भी शोभाको नहीं पाता है. ॥ ९९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अप्राप्त पदार्थके त्याग करनेवाले पुरुष तो संसारमें बहुतही हैं और वह त्यागी भी नहीं कहे जाते हैं। त्यागी वही कहा जाता है जिसको पदार्थ मिले और तिसको त्याग देवे वही त्यागी है । सो ऐसे सच्चे त्यागी संसारमें हैं क्योंकि, विना तीव्र वैराग्यके सच्चा त्याग नहीं होसक्ता है । अब हम तुमको सच्चे त्यागीके इतिहासको सुनाते हैं:—

एक राजा सालके साल जन्माष्टमीपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता था । एक समय राजाने जन्माष्टमीका उत्साह किया और ब्राह्मणोंको नेवता भेज दिया । जन्माष्टमीके व्रतके दूसरे दिन जब कि, भोजनका समय हुआ, तव दूर २ के ब्राह्मण भोजनके लिये आने लगे । दैवयोगसे एक तपस्वी ब्राह्मण भी कहींसे आ निकले । राजा जब सब ब्राह्मणोंके चरण धोता २ उनके पास गया और उनके चरणोंको धोने लगा तब उनके चरणोंको मिट्टीमें लिपटेहुए देखकर और नीचेसे फटे हुए देखकर राजाने कहा, महाराज ! आपके चरण तो बडे खौरे हैं। वह तपस्वी ब्राह्मण बोले राजन् ! तुमने कभी ब्राह्मणोंके

चरण नहीं धोये हैं, तुम पतुरियोंके चरण धोते रहे हो, इसलिये तुमको ब्राह्मणोंके चरणोंकी परीक्षा नहीं है। ब्राह्मणके इसी तरहके वचनको सुनकर राजा चुप होगये। जब कि, राजा सबके चरण धो चुके तब पत्तल सबके आगे बिछाई गई। सब भोजन करने लगे। प्रथम यह चाल थी कि, जब कि ब्राह्मण भोजन करलेते तब भोजनवाला कहता एक २ लड्डुवा और लीजिये चार आना एक लड्डुवाकी दक्षिणा मिलेगी। जब कि, एक २ सब खा लेते तब आठ आना करदेते, फिर बारह आना फिर एक रुपयातक एक लड्डुवाके खानेकी और दक्षिणा देते थे। राजाने भी ऐसेही किया और ब्राह्मण भी तृप्तिका भोजन नहीं करतेथे क्योंकि, दक्षिणाके लोभसे और खानेकी जगा पेटमें रख लेते थे। इस तपस्वी ब्राह्मणने एकही बार अपना तृप्तिका भोजन करलिया और आचमन करके बैठरहे। इतनेमें राजाने कहा एक लड्डुवाका चार आना मिलेगा अर्थात् जो एक लड्डुवा और खायगा उसको चार आना दक्षिणा और बेशी मिलेगी। सब ब्राह्मण खाने लगे जब कि, एक २ खाचुके, तब राजा आठ आना बोले फिर बारा आना बोले फिर एक रुपैया बोले सब ब्राह्मण खाते ही रहे। जब कि, राजाने इस तपस्वी ब्राह्मणकी तरफ देखा तो यह चुपचापसे बैठेथे। राजाने इनसे कहा महाराज! सब ब्राह्मण तो भोजन करते हैं, आप क्यों नहीं करते हैं? ब्राह्मणने कहा राजन्! हम तो एक बार ही भोजन करते हैं सो हमने भोजन करके आचमन कर लिया है। अब बार २ हम भोजन नहीं करते हैं। राजाने कहा यदि आप एक लड्डुवा और भोजन करैं तब आपको मैं पांच रुपैया दक्षिणा देऊंगा। ब्राह्मणने नहीं माना तब राजा दश रुपैया बोला तब भी तिसने नहीं माना, राजा बढने लगे। बढते २ एक हजार रुपैया एक लड्डुवा खानेके बदलेमें राजाने कहा। तब ब्राह्मणने कहा यदि लाख रुपैया भी आप देवैंगे तब भी मैं अपना धर्म नहीं छोडूंगा अर्थात् आचमन किये पीछे और लड्डू दूसरी बार नहीं खाऊंगा। तब राजाने कहा देखो ऐसा दाता नहीं मिलेगा, जो एक लड्डूके बदले एक हजार रुपैया देता है। ब्राह्मणने हँसकर कहा हमको तो आप सरीखे दाता बहुतसे मिले हैं और मिलैंगे परन्तु आपको भी ऐसा त्यागी ब्राह्मण नहीं मिलेगा। राजा चुप होगये। ब्राह्मण

हाथ धोकर चल दिया । कितनाही राजाने उनके रखनेके लिये जोर लगाया परन्तु वह नहीं रहे । हे चित्तवृत्ते ! पूर्वकालमें वैसे २ वैराग्यवान् त्यागी ब्राह्मण होते थे, उन्हींमें ब्रह्मतेज चमकता था, उन्हींका वर शाप लगता था, वही ज्ञानी कहे जाते थे । जबसे ब्राह्मणोंमेंसे त्याग और वैराग्य जाता रहा तबसे ब्रह्मतेज भी नष्ट होगया और वर शापका भी लगना दूर होगया । हे चित्तवृत्ते ! पूर्ण वैराग्यवान्में ही इतना बडा त्याग रहसक्ता है,यह वैराग्यका ही फल है ॥ ९६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! सच्चे त्यागीकी कथाको तुमको सुना दिया है, अब झूठे त्यागीकी कथाको भी तुम सुनोः—

एक नगरके बाहर एक बाबाजी कुटी बनाकर रहने लगे और दो तीन उनके साथ चेले थे । वह भी उनकी सेवाके लिये उनके पास रहते थे । चेलोंने बाबाजीको सिद्ध और त्यागी लोकोंमें प्रसिद्ध कर दिया और लोकोंमें उनकी झूठी २ सिद्धियोंको मशहूर करके लोकोंको फँसाने लगे । जो कोई पुरुष बाबाजीके आगे द्रव्य लाकर रक्खे, चेले तिसको कहे इसको मत रक्खो बाबाजी त्यागी हैं द्रव्यको न लेते हैं न छूते हैं । अब बाबाजीके त्यागकी चर्चा नगरमें फैली, क्योंकि पीरोंको मुरीद लोकही उडाते हैं और विना दलालोंके दुकान चलती भी नहीं है । तिस नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था, परन्तु कृपण वह अव्वल दरजेका था, कभी भी किसी गरीबको तिसने एक टका नहीं दिया था । उस बनियांने जब कि, बाबाजीके त्यागका महत्त्व सुना तब तिसके मनमें आया हम भी चलकर बाबाजीके आगे एक हजार रुपैयाकी थैली धरदें, बाबाजी तो लेवेंगे नहीं, परन्तु उदारतामें हमारा भी नाम हो जावैगा । बनियां भी एक हजार रुपैयोंकी थैली लेकर बाबाजीके पास गया और दण्डवत् प्रणाम करके थैलीको बाबाजीके आगे धरदिया । बाबाजीने कुटीमें तिस थैलीके रखनेका इशारा किया। चेलेने थैलीको उठाकर भीतर कुटीके धर दिया । अब बनियांके होश बिगडे । मनमें कहताहै यह तो द्रव्यको लेते नहीं थे अब क्या हुवा हमारा तो मतलब दूसरा था यहां तो औरका और ही होगया । फिर कहने लगा बाबाजी हमसे हँसी

करते होंगे. शायद थोडी देरमें देदेवेंगे। जब कि, दो चार घडी व्यतीत होगई और बावाजीने रुपयोंकी थैली तिसको वापस न दी तब बनियांसे रहा न गया। बनियांने कहा महाराज! हमने तो सुना था आप द्रव्यका ग्रहण नहीं करते हैं वह तो बात झूठी निकली। क्योंकि द्रव्यको आपने अब ले लिया है, बावाजीने कहा भाई एक या दो दश बीस रुपयोंको हम ग्रहण नहीं करते हैं आजतक किसीने भी हमारे आगे हजार रुपयोंकी थैली नहीं रक्खी थी, यदि कोई रखता और हम न लेते तब तो हम झूठे होते। आपने आज प्रेम-पूर्वक हजार रुपयोंकी थैली भेंट की है, हमने भी तुम्हारा प्रेम रखनेके लिये उठाली है। किसी शुभकर्ममें इसको हमभी लगा देवेंगे, अब तुम पश्चात्ताप न करो नहीं तो तुम्हारा पुण्य निष्फल होजायगा। बनियां माथा ठोंककर चल दिया। इधर बावाजीका मतलब होगया, बावाजी भी चलदिये। हे चित्तवृत्ते! ऐसे २ पाखण्डोंको करके जो लेनेवाले हैं वे झूठे त्यागी हैं क्योंकि वे वैराग्यसे शून्य हैं॥ ९७॥

हे चित्तवृत्ते! अब हम तुमको वंध्यज्ञानियोंके इतिहासोंको प्रथम सुनाते हैं तत्पश्चात् सच्चे ज्ञानियोंके इतिहासोंको सुनावेंगे:—

पञ्जाब देशके किसी ग्राममें एक निर्मल सन्त रहते थे और सवेरे वह वेदांतकी कथा करते थे। बहुत लोग उनकी कथा सुननेको आते थे, निर्मल सन्त भाईजी करके तिस देशमें बोले जाते हैं और उनके नामके आदिमें भाईजी शब्द जोडा जाता है। दोपहरके वक्त वह स्त्रियोंको पढाते थे। सब लोग उनको ज्ञानवान् जानते थे। एक दिन दोपहरके वक्त वह एक युवतीको संथा दे रहे थे, तिस युवतीके रूपको देखकर उनका मन चलायमान होगया, क्योंकि कामदेव बडा बली है तब वह धीरे २ तिसकी छातीपर हाथ फेरने लगे, युवतीने पीछे हटकर कहा, हाय हाय! क्या आप करने लगे हैं। अभी तो आपने हमको विचारसागरमें पढाया है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे बडा भारी पाप होता है और भाईजी! इसी ग्रन्थमें कितनी बडी स्त्रीकी निन्दा लिखी है और स्त्रीके संगसे अनेक प्रकारके दोष दिखाये हैं। क्या आपने उन सबको भुलाया है?

जब युवतीने ऐसे २ वाक्य कहे तब महात्मा भाईजी कहने लगे हम तो तुम्हारी परीक्षा करते थे जबतक देहमें अभ्यास बना रहता है तबतक पक्का ज्ञान नहीं होताहै हम इस वार्ताकी परीक्षा करते थे । तुम्हारे देहमें अभ्यास है, वा नहीं सो आज हमको माल्रुम होगया । तुम्हारे देहमें अभ्यास बना है, तुमको अभी पक्का ज्ञान नहीं हुवा है । युवतीने कहा तुम्हारा तो अभी देहमें अभ्यास छूटा ही नहीं है । यदि तुम्हारे देहमें अभ्यास न होता तो तुम हमको हाथ भी न लगाते । कामातुर होकर तुमने हमको हाथ लगाया है अब बातें बनाते हो, तुम सन्त नहीं हो, कुसन्त हो । इस तरहके वाक्योंको कहकर वह युवती अपने घर-में चली गई और भाईजीने भी लज्जाके मारे तिस ग्रामको छोड दिया । हे चित्तवृत्ते ! ऐसे २ जो पुरुष हैं वही वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं । इसीवास्ते शास्त्रोंमें स्त्रीके संसर्गका निषेध किया है ।

आत्मपुराणके सातवें अध्यायमें कहा है:—

स्मरणाज्जायते कामो वधूनां धैर्यनाशनः ॥
दर्शनाद्वचनात्स्पर्शात्कस्मादेष न संभवेत् ॥ १ ॥

स्त्रीका स्मरण करनेसे ही धीरताका नाश करनेवाला कामदेव उत्पन्न हो जाता है । फिर दर्शनसे भाषणसे स्पर्श करनेसे क्यों नहीं उत्पन्न होगा किंतु अवश्य होगा ॥ १ ॥

आत्मनः क्षेममन्विच्छंश्चतुर्थाश्रममागतः ॥
न कुर्याद्योषितां संगं मनसा वपुषेंद्रियैः ॥ २ ॥

जो संन्यासाश्रमको अपने कल्याणके लिये प्राप्त हुवा है, वह मन और शरीर तथा इंद्रियोंकरके भी स्त्रीका संग न करै, क्योंकि तिस आश्रमसे स्त्रीका संग पतन करनेवाला है ॥ २ ॥

विलीयते घृतं यद्वदग्नेः संसर्गतस्तथा ॥
नारीसंसर्गतः पुंसो धैर्यं नश्यति सर्वथा ॥ ३ ॥

जैसे अग्निसम्बन्धसे घृत पिघल जाता है, तैसे स्त्रीके संसर्गसे पुरुषकी धीरता भी नष्ट होजाती है ॥ ३ ॥

एक एव प्रतीकारो नारीसर्पविषे भुवि ॥
आसाञ्च स्मरणं तद्दर्शनादेश्च वर्जनम् ॥ ४ ॥

पृथिवीतलमें स्त्रीरूपी सर्पके विषके हटानेका एकही उपाय है, स्त्रियोंके रूपका स्मरण न करना और उनके दर्शन आदिकोंका न करना ॥ ४ ॥

वासना यत्र यस्य स्यात्स तं स्वप्नेषु पश्यति ॥
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम् ॥ ५ ॥

जिसमें जिसकी वासना रहती है सो तिसको स्वप्नमें दीखता है, स्वप्नकी तरह मरणमें भी जान लेना। मरणकालमें जिसकी वासना जिसमें रहती है, उसीको वा उसी रूपको वह प्राप्त होता है, क्योंकि वासनामय ही इसका वपु है ॥ ५ ॥

कामिनां कामिनीनां च संगात्कामी भवेत्पुमान् ॥
देहांतरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते ॥ ६ ॥

कामी पुरुषोंके और स्त्रियोंके संगसे पुरुष भी कामी हो जाता है और जन्मान्तरमें देहान्तरमें भी क्रोधी लोभी मोही होता है ॥ ६ ॥

कामक्रोधादिसंसर्गादशुद्धं जायते मनः ॥
अशुद्धे मनसि ब्रह्मज्ञानं तच्च विनश्यति ॥ ७ ॥

काम क्रोधादिकोंके सम्बन्धसे मन भी अशुद्ध होजाता है, अशुद्ध मनमें उपदेश किया हुआ ब्रह्मज्ञान भी नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

कामक्रोधादिसंसक्तो ब्रह्मज्ञानविवर्जितः ॥
मार्गद्वयपरिभ्रष्टस्तृतीयं मार्गमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

जो पुरुष काम क्रोधादिकोंमें आसक्त है और ब्रह्मज्ञानसे हीन है, वह दोनों मार्गोंसे अर्थात् ज्ञान और उपासनासे भ्रष्ट हुआ तीसरे मार्गको याने कृमिकीटादियोनियोंको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

तृतीयेऽध्वनि संप्राप्तः पुण्यविद्याविवर्जितः ॥
कीटादिदेहभाजी सन्नरकाच्च न निःसरेत् ॥ ९ ॥

तीसरे मार्गमें प्राप्त होकर फिर वह पुण्यविद्यासे रहित होजाता है। फिर कीटादिशरीरको भजनेवाला होकर नरकसे कदापि नहीं निकल सकता है ॥९॥

श्रेयस्कामस्ततो नित्यं चतुर्थाश्रममागतः ॥
कामिनां कामिनीनां च संगं सर्वात्मना त्यजेत् ॥ १० ॥

कल्याणका अर्थी जो चतुर्थाश्रमको प्राप्त हुआ है वह कामी पुरुषोंकी और स्त्रियोंकी संगतिका सर्व प्रकारसे त्याग कर देवै ॥ १० ॥

पंचदशीमें भी कहा है:—

बुद्ध्वाऽद्वैतस्य तत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ॥
शुनां तत्त्वदृशां चैवं को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥ ११ ॥

जिसने अद्वैत तत्त्वको जान लिया है और फिर वह यदि यथेष्टाचरणको करता है अर्थात् संन्यासको धारण कर अद्वैतको जानकरके भी यदि वह मांस मदिरा परस्त्रियोंका संग करता है तब कूकरमें और तिसमें क्या फरक है अर्थात् कुछ भी नहीं है। क्योंकि कूकर भी वमन करके फिर तिसको भक्षण करता है और तिस पुरुषने भी वमन करे हुए विषयोंको फिर ग्रहण करलिया वह भी कूकर ही है। हे चित्तवृत्ते! वंध्यज्ञानियोंका यथेष्टाचरण होता है, सच्चे ज्ञानियोंका नहीं होता है ॥ ९८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक बनावटी अवधूतकी कथाको सुनो:—

एक ग्रामके समीप जंगलमें एक अवधूत महात्मा रहते थे। लंगोटी तक भी नहीं रखते थे और अपने हाथसे भोजन भी नहीं करते थे। यदि कोई दूसरा उनके मुखमें डालता तब खाते थे और जहां तहां झाडा पेशाबको भी फिर देते थे, उनको लोक विदेही मानते थे। एक दिन राजाकी रानी उनके दर्शनको गई और एक थालमें लड्डू पेडोंको भरकर लेगई, जाकर उनके समीप बैठ गई। थोडी देरके पीछे वह अवधूत तिस रानीकी गोदमें आकर बैठ गये। रानी अपने हाथसे उनके मुखमें पेडाको देने लगी और वह खाने लगे। अभी दो तीनही ग्रास रानीने उनके मुखमें दिये थे कि, इतनेमें उस अवधूतने रानीकी गोदमें दिशा करदिया। रानी एक पेडाके साथ तिस मैलेको लगाकर तिसके मुखमें जब देने लगी तब तिस अवधूतने मुखको फेर लिया। रानीने अवधूतको गोदसे पटक दिया और ऊपरसे दो तीन लात तिसको मारी और कहने

लगी इतना तो तुमको होश नहीं जो यह रानीकी गोद है वा पाखानाकी जगह है, और इतना तेरेको होश है जो मलको पेडेके साथ लगाकर यह हमको खिलाती है, इसलिये तुमने अपने मुखको फेर लिया। रानीने नौकरोंको हुक्म दिया इस पाखण्डीको हमारे देशसे वाहर कर देओ। रानी सुशीला स्नान करके घरको चली आई। हे चित्तवृत्ते ! ऐसे २ पाखण्डोंको करनेवाले वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं ॥ ९९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वंध्यज्ञानीके दृष्टांतको तुम सुनोः—

लैली मजनू नाम करके दो आशक माशूक हुये हैं। लैली तो वादशाहकी लडकी थी और मजनू एक तसवीर खैंचनेवाले कारीगरका लडका था। मजनूका वाप वादशाहके महलोंमें काम करनेको जाता था, मजनूभी छोटीसी उमरमें वापके साथ वादशाहके महलोंमें जाने लगा। एक दिन लैलीको मजनूने देखा, लैलीकी भी उमर तव छोटीसी थी, मजनूका मन लैलीमें लग गया फिर लैलीके वापने लैलीको मदरसामें पढनेके लिये विठला दिया और मजनू भी पढनेके वहानेसे तिसी मदरसामें जा वैठा। वहांपर मजनू और लैलीकी परस्पर नित्य वातचीत होनेसे प्रीति वढने लगी। दोनोंका आपसमें इतना प्रेम वढगया कि, विना देखे एक दूसरेको चैन न पडे। थोडे दिनोंके पीछे उनके प्रेमकी वार्ता सव नगरमें फैल गई। वादशाहको भी मालूम होगई तव वादशाहने लैलीका जाना मदरसेमें वंद करदिया और लैली अपने घरसे वाहर आने न पावै। अव मजनूको लैलीका देखना भी वंद होगया तव मजनू फकीर वनके जंगलमें जाकर रहने लगा। कुछ दिनके पीछे वादशाहके दिलमें आया, मजनू खाने पीनेके विना तंग होता होगा उसके लिये खाने पीनेका कोई प्रबंध कर देना चाहिये। वादशाहने वजीरसे कहा नगरमें नोटिस देदो कि, मजनू जिसकी दूकानसे जो वस्तु उठा ले उसका हाथ कोई भी न रोकै, तिसका दाम वादशाहके खजानेसे मिलेगा। वजीरने नोटिस जारी करदिया। इस वार्त्ताको सुनकर दश वीस साधुओंने कपडोंको उतार दिया और मजनू वनकर लोकोंकी दूकानोंसे खाने पीनेकी चीजोंको उठाने लगे। जव कोई उनसे पूछै तुम कौन हो तव वह कहदें हम मजनू हैं। वाह मजनूका नाम सुनकर चुप रह जातेथे। अव धीरे २ मजनू वढने

लगे चार पांच सौ मजनू बन गये और सैंकडों रुपैया नित्य खजानेसे दूकानदारोंको वजीरको देना पडैं । तव वजीरने वाहशाहसे कहा मजनू तो बहुतसे जमा होगये हैं । इनके खर्चके मारे खजाना खाली हुआ जाता है, कोई उपाय करना चाहिये । तब बादशाहने लैलीसे पूंछा वह जो तुम्हारा प्रेमी मजनू है वह बहुतसे हैं या कोई एक है । लैलीने कहा बापू ! वह एकही है बहुत नहीं हे । बादशाहने कहा उसकी पहँचान कैसे होगी ? लैलीने कहा अपने गृहके आंगनमें एक लोहेका खम्भा गाडिये और तिसपर एक चौकीको बांध दीजिये ऊपर उस चौकीके मेरेको बिठला दीजिये, नीचे गिरदे तिस खम्भेके चारोंतरफ अग्निके अंगारोंको बिछा दीजिये और नगरमें हुक्म देदीजिये सब मजनू आवें । लैलीने मजनुओंको याद किया है जो मजनू आकर उस आगको देखकर भागे तिसको कैद कर डालो जो सच्चा मजनू आवैगा वह नहीं भागेगा । बादशाहने इसी तरहसे किया । अब जो मजनू भीतर आंगनके आवे वह पूछे लैली कहाँ है ? जब तिसको लैली ऊपर बैठी बताई जावै तब वह पीछेको भागे, पकड करके कैद किया जाय, इसी तरह सब बनावटीके मजनू कैद किये गये, तब किसीने जाकर जंगलमें तिस सच्चे मजनूसे कहा लैली तुमको याद करती है । वह भी चले, जब कि, वह घरके भीतर अंगनमें पहुँचे तब मजनूने पूछ लैली कहां है लोकोंने ऊँचे खम्भेपर बैठी हुईको बतादिया । जब मजनूने ऊपर खम्भेकी चौकीपर बैठी हुई लैलीको अपनी आँखोंसे देख लिया तबसे फिर मजनूकी निगाह नीचे आगपर न पडी किन्तु ऊपरको देखते हुए और लैली २ करते हुए मजनू आगेको बढे और आगके अंगारोंपर दौडते चले गये परन्तु उनके पांव न जले, क्योंकि, उनका मन अपने शरीरमें न था वह लैलीके पास चला गया था आगका ज्ञान कैसे होता । इसीसे उनको आगका ज्ञान भी न हुआ । जब चौकीके नीचे मजनू पहुँचे और मजनूने दोनों हाथ ऊपरको उठाये ऊपरसे लैलीने तिसके हाथोंको पकडकर अपने पास खैंचकर चौकीपर बिठालिया और बापसे कहा ये ही वह सच्चा हमारा प्यारा मजनू है । बादशाहने तिसी मजनूके प्रति अपनी प्यारी बेटी लैलीको दे दिया और बनावटी सब मजनुवोंको कैद करलिया । यह दृष्टान्त है

दार्ष्टान्तमें; जो कि, सच्चा ज्ञानी है वह तो हजारों लाखोंमें कोई एकही है और जो बनावटी हैं वह ज्ञानी बनकर मजनुवोंकी तरह लूट मार करके खा रहे हैं वह सब वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं क्योंकि वह वैराग्यादिक साधनोंसे शून्य हैं ॥ ६० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वंध्यज्ञानियोंके दृष्टांतको सुन:—

एक ग्राममें जुलाहे बहुतसे रहते थे, उनसे थोडी दूरपर एक क्षत्रियोंका ग्राम था। एक दिन जुलाहोंने आपसमें सलाह की कि चलो क्षत्रियोंको चलकर लूट लावें. रात्रिके समय वह जुलाहे सब मिलकर क्षत्रियोंके ग्रामको लूटने लगे। आगे क्षत्री बडे शूरवीर थे वह शस्त्र अस्त्रोंको लेकर जुलाहोंके मारनेके लिये दौडे। जुलाहे भागे, जब कि, भागते २ कुछ दूर निकल गये तब एक जुलाहेने कहा भागे तो जाते हो मारो मारो तो करते चलो। तब सब जुलाहे भागते भी जायँ और मारो मारो भी करते जायँ यह तो दृष्टांत है। दार्ष्टान्तमें; जो कि, वंध्यज्ञानी हैं वह विवेक वैराग्यादिक साधनोंसे भागे तो जाते हैं क्योंकि साधन उनसे हो नहीं सक्ते हैं तब भी वह मुखसे मारो २ भेदवादियोंको करते ही जाते हैं ॥ ६१ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

एक नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था। उसकी भैंस और गैयाको चरवाहा नित्यही जंगलमें चरानेके लिये ले जाता था। एक दिन वह चरवाहा जंगलमें भैंसोंको पडा चराता था कि इतनेमें एक सिंह जंगलसे निकला और उन भैंसोंमेंसे एक भैंसको उठाकर लेगया। चरवाहेने आकर रात्रिमें बनियांसे कहा आज सिंह एक भैंसको उठाकर लेगया है। बनियांने मुनीमसे कहा वही-खातेको देखो सिंहका कुछ हमारी तरफ निकलता तो नहीं है? मुनीमने वहीको देखकर कहा सिंहका हमारी तरफ कुछ भी नहीं निकलता है। तब बनियांने कहा फिर सिंह हमारी भैंसको क्यों लेगया? बनियांने चरवाहेसे कहा कलको हम भी तुम्हारे साथ जंगलमें चलेंगे और सिंहसे भैंस लेजानेका कारण पूछेंगे। दूसरे दिन बनियां चरवाहेके साथ जंगलमें जाकर एक वृक्षकी छायामें बैठ रहा

जब कि, तीसरा पहर हुआ तब सिंह वनसे निकला और भैंसोंकी तरफ चला तब बनियांने सिंहसे कहा हमने अपना वहीखाता सब देख लिया है तुम्हार हमारी तरफ कुछभी हिसाब नहीं निकलता है फिर तुम हमारी भैंसको क्यो उठाकर लेगये ? बनियेकी वार्ताको सुनकर सिंह गरजा और गरज करके एक और भैंसको उठाकर ले भागा। तब बनियांने कहा यदि हिसाब देखा जाय तब तो तुम्हारा कुछ भी हमारी तरफ नहीं निकलता है और जो तुम केवल गरजना दिखाकर हमारी भैंसोंको खाना चाहो तब तो हमारा तुम्हारे पर कुछ भी जोर नहीं चलता है । तुम बेशक खाजाओ । यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टान्तमें; जितने कि वंध्यज्ञानी हैं यदि ज्ञानकी धारणाका और ज्ञानके सुखका उनसे कुछ हिसाब पूछा जाय तब तो उनके पास बाकी कुछ भी नहीं रहता है, केवल ज्ञानकी वातोंके गरजनेको दिखाकर वह लोगोंको लूट कर चले जाते हैं । इसीसे वह वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं । हे चित्तवृत्ते ! हरएक वस्तुकी सिद्धि किसी प्रमाणसे होती है, या किसी लक्षणकरके होती है विना इन दो वातोंके नहीं होती हैं, सो ज्ञानीके जो लक्षण शास्त्रोंमें किये हैं, वह वंध्यज्ञानियोंमें नहीं घटते हैं । प्रथम तो जिसका किसी भी पदार्थमें राग न हो बल्कि स्त्री पुत्रादिकोंमें भी राग न हो और यदि संन्यासी हो तब मठों और चेलोंमें तथा द्रव्यादिकोंमें जिसका राग न हो फिर सब जीवोंमें शत्रु मित्रादिकोंमें भी जिसकी समबुद्धि हो और किसीका भी जिसको भय न हो और किसीको भी जिससे भय न हो वही पूरा २ ज्ञानी है । यह बातें जिसमें नहीं घटती हैं, केवल ज्ञानकी बातें ही करता वैराग्यसे भी शून्य है वही वंध्यज्ञानी है ॥ ६२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अब तुमको सच्चे निष्काम ज्ञानीकी कथाको सुनाते हैं:—

सिंधु नदीके किनारेपर जहांसे कि, नाव इसपार उसपार जाती आती थी वहांपर एक क्षत्रिय जातिवाला पुरुष दूकान करता था, उसकी दूकानमें पांच सातही रुपैयोंका सौदा रहता था, सो कोई साधु नदीके पारको जाता था या इस पारको आता था। उसकी दूकानके आगे एक पलंग बिछा रहता था

ऊपर वृक्षकी छाया थी, उस पलंगपर वह महात्माको बिठाकर तीन मुट्ठी चनेको खिलाता और ठंढा पानी अपने हाथसे पिलाता पंखा करता कुछ देरतक पांव दवाता था, ऐसा तिसका नियम था। एक दिन एक रसायनी महात्मा साधु वहांपर आगये, उसने उन महात्माकी सेवा भी उसी तरहसे की जैसी औरोंकी करता था। महात्माने उसकी दूकानकी तरफ जब देखा तब उनको मालूम हुआ यह तो बहुत ही गरीब है। क्योंकि तिसकी दूकानमें उनको कुछ सामग्री दिखाई न पड़ी तब महात्माने कहा इसको कुछ देना चाहिये। उन्होंने एक रसायनका बिल निकालकर तिसको दिया और कहा इसको किसी ताके पर धर दीजिये तुम्हारे काम आवेगा। उसने बिलको लेकर ऊपर ताकेके धरदिया, महात्मा नावमें बैठकर उस पारको गये। एक सालके पीछे वह फिर उसी रास्तासे आ निकले और मनमें विचार किया अब तो वह बडा धनी होगया होगा क्योंकि हमने उसको रसायनका बिल दिया था। जब उसकी दूकानके सामने पलंगपर आकरके बैठे तब जैसी पहले उसकी दूकानको उन्होंने देखा था, वैसेही फिर भी देखा। तब उन्होंने मनमें सोचा हमने इसको बिल तो दिया था परन्तु सोना बनानेकी तजवीज इसको नहीं बताई थी। इसीसे यह गरीब रहगया है। महात्माने कहा बाबा! परसाल हम तुम्हारे यहां आयेथे आपने हमको पहचाना है या नहीं? उसने कहा महा-राज! मैंने नहीं पहँचाना है। क्योंकि, हमारे यहां नित्यही दश पांच साधु आते हैं यह पार जानेका रास्ता है। इसलिये मैंने आपको नहीं पहँचाना है। महात्माने कहा हमने आपको एक बिल दिया था, और आपने उसको ऊपर ताकेके धर दिया था उसने देखा तो वह बिल उसी जगह धराथा, उठाकर महात्माके आगे तिस बिलको धर दिया। महात्माने कहा बाबा! इससे सोना बनता है, हमने तुमको गरीब जानकर दिया था जो यह धनी होजावें। महात्माने कहा तुमको हमने सोना बनानेकी विधिको नहीं बताया था सो इससे तुमने सोना नहीं बनाया है। उसने कहा महाराज! अब आप सोना बना-नेकी विधिको बता दीजिये। महात्माने कहा तांबा लाकर एक मिट्टीकी कुठाली बनाकर कोइलाको भरवाकर तिसमें कुठालीको धरकर नौशादर और सुहागाको

तिसमें डालो, जब कि, तांबा गलजाय; तब उस त्रिलमेंसे एक रत्ती दवाईको तिसमें छोड दीजिये सोना बन जायगा। तब उसने कहा तांबा लावें, कोइला लावें, गलावें, दवाईको तिसमें छोडें, इतना जब करै, तब सोना बनै। उस क्षत्रियने महात्मासे कहा आपको सोनेकी जरूरत है? महात्माने कहा हां, तब क्षत्रियने अपनी लाठीको लेकर तोलनेके जो पत्थर पडे थे उनपर मारना शुरू किया, जिस पत्थरपर वह लाठीको मार कर कहे सोना हो जा वह तुरन्त ही स्वर्ण हो जाय, इसी तरह सब पत्थर स्वर्णके होगये। क्षत्रियने महात्मासे कहा बाबा! यदि तुमने सोना बनानेके लिये ही मूँडको मुंडाया है तब जितना सोना तुमको चाहिये उतना उठालो यह भेष तुम्हारा सोना जमा करनेके लिये नहीं है किंतु सोनाके त्यागके लिये है और आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये है। तुम वैराग्यसे शून्य होकर अनात्म पदार्थमें सुख मान रहे हो अभी तुम्हारी भोगोंसे वासना दूर नहीं हुई है। महात्माने तिसके चरणोंको पकड लिया और दोनों वहांसे चल दिये। हे चित्तवृत्ते! सच्चे ज्ञानी ऐसे निष्काम होते हैं ॥ ६३ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और ज्ञानवानकी कथाको तुम सुनोः—

काशीपुरीमें वरणाके संगमपर एक महात्मा विरक्त विद्वान् रहतेथे और धारणामें पूर्ण थे; वेदांत चिंतनके अतिरिक्त दूसरा चिंतन नहीं करते थे। एक दिन वह सवेरे वरणाके किनारेपर दिशा फिरनेको जब गये तब वहां वर्षासे वरणानदीका अरार गिराथा तिसमेंसे मोहरोंकी भरी हुई हंडी निकल कर उलटी पडी थी, तिसके समीप बैठकर महात्माने मलका त्याग किया और उस हंडियाको उलटा हुआ देखा, परन्तु छूआ नहीं। स्नान करके अपने आसनपर चले आये जब कि, कुछ थोडासा दिन निकल आया और इधर उधरसे लोक आने जाने लगे तब लोगोंने तिस हांडीको देखा इतनेमें बहुतसे आदमी वहांपर जमा होगये और हाकिमको खबर मिली, वहभी वहां पर आगया। हाकिमने उस सब धनको लेलिया और लोकोंसे पूँछा यहांपर इसके पास मैला किया हुआ है। कौन ऐसा आदमी सवेरे यहां पर आया है जो पास इसके मैला करने बैठा है और धनको जिसने नहीं उठाया है। लोकोंने कहा

यहांपर एक महात्मा विरक्त रहते हैं, वही सबेरे आते हैं वही आये होंगे। हाकिम उनके पास गया और उनसे पूंछा आप जब कि; वहांपर मैला करनेको बैठे थे तब आपने उस धनको देखा था ? उन्होंने कहा हां, हमने देखा था। कहा आपने क्यों न लिया ? उन्होंने कहा हमको तिसकी जरूरत नहीं थी हमारे वो कामका धन नहीं था। क्योंकि, हम तो तिसको उपाधि समझते हैं, इसवास्ते हमने नहीं लिया। हाकिमभी उनकी बातोंको सुनकर प्रसन्न हुआ। फिर एक दिन एक महाजनने आकर उनसे कहा महाराज ! पंचक्रोशीको चलिये, उन्होंने नहीं माना। जब बहुत कहा तब कहने लगे एक २ छाता और एक २ जूता सब साधुवोंके वास्ते लाओ सब साधू जूता पहरकर और छाता लगाकर चलेंगे। महाजनने कहा महाराज ! पंचक्रोशीमें तो लोक जूता पहरकर छाता लगाकर नहीं जाते हैं। महात्माने कहा जो कि अज्ञानी मूर्ख करैंगे वह हम नहीं करैंगे क्योंकि हमको तो किसी फलकी कामना नहीं है। हम किसी देवता वा तीर्थसे अपने कल्याणको नहीं चाहते हैं, हम तो केवल आत्मज्ञानसेही मुक्तिको मानते हैं। तुम जावो हम पंचक्रोशी नहीं जायँगे। वह महाजन चलागया। हे चित्तवृत्ते ! जो सच्चे ज्ञानी हैं वे ज्ञानसे विना कर्मउपासनाके तथा देवतार्चन और तीर्थ आदिकोंसे अपनी मुक्तिको नहीं चाहते हैं उनका ऐसा कभी संकल्पभी नहीं फुरता है जो हमारा शरीर किसी तीर्थमेंही गिरे क्योंकि तीर्थरूप तो वह आपही हैं और न किसी शास्त्रमें ही ऐसा लिखा है जो ज्ञानवान्‌को तीर्थपरही शरीरका त्याग करना चाहिये किंतु इसके विरुद्ध लिखा है:—

नीरोग उपविष्टो वा रुग्णो वा विलुठन् भुवि ।
मूर्च्छितो वा त्यजत्येव प्राणान् भ्रांतिर्न सर्वथा ॥ १ ॥

ज्ञानवान् रोगरहित हो अथवा रोगवाला हो, बैठा हो वा पृथिवीपर लोटता हो, मूर्च्छित हो वा सचेत हो, प्राणोंके त्यागकालमें इसको भ्रांति किसी तरहसे भी नहीं होती है ॥ १ ॥

तनुं त्यजति वा काश्यां श्वपचस्य गृहे तथा ।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥ २ ॥

ज्ञानवान् काशीमें शरीरका त्याग करे, अथवा चांडालके घरमें त्याग करे वह ज्ञानसम्प्राप्तिकालमें ही मुक्त हो जाता है क्योंकि जिसकी वासनाएँ सब नष्ट होगई हैं तिसको काशी मगह बराबर है ॥ २ ॥

फिर दृढ बोधवाले ज्ञानीके लिये कर्मादिकोंका कर्त्तव्य भी नहीं कहा है जितना कर्त्तव्य है सो सब अज्ञानीके लिये ही कहा है ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ॥
नैवास्ति किञ्चित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ ३ ॥

जो पुरुष ज्ञानरूपी अमृतकरके तृप्त है और कृतकृत्य है, उसको किञ्चित् भी कर्त्तव्य नहीं है, यदि वह अपनेमें कर्त्तव्यको माने तब वह तत्त्ववित् नहीं है ॥ ३ ॥

गीतामें भी कहा है:-

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ४ ॥

जिस पुरुषकी आत्मामें ही प्रीति और अपने आत्मानंदकरके ही जो तृप्त है आत्मामें ही जो संतुष्ट है तिसको कुछभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो सच्चे ज्ञानी हैं वह तो निरिच्छ हैं, जो बनावटके ज्ञानी हैं, जिनका दृढ विश्वास नहीं है वही महात्मा तीर्थोंमें मुक्तिके लिये निवास करते हैं और मरणकालमें कहते हैं कि, तीर्थोंमें हमको लेचलो वहांपर शरीरको त्यागैंगे, जन्मभर तो लोगोंको वेदान्त सुनाते हैं और ज्ञानी कहाते हैं मरणकालमें अज्ञानी बनजाते हैं क्योंकि, अज्ञानियोंकी तरह तीर्थोंसे मुक्तिकी इच्छा करने लगते हैं ॥

कपिलगीतामें कहा है:-

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमंति तामसा जनाः ॥
आत्मतीर्थं न जानंति कथं मोक्षः शृणु प्रिये ॥ १ ॥

महादेवजी पार्वतीके प्रति कहते हैं हे पार्वती ! यह तीर्थ है वह तीर्थ है ऐसे जानकर अज्ञानी जीव भ्रमते फिरते हैं, क्योंकि वह आत्मरूपी तीर्थको नहीं जानते हैं ॥ १ ॥

देवीभागवतमें भी कहा है:–

मनोवाक्कायशुद्धानां राजँस्तीर्थं पदेपदे ॥
तथा मलिनचित्तानां गंगापि कीकटाधिका ॥ २ ॥

जिन पुरुषोंके मन और वाणी आदिक शुद्ध हैं हे राजन् ! उनके पद २ में तीर्थ निवास करते हैं, जो मलिनचित्त हैं उनके लिये गंगा भी कीकट देशके समान है ॥ २ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जिन पुरुषोंको आत्मानन्दकी प्राप्ति हुई है वह विषयानन्दकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥

चित्तवृत्ति कहती है–हे भ्राता ! चित्तकी शुद्धिके साधनोंको कहो, क्योंकि विना चित्तकी शुद्धिके विवेक वैराग्यादिक भी नहीं होते हैं, तब आत्मज्ञानका होना तो अर्थसे भी नहीं होसक्ता, इसलिये प्रथम मेरेको चित्तकी शुद्धिके साधनोंको तुम सुनाओ जिनके करनेसे मेरा चित्त शुद्ध होजाय। विवेकाश्रम कहते हैं–हे चित्तवृत्ते ! अन्नकी शुद्धिसे चित्तकी शुद्धि होती है, सो अन्नकी शुद्धि इस तरहसे होती है–सत्य धर्मकी कमाईसे जो द्रव्य कमाया जाता है वह शुद्धद्रव्य कहाता है, तिस द्रव्यसे जो खाने पीनेके लिये अन्नादिक लिये जाते हैं वह ही शुद्ध कहे जाते हैं। क्योंकि सत्य धर्मका असर द्रव्यद्वारा तिस अन्नमें आता है, तिस अन्नके खानेसे चित्त शुद्ध होता है। क्योंकि, अन्नद्वारा तिस सत्यधर्मका असर चित्तपर भी आता है,तिस शुद्ध चित्त ही विवेक वैराग्यादिक उत्पन्न होते हैं। इसीपर तुमको दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक ब्राह्मण चित्तशुद्धिके लिये तीर्थोंपर भ्रमण करने लगा, कई बरसोंतक वह तीर्थोंपर भ्रमण करता रहा तब भी तिसका चित्त शुद्ध न हुआ। क्योंकि, तीर्थोंमें जाकर क्षेत्रोंका और दान कुदानादिकोंका अन्न तिसको खानेके लिये मिला, उस अन्नके खानेसे तिसका चित्त और मलिनताको प्राप्त होता चला गया। जब कि, चित्त मलिन होता है, तब विषय विकारोंकी ओरही जाता है। ब्राह्मणने मनमें विचारा कि, क्या कारण है जो चित्त हमारा प्रतिदिन तीर्थ करनेसे भी मलिन होता जाता है। परन्तु तिसको चित्तकी अशुद्धिका कुछ कारण मालूम न हुआ। फिर वह अमरनाथ तीर्थसे जब लौट

कर कश्मीर देशमें आया, तब एक दिन दोपहरके वक्त एक ग्राममें वह पहुँचा और वहांपर एक किसानके द्वारपर वह गया और उस किसानसे भोजनके लिये तिस ब्राह्मणने कहा । किसानने कहा, हमारे पास शुद्ध अन्न नहीं है, क्योंकि, जब हमारा अन्न खेतमें था, तब एक दिन हमारे खेतको दूसरेकी पारीका जल दिया था, इसीसे वह अशुद्ध है । हमारे भाईका अन्न शुद्ध है; आप हमारे भाईके घरमें आज भोजन करैं । तिसने अपने भाईसे कह दिया । उसके भाईके घरमें जब ब्राह्मण भोजन करके वहांसे चला तिसकी वृत्ति सात्त्विकी होगई और तिसके हृदयमें एक विलक्षण प्रकाशसा होने लगा, और भूत भविष्यत्की बातोंको भी वह जानने लगा । तब तिस ब्राह्मणने जाना ये सब शुद्ध अन्नका प्रताप है । हे चित्तवृत्ते ! अन्नकी शुद्धिसे चित्तकी शुद्धि अवश्य होती है ॥ ६९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको तुम सुनो:—

एक पुरुष बडा सत्यवादी और धर्मात्मा था । वह कुछ कपडा खरीदकर विदेशमें बेंचनेके लिये ले गया । एक आडतीकी दूकान पर उसने जाकर कपडेके भारको उतार दिया, जब बेंचनेलगा तब तिसका दाम पूरा नहीं लगा । उसने आढतीसे कहा, इस कपडेके भारको आप मेरी अमानत जानकर रख छोडैं फिर मैं आकर बेंचूंगा । आढतीने उसका कपडा रखलिया, वह अपने घरको चला गया, कुछ दिन पीछे आढतीकी दूकानमें आग लग गई, कुछ माल आढतीका जलगया, तिसका कपडा दूसरे मकानमें पडा था वह बचगया । दो चार महीनोंके बाद वह आया और उसने आढतीसे कहा, हमारा कपडा निकालो उसको अब हम बेचेंगे । आढती बेधर्म होगया, उसने कहा, हमारी दूकानमें आग लगी थी तिसमें तुम्हारा कपडा भी जल गया है । उसने कहा, हमारा कपडा नहीं जला है, दोनों झगडते २ राजाके पास गये । राजाने कहा, इसकी दूकानमें आग तो लगी थी और माल भी बहुतसा जलगया था । उसने कहा, इसका माल जला होगा । क्योंकि यह बेईमानी करता है, हमारा माल नहीं जला होगा । क्योंकि, हम बेईमानी नहीं करते हैं । राजाने कहा, इसकी परीक्षा कैसे हो ? कपडेवालेने अपने ऊपरसे चद्दर उतार कर धरदी

राजासे कहा, आप इसको आग लगाइये, यदि यह जल जावैगी तब हम जानेंगे जो हमारा कपडा जल गया है। यदि यह नहीं जलेगी तब आप जान लेना जो हमारा कपडा नहीं जला है। राजाने आग मँगाई, तिसकी चद्दरके जलानेके लिये कितनाही यत्न किया परन्तु तिसकी चद्दर नहीं जली। तब राजाने आढतीके मकानकी तलाशी की, तिसके कपडेकी गठडी निकल आई। तिसको दिलवादी और आढतीको दण्ड दिया। हे चित्तवृत्ते! सत्यधर्मकी कमाईको अग्नि भी जला नहीं सक्ता है और पानी तिसको वहा नहीं सक्ता है ॥ ६६ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और हम तुमको इसी विषयपर कथाको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! एक राजा बडा धर्मात्मा था। किसी जीवको कभी भी नहीं सताता था। जितना कर प्रजासे लेता था वह प्रजाकी पालनामें ही खर्च कर-देता था और बहुतही साधारण चालसे रहता था। एक शत्रुने तिस राजापर चढाई की, तब राजाने मनमें विचार किया यह राज्य तो दुःखकी खान है, क्योंकि, अनेक प्रकारकी चिंता इसमें बनी रहती है, इस राज्यकी प्राप्तिके लिये जोकि वैराग्य और विचारसे शून्य हैं, वही यत्न करते हैं। यदि हम शत्रुसे युद्ध करेंगे तब बहुतसे जीवोंकी हिंसा होगी फिर यह भी तो निश्चय नहीं है कि, जय हो वा न हो। कल्याण तो इसके त्याग करदेनेमें ही है। ऐसा विचार करके रात्रिके समय अपनी रानीको साथ लेकर राजाने चल दिया। तिस कालमें और लोक तो सब सोये पडे थे परन्तु एक नौकर राजाका जागता था, वह भी राजाके पीछे चल दिया। राजाने तिस नौकरको कितनाही मना किया परन्तु तिसने नहीं माना, राजाके पीछे २ ही चलपडा। राजा अपने देशसे निकलकर दूसरे राजाके देशमें जब कि पहुँच गया तब राज्यसम्बन्धी सब वस्त्रोंको तिसने फेंक दिया। गरीबोंके वस्त्र पहनकर एक टूटे फूटे मकानमें जा रहा। और वहांके राजाका एक मकान बनता था और बहुतसे मजदूर तिसमें जाकर नित्य मजदूरी करते थे। राजा और रानी तथा नौकर ये तीनों भी जाकर उन मजदूरोंमें नित्यही टोकरी ढोनेकी मजदूरी करने लगे। जो कुछ इनको मजदूरीका मिलता उसीमें प्रसन्नतापूर्वक अपना निर्वाह

करते थे। जब कि, एक बरस इनको वहांपर रहते व्यतीत होगया, तब एक दिन राजाके नौकरको एक अपना स्वदेशी मिला। उसने कहा, हम अब अपने देशको जाते हैं। तुम भी अपने घरके लिये कोई वस्तु हमको खरीद करके लेदेवो। हम तुम्हारे घरमें लेजाकर देदेवेंगे। उस नौकरने राजासे कहा, एक आदमी हमारे घरको जानेवाला है वह कहता है, तुमभी अपने घरके लिये कुछ भेजो, हम लेते जायँगे। राजाके पास पांच पैसे खरचेमेंसे बचे हुए थे। राजाने उसको वह देदिये और कहा, इनका कोई फल लेकर तुम अपने घरको भेजदेवो। आगे उनके देशमें अनार नहीं होता था। तिसने पांच पैसेके पांच अनार खरीद कर अपने घरको भेज दिये। जब कि, इसके घरमें अनार पहुँच गये उधर वहांका राजा उसी दिन बीमार होगया। हकीमने राजासे कहा, यदि अनारका फल मिलैगा, तब तुम अच्छे होगे, बरन यह बीमारी जल्दी जानेकी नहीं है। राजाके हुक्मसे अनारकी तलाश होनेलगी। तब किसीने बताया फलानेके घरमें कल पांच अनार आये हैं, राजाने मन्त्रीको भेजा, उन्होंने अनार देदिये, हकीमने अनारका रस निकालकर दिया, राजा अच्छा होगया। राजाने एक लाख रुपैया उनके घरमें भेजदिया। उसको जब इतना द्रव्य मिलगया तब उस अपने सम्बन्धीको सब हाल रुपैया मिलनेका लिख भेजा और यह भी लिख भेजा अब तुम नौकरी छोडकर अपने घरको चले आवो। जब उस नौकरको घरसे खत गया तब उसने सब हाल अपने राजासे कहा। राजाने कहा, पांच अनारके बदले उसका पांच लक्ष रुपैया देना था, उसने थोडा दिया है वह पांच पैसे हमारी सत्यधर्मकी कमाईके थे। अच्छा, अब तुम अपने घरको भी जावो। वह नौकर अपने घरको चला गया, ये सब हाल उस राजाको भी मिला, जिसने तिस राजाका राज्य लेलिया था उसने राजाको बडी खातिरदारीसे बुलाकर कहा, आप अपना राज्य लीजिये और मेरे कसूरको माफ करिये। राजाका मन फिर राज्य लेनेमें नहीं था परन्तु उसकी प्रार्थनासे लेलिया और वह अपने राज्यपर चला गया। हे चित्तवृत्ते ! सत्यधर्मकी कमाईमें इतनी बडी शक्ति है जो कि, तुमको सुनाई है, इसी हेतुसे सत्यधर्मकी कमाईका अन्न शुद्ध होताहै ॥ ६७ ॥

हे चित्तवृत्ते! असत्यधर्मकी कमाईसे जो अन्न लिया जाता है वह अशुद्ध अन्न कहा जाता है।क्योंकि, अधर्मका असर तिस अन्नमें भी आता है,इससे वह अन्न चित्तकी अशुद्धिका हेतु होता है। अब अशुद्ध अन्नके फलको भी तुम सुनोः–

जिस कालमें भीष्मजी बाणोंकी शय्यापर शयन करके अनेक प्रकारके धर्मोंको युधिष्ठिरके प्रति सुनाने लगे, तिस कालमें द्रौपदीने भीष्मजीसे कहा, महाराज! जिस समय दुःशासन मेरे केशोंको पकडकरके सभामें लाया था और दुर्योधन मेरेको नग्न करने लगा था तिस समयमें आप भी तिसी सभामें बैठे थे। आपने उस समयमें इस तरहके धर्मोंको सुनाकर दुर्योधनादिक पापियोंको क्यों न अधर्म करनेसे हटाया? तब भीष्मजीने कहा, हे द्रौपदी! तिस समयमें तिस पापी दुर्योधनके अन्नको हमने खाया था इसलिये उस समयमें हमको कोई भी धर्म नहीं फुराया। क्योंकि, पापीके अन्नको खाकर चित्त मलिन होजाता है और मलिन चित्तमें धर्मका स्फुरण नहीं होताहै। हे चित्तवृत्ते! अशुद्ध अन्नमें इतनी बडी शक्ति है जिसने भीष्मजी धर्मात्माके चित्तको भी मलिन कर दिया, तब इतर पुरुषोंकी कौन कथा है॥ ६८॥

हे चित्तवृत्ते! एक और विरक्त महात्माका हाल सुनोः–

एक विरक्त महात्मा एक ग्रामके बाहर गुफा बनवाकर रहते थे। बहुतसे लोकोंको पास नहीं आने देते थे और स्त्रीका तो दर्शन भी नहीं करते थे।एक दिन दोपहरके वक्त एक युवती उनके लिये भोजनको लेगई उन्होंने भोजनको लेलिया और युवतीसे कहा तुम गुफाके बाहर बैठो। वह बाहर बैठी रही और वह भीतर भोजन करने लगे। भोजन करते ही उनका मन विकारी होगया। उन्होंने स्त्रीको भीतर बुलाया, वह भीतर चलीगई। उन्होंने स्त्रीके हाथको पकड कर कहा, हमसे सम्बन्ध कर। स्त्रीने कहा, यदि कोई पुरुष इस समय यहाँ पर आजायगा तब हमारी और आपकी फजीहत होगी। आपको ऐसा कर्म न करना चाहिये। वह जबरदस्ती करनेलगे, स्त्री चिल्ला उठी, इतनेमें एक दो सत्संगी वहांपर पहुँच गये, महात्मा बडे लज्जित हुये। उन्होंने कहा, महाराज! आपको तो कभी भी ऐसी वार्ता नहीं फुरी थी।आज ऐसे अधर्म करनेमें

आपकी रुचि कैसे होगई? महात्मा कहने लगे किसीने हमको दुष्ट अन्न खिलाया है, तिस अशुद्ध अन्नका यह फल है ॥ ६९ ॥

एक नगरमें एक पंडित बडा आचारवान् और विचारवान् रहता था, राजाके अन्नको और नीच जातिवालेके अन्नको वह कदापि नहीं खाता था। एक दिन राजाकी रानीने उनको किसी कार्य्यके लिये बुलाया, पंडितजी गये। रानी आंगनमें आकर पंडितजीसे बातचीत करने लगी और उसी स्थानमें रानीने अपना मोतियोंका हार उतार कर धर दिया। रानी बातचीत करके गृहके भीतर चली गई। रानीका मोतियोंका हार उसी जगहमें छूट गया। पंडितजी हारको उठाकर अपनी जेबमें डालकर घरको चले आये। घरमें आकर जब पंडितजीने अंगरखा उतारा, तब जेबसे हार गिरा। पंडितजी हारको देखकर शोच करने लगे, ऐसा अधर्म हमसे क्यों हुवा। स्त्रीसे पूछा आज अन्न कहाँसे आया था? स्त्रीने कहा एक सुनार दे गया था, सुनारको बुलाकर पूछा। उसने कहा, हमने एकके जेवरमेंसे सोना थोडासा चुराया था, उसको बेंचकर अन्न खरीदकर थोडासा आपके यहां भेजा था बाकीका अपने घरको भेजा था। पंडितने कहा, उसी अन्नका यह फल है जो हमने मोतियोंके हारकी चोरी कर ली है। हारको रानीके पास भेज दिया। आपने उस दिन उपवासव्रत किया। हे चित्तवृत्ते! दुष्ट अन्न महात्मापुरुषोंके चित्तको भी विकारी कर देता है, तब इतरोंकी कौन कथा है ॥ ७० ॥

हे चित्तवृत्ते! सत्यभाषणसे भी चित्तकी शुद्धि होती है, असत्य भाषणसे चित्तकी अशुद्धि होती है और अन्नकी शुद्धिका भी मूलकारण सत्यभाषण ही है। सत्यभाषणके तुल्य संसारमें दूसरा न कोई धर्म है न भक्ति है। सत्यभाषणवालेकी जगत्में प्रतिष्ठा होती है इसलिये सत्यवादियोंके भी इतिहासोंको तुम सुनोः—

एक ब्राह्मणके दो पुत्र थे। जब कि एक लडका तिसका बारह बरसका हुवा और दूसरा आठ बरसका हुवा, तब तिस ब्राह्मणका देहांत होगया। तिसके देहांत होनेके कुछ दिन पीछे बडे लडकेने अपनी मातासे कहा, हम

विदेशमें विद्याध्ययन करनेको जायँगे. आप हमको विदेश जानेके लिये आज्ञा दीजिये । प्रथम तो तिसकी माताने हीलाहवाला किया । जब कि लडकेने बहुतसी विनती की तब माताने जानेके लिये तिसको आज्ञा दे दी और तिसकी माताने कहा बेटा ! पचास अशरफी मेरे पास हैं, तिसमें पचीस तो तुम्हारे छोटे भाईका हिस्सा है तिसको तो मैं अपने पास रख छोडती हूँ और पचीस अशरफी जो कि तुम्हारा हिस्सा है तिनको मैं तुम्हारी गोदडीमें सी देती हूँ । जहां पर तुमको खरचका काम लगे एक एक निकालकर अपना काम चला लेना । जब कि लडका काफलेके साथ होकर विदेशमें जाने लगा तब माताने तिससे कहा, बेटा ! एक वचन हमारा और भी मानना । बेटेने कहा, माता कहो। तिसने कहा बेटा ! झूँठ कभी नहीं बोलना चाहे सर्वस्व भी नष्ट होजाय, तब भी झूँठ नहीं बोलना । बेटेने कहा,माता ऐसाही करूंगा । मातासे रुखसत होकर लडकेने काफलेके साथ चल दिया । एक दिन जंगलमें काफला जाकर उतारा। रात्रिके समय चोरोंकी एक धाड तिस काफलेपर आपडी और सबको चोर लूटने लगे । सबको लूटकर फिर तिस लडकेसे आकर चोरोंने कहा, लडके तुम्हारे पास क्या है ? लडकेने कहा, हमारे पास पचीस अशरफी हैं, चोरोंने कहा वह कहाँपर हैं, लडकेने कहा, इस गोदडीमें सब सिईं हुईं हैं । चोरोंके सरदारने गोदडीको जब खोल कर देखा तब तिसमें ठीक ठीक पचीस अशरफी निकल आईं। चोरोंके सरदारने कहा लडके तुमने हमको अशरफी क्यों तवाईं हम तो चोर हैं सबको लूटनेके लिये आये हैं, सबको लूटा है, यदि तुम न बताते तब तुम्हारी अशरफी बच जातीं।लडकेने कहा, जब हम घरसे विदेश जानेके लिये निकले थे तब हमारी माताने हमसे कहा था बेटा झूँठ कभी भी नहीं बोलना चाहे सर्वस्व चला जाय, मैंने कहा ऐसेही करूंगा । अपनी माताकी आज्ञाको हमने पालन किया है, इसवास्ते हमने आपको अपनी अशरफी बतादी हैं । चोरोंके सरदारने कहा, देखो बडे आश्चर्यकी वार्ता है, यह छोटासा बालक होकर अपनी माताकी आज्ञाको नहीं फेरता है और इसने पूर्णरूपसे अपनी माताकी आज्ञाका पालन किया है। इसको हम धन्यवाद देते हैं और हम लोगोंको धिक्कार है जो अपने स्वामी ईश्वरकी आज्ञाको पालन नहीं

करते हैं, क्योंकि ईश्वरने कहा है, किसी जीवको भी मत सतावो और हम सताते हैं। ईश्वरकी आज्ञाको नहीं पालन करते हैं. आजसे पीछे हम भी निंदित कर्मको नहीं करेंगे और मजदूरी करके खावेंगे। चोरोंके सरदारने जितना माल उस काफलेका लूटा था सबको फेर दिया और लडकेकी गोदडीमें उन अशरफियोंको सीकर तिस लडकेके हवाले कर दिया और तिस लडकेको जहांपर जाना था, वहांपर तिसको पहुँचा भी दिया। हे चित्तवृत्ते! एक लडकेके सत्यभाषणसे सब काफलेका माल भी बचगया और वह चोर भी साधु बनगये ॥ ७१ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और सत्यवादीके इतिहासको तुम सुनो:–

हे चित्तवृत्ते! एक समय चातुर्मासमें वर्षा न होनेके कारण बडा अकाल पडा। अन्नके विना लोक बडे दुःखी हुए। सब लोक मिलकर राजाके पास गये और राजासे प्रजाने कहा, वर्षाके विना लोक मरे जाते हैं, कोई उपाय करना चाहिये। तब राजाने भी बहुत मन्त्रोंके जप कराये और भी अनेक प्रकारके पाठ पूजा आदिक कराये, तब भी वर्षा न हुई। राजाने अपने मंत्रियोंसे कहा, आपलोक अब कोई उपाय बतावें जिसके करनेसे वर्षा हो, नहीं तो प्रजा सब नष्ट भ्रष्ट होजायगी। मंत्रियोंने कहा, महाराज! इस नगरके फलाने दरवाजेके पास एक क्षत्रीकी दूकान है वह बडा सत्यवादी है, यदि आप उससे कहैं और वह ईश्वरसे प्रार्थना करै तब अवश्य ही वर्षा होगी। राजा सबेरे पालकीमें सवार होकर उसकी दूकानपर जा बैठे। उसने कहा राजन्! आपके आगमनका कारण क्या है? राजाने कहा, महाराज! पानी नहीं बरसताहै पानी बरसानेके लिये आपके पास आये हैं। क्षत्रियने कहा, राजन्! किसी देवता वगैरहकी पूजा कराओ। राजाने कहा, सब उपाय हम कर चुके हैं, अब आपकी शरणको आये हैं जबतक वर्षाको नहीं करोगे तबतक हम भोजन नहीं करैंगे। उन्होंने राजाको बहुतसी बातें कहकर टाला परन्तु राजाने एक भी न मानी। जब दोपहर हो गई और राजापर भी धूप आगई तब तिसने समझलिया कि अब राजा किसी तरहसे भी नहीं जाता है, तब उन्होंने अपने तराजूको पसन्न करके कहा हे तराजू! यदि हमने हमेशा सचही बोला है और सच्चा

सौदा ही किया है तब तो वर्षा हो। यदि हमने झूठ बोला है और झूठा ही सौदा किया है, तब तो वर्षा न हो। इतना कहते ही दो मिनटके पीछे पूर्व दिशासे एक बादल उठा और देखते २ ही उसने आकाशको आच्छादन कर लिया और पानी बरसने लगा, इतना जोरसे पानी बरसने लगा जो राजाको अपने घरतक पहुँचना मुश्किल होगया। उधर तो राजा पालकीपर सवार होकर अपने घरको गये और इधर इन्होंने दूकानको बन्द करके कहींको चल दिया। हे चित्तवृत्ते! सत्यवादीकी वाणीमें सिद्धि रहती है तिसका कथन निष्फल नहीं जाता है ॥ ७२ ॥

हे चित्तवृत्ते! सत्संगसे भी चित्तकी शुद्धि होती है और कुसंगसे चित्तकी अशुद्धि होती है। अब तुम सत्संगके माहात्म्यपर भी एक दो दृष्टान्तोंको सुनोः—

एक राजाके नगरके बाहर दो महात्मा रहते थे और राजा भी कभी २ उनके पास जाया करते थे। उसी राजाके नगरमें एक भारी चोर रहता था, वह नित्य ही चोरी करता था परन्तु कभी पकडा नहीं गया था। एक दिन वह चोर भी भगवां वस्त्र करके साधुका भेष बनाकर उन दो महात्माओंके पास जा बैठा। तीसरे पहर राजा जब उन दो महात्माओंके दर्शनको गये तब राजाने देखा एक तीसरे नये महात्मा भी वहांपर बैठे हैं। राजा उन दो महात्माओंके पास होकर फिर उन तीसरे महात्माके पास जाकर बैठ गये और कुछ द्रव्य भेंटके लिये राजाने उनके आगे धर दिया था। तब चोरने राजासे कहा, राजन्! मैं साधु नहीं हूँ, मैं तुम्हारे नगरका चोर हूँ। साधु जानकर मेरे आगे आप द्रव्यको क्यों रखते हैं? राजाने कहा, आप अपनेको छुपानेके लिये ऐसा करते हैं। आप महात्मा हैं। फिर चोरने कहा, मैं सच्चा कहता हूँ मैं साधु नहीं हूँ, थोडे द्रव्यके लिये मैं लोकोंको लूटनेवाला हूँ। राजाने कहा, जब कि आप थोडे द्रव्यके लिये लोकोंको लूटते हैं तब यह बहुतसा द्रव्य जो कि मैं आपको देता हूँ इसको आप क्यों नहीं अंगीकार करते हैं? चोरने कहा मैंने चोरके भेषको त्यागकर अब साधुका भेष बनाया है। एक तो इस भेषको लज्जा लगजायगी, दूसरा दो घडीका महात्माका संग होनेसे मेरी वह बुद्धि अब जाती रही है। जो कि, अधर्म करके लोकोंसे द्रव्यको मैं लेता था उस वृत्तिको

त्याग करके मैं अब निवृत्तिमार्गमें होगया हूँ । हाथीकी सवारी करके अब मैं गधेकी सवारी करनी नहीं चाहता हूँ। राजा द्रव्यको लेकर चले गये, वह चोर भी दो घडीके सत्संग करनेसे साधु बनगया ॥ ७२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक नगरके बाहर चोरोंके दो चार घर थे, एक चोरके पांच लडके थे, वह नित्यही अपने लडकोंको उपदेश करता था, बेटा ! कभी भी किसी मंदिरमें न जाना और न कभी सत्संगमें और न कथावार्तामें जाना और न कभी किसी महात्माके पास जाना । इसी तरहके वह उपदेशोंको करता २ एक दिन मर गया । उसके मरनेके थोडे दिन पीछे एक दिन तिसके बडे लडकेके मनमें आया, आज रात्रिको राजाके घरमें चलकर चोरी करके कुछ मालटाल लावें । रात्रिके समयमें वह जब अपने घरसे चला तब रास्तामें कथा होती थी, उसको देखकर तिसने विचार किया, पिताका उपदेश है जहांपर कथा होती हो वहांपर नहीं जाना । अब इस रास्तासे हम कैसे निकलें, या कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिस करके हमारे कानमें कथाका शब्द न जाय । उसने दोनों कानोंमें थोडी २ रुई भरदी और कथाके बीचसे होकर चला । जब कि, कथाके समीप पहुँचा तब तिसके एक कानसे रुई गिर गई उस वक्त ऐसी कथा हो रही थी, देवताकी परछाई नहीं होती है और देवताके भूमिपर पांव भी नहीं लगते हैं । इतनाही उसने सुना और राजाके घरमें सेंध लगाकर बहुतसा माल तिसने चुराया और लेजाकर अपने घरमें तिसने गाड दिया था । सबेरा जब हुआ तब राजाको मालूम हुआ जो रात्रिको चोरी हो गई है । राजाने चोरके पकडनेके लिये हुक्म दिया। कई एक सिपाही चोरकी खोज करते रहे परन्तु चोरका पता न लगा-सके; तब राजाने वजीरसे कहा, अब वजीर भेष बदल कर चोरका पता लगाने लगे। वजीरने नगरके बाहर जो कि चोरोंके घर थे उनहीं घरोंमें चोरका अनुमान किया । रात्रिके समय वजीर कालीदेवीका स्वांग बनाकर अर्थात् बदनमें स्याई मलकर बालोंको खोलकर एक हाथमें खप्पर लेकर आधीरातके समय उनके द्वारपर जाकर कहने लगा, काली माईकी भेंटको आपलोक क्यों नहीं देते हो ? रोज २ मनमाना माल ले आते हो, आज सब भेंट हमारी देदो

नहीं तो नाश करदेऊँगी। डरके मारे सब भाई बाहर द्वारके निकल आये और हाथ जोडने लगे, माता! तुम्हारी भेंटको कल हम जरूर देवेंगे इतनेमें बडे बटको कथावाली वार्ता याद आगई। उसने कहा, चलकर दिया लेकर देखें तो जब तिसने दीयेसे देखा तो तिसकी परछाहीभी दिखाई पडी और पृथिवी पर पांवभी लगे हुए देखे। उसने जान लिया यह देवता नहीं है यह तो कोई ठग है, लठ्ठ लेकर कालीको मारने चला काली भाग गई तब तिसने विचार किया हमने दो बातें कथाकी सुनी हैं, उन्ही दो बातोंने हमारी जान बचाई और हमारा मालभी बचाया है। यदि हमलोक हमेशा सत्संगमें जाया करेंगे और इस खोटे कर्मको छोड देवेंगे तब तो हमको महान् फल होगा, ऐसा विचार करके चोरने उसी दिनसे चोरी करनी छोड दी और सत्संगमें सब जाने लगे वह सब चोर साधु बनगये। ऐसा सत्संगका माहात्म्य है॥ ७४॥

हे चित्तवृत्ते! सत्संगका ऐसा माहात्म्य है जो चोरभी साधु बनजाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! एक बगीचेमें एक गुलाबके पेडमें जंगली घासने जड पकड ली और धीरे २ वह बढने लगी। एक दिन बागवान्ने उसको फलते देखकर काटना चाहा तब उस घासने कहा हमको मत काटो, क्योंकि हमारेमें गुलाबकी सुगंधी आदिक गुण आगये हैं। गुलाबकी संगतसे अब में गुलाबरूप होगयी हूँ, मैं घास नहीं रही हूँ, यदि मेरेमें गुलाबवाले गुण न आते तब काटना मुनासिब था। बागवान्ने तिसको न काटा। सत्संगका ऐसा फल है और कवियोंने भी सत्संगके फलको दिखाया है॥ ७९॥

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः॥
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥ १॥

महान् पुरुषोंका जो संग है, वह किसकी उन्नतिको नहीं करता है? कमलके पत्रपर स्थित जलकी बूँद भी मोतीकी शोभाको धारण करती है॥ १॥

दोहा।

जोहि जैसी सङ्गत करी, तैं तैसो फल लीन।
कदली सीप भुजंगमुख, एक बूँद गुण तीन॥ १॥

जल जिमि निर्मल मधुर मधु, करत ग्लानिको अन्त ।
पान किये देखे छुये, हरष देत तिमि सन्त ॥ २ ॥

सवैया ।

ज्ञान बढै गुनवानकी संगत ध्यान बढै तपसी संग कीने ।
मोह बढै परिवारकी संगत लोभ बढै धनमें चित दीने ॥
क्रोध बढै नर मूँढकी संगत काम बढै तियके संग कीने ।
बुद्धि विवेक विचार बढै कवि दीन सुसज्जन संगत कीने ॥

दोहा ।

तुलसी लोहा काठ सँग, चलत फिरत जलमाहिं ॥
बडे न डूबन देत हैं, जाकी पकडें बाहिं ॥ १ ॥
नीचहु उत्तम संग मिल, उत्तमही ह्वै जाय ॥
गंग संग जल झीलहू, गंगोदकके भाय ॥ २ ॥
जाहि बडाई चाहिये, तजै न उत्तम साथ ॥
ज्यों पलाश संग पानके, पहुँचे राजा पास ॥ ३ ॥
भले नरनके संगसे, नीच ऊँचपद पांय ॥
जिमि पिपीलिका पुष्पसंग, ईश शीश चढ जाय ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक दिन बडी वर्षा होतीथी और सरदीके दिन थे, एक नग्न साधु घूमते हुए नगरमें एक मकानके छज्जेके नीचे द्वारपर खडे होगये, यह मकान राजाकी वेश्याका था । मकानके भीतरसे एक लौंडीने उन महात्माको देखकर जाकर अपनी बीबीसे कहा, एक महात्मा नग्न कीचमें लिपटे हुए बाहर वर्षामें खडे काँप रहे हैं और बोलते चालते भी नहीं हैं । वेश्याने लौंडीसे कहा, उनका हाथ पकड कर तू उनको भीतर मकानके ले आ । लौंडी जाकर उनका हाथ पकडकर मकानके भीतर ले आई । बीबीने गर्म जलसे उनको स्नान कराकर बदन पोंछकर बिछोनेपर लिटा दिया और गर्म चाह पिलाई । फिर सुन्दर भोजन कराया, पश्चात् आप भोजन करके उनके पाँव दाबने लगी । तब महात्माने उस वेश्याकी तरफ एक निगाहसे देखा

मानो उसके हृदयमें अमृतकी धारा बरसादी और सोगये । वह वेश्या रात्रिभर उनके पांवको ही दबाती रही, सवेरे वह सोगई । महात्माकी जब नींद खुली उन्होंने भी रजाईको फेंककर चल दिया, कुछ देरके पीछे वेश्याकी जब नींद खुली तब उसने लौंडीसे पूछा महात्मा कहांको गये हैं ? लौंडीने कहा वह जङ्गलको चले गये । वह वेश्या भी नग्न ही घरसे निकल कर नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे जाकर नीचे सिर करके बैठी रही।राजाको खबर हुई,राजा तिसके पास गये और उसको बुलाने लगे, तब वेश्याने कहा, अब मैं वह भंगन नहीं रही हूँ. जो कि पहले तुम्हारे मैलेको उठाती थी अब तुम चले जावो । राजाने नौकरोंको हुक्म किया कि,कोई आदमी इसके पास आने न पावे।जहां जानेकी इसकी इच्छा हो वहांपर यह चली जाय कोईभी इसको न रोकै । दूसरे दिन वह वेश्या वहांसे चली गई । हे चित्तवृत्ते ! महात्माकी नजर जिसपर पडजाय वह भी कल्याणरूप होजाता है । इसीपर गुरु नानकजीने कहा है-" नानक नदरी नदर निहाल" गुरु नानकजी कहते हैं, महात्मा अपनी दृष्टि करके ही दूसरेको कृतार्थ कर देते हैं ॥ ७६ ॥

छप्पय ।

लियो नीम सत्संग भयो मलयागिर चंदन ॥
लोहा पारस परस दरस दरसत है कुंदन ॥
मिलै सुरसरी नीर सीर निहचै सो गंगा ॥
मिश्रीसों मिल वंश तुल्यो ताहूके संगा ॥
लोह तरचो नौका मिले साखी सकल सुन लीजिये ॥
साधु संगते साधु मिल रामनाम रस पीजिये ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! उपकार करनेसेभी चित्तकी शुद्धि होती है, दयाका नाम ही उपकार है, जिसमें दया होगी वही उपकार करेगा । जिसमें दया न होगी वह कभी भी उपकार नहीं कर सकता है । लोकमें भी दयालु पुरुषकी कीर्ति होती है और दयाहीनकी निंदा होती है । 'दयाविन सिद्ध कसाई' ऐसा लोक कहते हैं । दया चित्तकी शुद्धिका मुख्य साधन है । अब तुमको दयालु पुरुषोंके दृष्टांतको सुनाते हैं:—

एक नगरके बाहर एक मंदिरमें एक महात्मा रहते थे, वह नित्य ही वेदांतकी कथाको करते थे, उनकी कथामें एक क्षत्रिय भी जाता रहा परन्तु गरीव था। सडकके किनारेपर खुमचा लगाकर बैठकर बेचता था। एक दिन उसने महात्मासे कहा, महाराज! हमने अन्वयव्यतिरेक करके देहादिकोंसे भिन्न आत्माको निश्चय कर लिया है और महावाक्योंकरके तथा अनुभव करके भी जीव आत्माका अभेद निश्चय कर लिया है, फिर भी हमको उस आत्मसुखकी प्रतीत नहीं होती है इसमें क्या कारण है? महात्माने कहा, कोई पाप पूर्व जन्मका इसमें प्रतिबंधक है वह पाप जब कि दूर होजावेगा तब तुमको आपसे आप उस सुखकी उपलब्धि होजायगी। महात्माकी वार्ताको सुनकर वह चुप रहगया। एक दिन वह क्षत्रिय सडकके किनारेपर कूएके समीप छायामें खूमचा रखकर बैठा था, गरमीके दिन थे एक चमार घासका गट्ठा उठाकर चला आता था जब कि वह कूएंके समीप पहुँचा तब गरमी खाकर गिर पडा और वेहोश होगया। तुरंत ही वह क्षत्रिय उठा और तिस चमारको उठाकर तिसने छायामें करदिया और ठंढा पानी निकाल शरवत बनाकर तिसके मुखमें थोडा २ डालना शुरू किया। थोडी देरमें वह चमार होशमें आगया, कुछ थोडासा तिसको दानाभी खिलाया, वह चमार उठकर चला गया। उसी दिनसे उस क्षत्रियके हृदयमें आत्मसुख भान होने लगा। उसने जाकर महात्मासे कहा। महात्माने कहा, तुम्हारेमें जो कोई पाप प्रतिबंधक था वह दया करनेसे जाता रहा। क्योंकि तुमने एक आदमीको प्राणदान दिया है। हे चित्तवृत्ते! दयाका वडा भारी फल है. दयासे सर्व प्रकारके पाप दूर होजाते हैं और इस लोकमें भी यश मिलता है॥ ७७॥

एक नगरमें एक बनियां वडा धनी था, वह नित्य ही यज्ञोंमें अपने धनको खर्च करता था, जब कि सब धन बनियांका खर्च होगया, तब बनियांको खानेपीनेसे भी तंगी होने लगी। तब तिसकी स्त्रीने कहा, तुम किसी राजाके पास जावो और एक यज्ञके फलको बेंचकर कुछ द्रव्य लाकर अपना अच्छी तरहसे गुजर करो। जब कि बनियांने जानेकी तैयारी करी तब तिसकी स्त्रीने नौ रोटी मोटी २ रास्तेमें खानेके लिये तिसके कपडेमें बांध दी। बनियाँ

तीसरे प्रहर जंगलमें एक कूएंके किनारे पहुँचा और वहांपर बैठकर सुस्ताने लगा तब देखता क्या है वृक्षकी कोटरमें एक कुतिया व्याई हुई पडी है, नव तिसके बच्चे हैं तिसको चूस रहे हैं और तीन दिनकी वह भूखी है, क्योंकि तीन दिनसे वर्षा बराबर हो रही थी कहींको वह जाने नहीं पाई । अतिकृश और दुर्बल हो गई थी, अब उसमें कहीं जानेकी हिम्मत भी नहीं थी। बनियांने एक एक रोटी करके सब रोटी तिसको खिलादीं और आप भूखा रह गया । कुतिया जी गई, तिसके जीनेसे तिसके बच्चे भी सब जी गये । बनियां दूसरे दिन राजाके पास पहुँचा और एक यज्ञके फलके बेचनेको कहा । राजाने ज्योतिषीको बुलाकर पूंछा, तुम प्रश्न देखो इसने कितने यज्ञ किये हैं, उन सबमें किस यज्ञका फल उत्तम है उसीको हम खरीद करेंगे । ज्योतिषीने कहा, जो कि, इसने रास्तामें कुतियाको रोटियें खिलाई हैं उससे नव जीवोंके प्राण बचे हैं वही इसके सब यज्ञोंमेंसे उत्तम यज्ञ है उसीके फलको यदि यह बेचे तब तुम खरीदकर लेओ । राजाने बनियांसे कहा । बनियांने कहा, तिस यज्ञके फलको मैं नहीं बेचूंगा और किसी यज्ञके फलको खरीदो तो बेचूंगा । राजाने और यज्ञके फलको न खरीदा और बनियांको कुछ रुपैया देकर बिदा कर दिया । हे चित्तवृत्ते ! दयाका कितना बडाभारी फल है ॥ ७८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मनुष्य तो दया करतेही हैं, परन्तु इतर जीव भी दया करते हैं, अब मनुष्यसे इतर जीवोंका भी दयापर दृष्टान्त सुनोः—

एक पंडित रास्तेमें चले जाते थे, उन्होंने जंगलमें देखा कि मूसोंकी बडी भारी कतार चलीआती है, उनमें एक मूसा अन्धा था, उसके मुखमें एक घासका तिनका पकडाकर दूसरे मूसेने उसी तिनकेको अपने मुखमें पकडा था तिसके पीछे २ वह अन्धा मूसा भी चला आता था, अब देखिये मूसा आदिक जानवरोंमें भी उपकार करनेकी बुद्धि रहती है, जो मनुष्य शरीरको धारण करके उपकारसे हीन है वह पशुओंसे भी बुरा है. क्योंकि मनुष्यशरीर तो खासकर उपकार करनेके लियेही उत्पन्न हुआ है ॥ ७९ ॥

परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ॥
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि ॥ १ ॥

धनों करके और प्राणों करके भी परोपकार करना चाहिये, क्योंकि परोपकारके बराबर सौ यज्ञका भी पुण्य नहीं ॥ १ ॥

परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम् ।
यावन्तः पशवस्तेषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ २ ॥

जो मनुष्य परोपकारसे शून्य है तिसके जीनेको भी धिक्कार है, क्योंकि जितने पशु हैं, उनके चर्म भी परोपकार करते हैं ॥ २ ॥

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ३ ॥

अपने लिये इस लोकमें कौन मनुष्य नहीं जीता है, परन्तु जो परोपकारके लिये जीता है वही जीता है, दूसरा नहीं जीता है ॥ ३ ॥

दोहा ।

विरछा फलै न आपको, नदी न अचवै नीर ।
परोपकारके कारणे, संतन धरो शरीर ॥ ४ ॥
शेष शीश धारै धरा, कछु न आपनो काज ।
परहित परसारथि रथी, वाइक वने न लाज ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अमेरिकामें एक सेनापति कुछ सेनाको लिये जाता था, जंगलमें रास्ताको वह भूल गया । यद्यपि दो चार घण्टेतक इधर उधर भ्रमण करता रहा, परन्तु रास्ता तिसको न मिला और सेना सब भूँख प्याससे भी बहुत घबराई । तिस जंगलमें एक घासका छप्पर तिस सेनापतिको दिखाई पडा तिस छप्परमें एक मनुष्य बैठा था। तिससे सेनापतिने कहा, हम लोकोंको भूँख और प्यास लगी है । उसने कहा, हमारे साथ तुम चलो। वह आगे २ चला पीछे तिसके वह सब सेना चली, थोडी दूर जब गये तब अन्नका ढेर दिखाई पडा । सेनापतिसे तिसने कहा, यह दूसरेका है इसको मत छूना। फिर आगे जब थोडी दूर गये तब एक अन्नका ढेर दिखाई पडा और पासही उसके पानीका तालाव था । उसने कहा, यह अन्न अपना है, जितना आपको चाहिये सो लेलीजिये और यह पानीका ताल भी मौजूद है । सेनापतिको जितने अन्न

जलकी जरूरत थी सो ले लिया। फिर उससे कहा, हमको अब तुम रास्ता बतावो, उसने साथ जाकर रास्ता भी उनको बता दिया। वह सब सेना आरामसे अपनी जगहपर पहुँच गई। अपने प्रयोजनसे बिना दूसरेका भला करना इसका नाम उपकार है।

हे चित्तवृत्ते! चित्तकी शुद्धिके साधनोंको तुम्हारे प्रति हमने कह दिया। अब तुम्हारी इच्छा क्या सुननेकी है सो कहो ॥ ८० ॥

इति श्रीस्वामि-हंसदासशिष्येण स्वामि-परमानंदसमाख्याधरेण विरचिते ज्ञानवैराग्यप्रकाशनामकग्रन्थे वैराग्योपदेशवर्णनं नाम प्रथमः किरणः ॥ १ ॥

द्वितीय किरण।



हे चित्तवृत्ते! जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिके साथ मिलनेके लिये सम्पूर्ण विषय भोगोंका त्याग करके अपने मृतक पतिके साथ जलकर पतिके लोकको प्राप्त होजाती है, तैसे तू भी विषयभोगोंका त्याग करके अपने मनरूपी पतिके साथ ज्ञानरूपी अग्निमें सती न होजावैगी तबतक तेरेको आत्मसुखका लाभ कदापि नहीं होगा ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते! सर्पके पास एक मणि रहता है, तिस मणिमें दो गुण रहते हैं एक तो तिस मणिमें प्रकाश गुण रहता है, दूसरे आनंद गुण रहता है। सर्प तिस मणिके प्रकाश गुणको तो जानता है, परन्तु तिसके आनंद गुणको वह नहीं जानता है। जब कि तिस सर्पको भूख लगती है तब वह पर्वतकी अन्धेरी कंदरामें जाकर उसको अपने मुखसे निकालकर धर देता है। उस मणिके धरनेसे उस कन्दरामें प्रकाश होजाता है, तिस मणिके प्रकाशसे वह सर्प मच्छरोंको मार मार करके खाता है, दूसरे आनन्द गुणको वह जानता नहीं। इसलिये वह आनंदको प्राप्त नहीं हो सक्ता है और यदि तिस मणिके आनन्द गुणको वह जानता तब मच्छरोंके खानेसे वह आनन्दको न प्राप्त होता, किंतु तिसी मणिके आनन्द करके वह आनंदको प्राप्त होता। इसी

प्रकार हे चित्तवृत्ते ! तू भी तिस आत्माके प्रकाश गुणको जानती है, इसीसे तू तिस प्रकाशकरके विषयरूपी मच्छरोंको मार मार कर खाती रहती है। यदि तू तिस आत्माके आनंदरूपी गुणको जानती तब विषयोंके पीछे कदापि न दौडती ॥ २ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! वह आत्मा कौन है और कहाँपर रहता है और कैसे जाना जाता है और किस प्रकार तिसके ये दो गुण जाने जाते हैं ? मेरे प्रति विस्तारपूर्वक तिस आत्माका तू निरूपण कर ।

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! वह आत्मा सर्वत्र रहता है, परन्तु तिसकी उपलब्धिका स्थान यह शरीर ही है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व जगत्में बराबर ही पडताहै, परन्तु तिसकी उपलब्धि विशेषरूप करके जलमें या दर्पणमें ही होती है, तैसे सामान्यरूप करके आत्मा भी सर्वत्र विद्यमान है तथापि विशेषरूप करके शरीरमें ही रहता है और आत्माके प्रकाश करके ही शरीर भी प्रकाशमान होरहा है । चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! इस तरहसे जो आप कथन करते हैं, सो मेरे समझमें नहीं आता है। क्योंकि, मैं स्त्रीजाति स्थूल बुद्धिवाली हूं, आप दृष्टांतद्वारा तिस आत्माको मेरे प्रति बताइये ।

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! तुम एक मिट्टीका बना हुआ मटका लाओ जिसका मुख चौडा हो और पांच जिसमें ऊपरकी तरफ छिद्र हों रे और एक मिट्टीका दिया लावो जिसमें तेल बत्ती धरी हो, और एक सुन्दर रसवाला फल लावो, और एक कोई रूपवाली वस्तु लावो और एक वाजा लावो, और एक सुगंधीवाला पुष्प लावो और एक कोई कोमल स्पर्शवाली वस्तु लावो । चित्तवृत्ति सब वस्तुवोंको ले आई और कहने लगी, हे भ्राता ! आपने जो वस्तुएँ बताई हैं उन सबको मैं ले आई हूँ । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! अँधेरी कोठडीमें इस दियेको जगाकर पृथिवीपर धर देवो और इस मटकेको ऊंधा करके तिस दियेके ऊपर धर दो और पांचों छिद्रोंके पास उन पांच वस्तुओंको धर देवो । चित्तवृत्तिने दियेको जगाकर तिसके ऊपर मटकेको ऊँधा धरकर तिसके समीप पांचों

वस्तुओंको धर दिया। अब विवेकाश्रम चित्तवृत्तिसे पूंछते हैं, हे चित्तवृत्ते! ये जो पांचों छिद्रोंके समीप पांचों वस्तु रक्खी हैं सो हरएक छिद्रके पास जो हरएक वस्तु धरी हैं सो सब अपने प्रकाश करके तुमको दिखाई देती हैं या किसी दूसरे प्रकाश करके दिखाई देती हैं? चित्तवृत्ति कहती है, हे भ्राता! ये जो वाजासे आदि लेकर पांच वस्तुएं पांचों छिद्रोंके समीप रक्खी हैं सो सब अपने आपसे नहीं दिखाती हैं किन्तु दीपकके प्रकाश करके सब दिखाई पडती हैं, और मटका वगैरह भी सब दीपकके ही प्रकाश करके प्रकाशमान हो रहे हैं, स्वतः इनमें प्रकाश नहीं है। क्योंकि मटकेके भीतर यदि दीयेका प्रकाश न हो, तब मटका प्रभृति कोई भी प्रकाशमान न हो अर्थात् कोई भी दिखाई न पडै। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब मैं तेरेको दार्ष्टांतमें इस दृष्टांतको घटाकर समझाता हूँ। यह जो स्थूल शरीर है, मटकास्थानापन्न है, और जो इसमें मुख, नासिका, चक्षु करणादिक इन्द्रियोंके गोलक हैं, ये सब छिद्रस्थानापन्न हैं। अन्तः—करणरूपी दीपक है तिसकी वृत्तिरूपी बत्ती है, वासनारूपी तिसमें तेल भरा है, और ज्योतिरूप आत्मा तिस बत्तीमें आरूढ होकर प्रकाश कर रहा है, तिस आत्माके प्रकाश करके ही देहादिक इंद्रियें सब प्रकाशमान हो रही हैं स्वतः देहादिकोंमें प्रकाश नहीं है। क्योंकि, चेतनस्वरूप आत्माही है, आत्मासे भिन्न सब जड हैं। इसी वास्ते आत्माके सम्बन्ध करके देहादिक सब चेतन प्रतीत होते हैं, स्वतः इनमें चेतनता नहीं है। जब कि आत्मा इस शरीरका त्याग करदेताहै, तब यह मृत्तिका कही जाती है। जबतक आत्मा इसमें विराजमान है, तबतक यह सर्व व्यवहारोंको करता है, आत्माके चले जानेसे कोई व्यवहारको भी नहीं कर सक्ता, और आत्मा देहादिकोंमें रह करके भी सबसे असंग होकरके ही रहता है और देहादिकोंका साक्षी भी है। हे चित्तवृत्ते! जिस चेतन आत्माकी सत्ता करके देहादिक चेतनवत् प्रतीत होते हैं वही मेरा आत्मा है। चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम! आपने कहा है आत्मा देहादिकोंके अन्तर रहताहै और फिर असंग भी है यह वार्ता मेरी समझमें नहीं आती है, इसको फिर किसी दृष्टांत-द्वारा मेरेको समझाइये॥ ३॥

हे चित्तवृत्ते ! नृत्यशालामें जो दीपक जगाकर रात्रिके समयमें धरा जाता है वह दीपक तिस समग्र सभाको प्रकाश करता है और सभाके भीतर जो कि सभापति है तिसको भी प्रकाश करता है और जो नृत्य करनेवाली वेश्या है और जितने कि सभासद हैं अर्थात् नृत्यकारीके देखनेवाले हैं, उन सबको भी दीपक प्रकाश करता है और जितने कि वेश्याके साथ बाजोंको बजानेवाले हैं, उन सबको भी दीपक ही प्रकाश करता है, यह तो दृष्टांत है। अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं। यह शरीररूपी तो एक सभा है याने नृत्यशाला है, तिसके भीतर चेतनरूपी दीया प्रकाशमान हो रहा है, मनरूपी सभापति हैं, बुद्धिरूपी वेश्या नृत्यकारी नृत्य कररही है, इन्द्रियरूपी सब बाजोंके बजानेवाले हैं, विषयरूपी सभासद सब देखनेवाले हैं, जैसे दीपक अपने स्थानमें स्थित होकर सभा और सभापति आदिकोंको प्रकाश करता है और उनसे असंग होकर और उनका साक्षी होकर शरीररूपी सभाको और मनरूपी सभापति आदिकोंको प्रकाश भी करता है और उनसे असंग भी रहता है और मन आदिकोंका साक्षीरूप करके भी स्थित रहता है, दीपककी तरह किसीके साथ संसर्गको भी प्राप्त नहीं होता है, इस रीतिसे आत्मा असंग है ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको भी तू श्रवण कर। जितनी रचना तेरेको बाहर दिखाई पडती है, इतनीही रचना इस शरीरके भीतर है बल्कि इससे अधिक भी कुछ रचना होती है। जैसे कि, बाहरके ब्रह्मांडकी रचना चेतन ईश्वरकी सत्ताकरके होती है, तैसे शरीररूपी ब्रह्मांडकी रचना जीवात्माकी सत्ता करके ही होती है सो भी तुमको दिखाते हैं। हे चित्तवृत्ते ! इस शरीरके भीतर नाभिस्थानसे एक नाडी निकली है, तिस एकसे फिर एकसौ नाडी निकली हैं, फिर उन सौ नाडियोंमेंसे एक एक नाडीसे बहत्तर ७२ हजार नाडी निकली हैं, फिर एक २ में आगे औरभी अनेक नाडियें निकली हैं, जो कि, बालोंके अग्रभागसे भी अति सूक्ष्म हैं, फिर इसी शरीरमें स्थूल नाडियें भी बहुतसी हैं, जो कि, सारे शरीरमें फैली हुई हैं। आगे उन नाडियोंमें भी तारतम्य है, परस्परस्थूल सूक्ष्मता है, जैसे वृक्षकी जडसे एक मोटी डाल निकलती है उस एकसे आगे चार पांच उससे कुछ पतली डालें निकलती हैं,

फिर उन एक २ डालसे अन्य पतली डालें निकलती हैं फिर उनसे और बहुतसी पतली २ निकलती हैं ऐसे ही इस शरीररूपी वृक्षका भी हिसाब है। फिर इसके भीतर और बडी भारी रचना हो रही है। नाभीसे ऊपर षट्चक्र हैं, फिर इसके भीतर बहुतसी हड्डियोंके जोड हैं, उनमें स्थूल सूक्ष्मता है, हजारों वैद्योंने इस शरीरके भीतरकी रचनाके जाननेके लिये बडे २ यत्न किये तबभी उनको पूरा २ हाल इसकी रचनाका न मिला क्योंकि जैसे बाहरका ब्रह्माण्ड अनन्त है, तैसे भीतरका ब्रह्मांड भी अनन्त है फिर शरीरमें अनेक स्थान बने हैं। प्रथम जब पुरुष अन्नादिकोंको खाता है, तब वह अन्न भीतर पेटमें जाता है, जठराग्नि वहांपर फिर तिसको पकाती है, फिर तिसका एक सारभूत निकलकर जुदे स्थानमें जाता है, मल नीचे गुदास्थानमें जाता है, जल मूत्रस्थानमें जाता है वह जो सार रस पका हुआ है, वह फिर दूसरे स्थानमें जाकरके पकता है। तिसका स्थूल भाग रुधिर होता है, सूक्ष्म भाग वीर्य होजाता है, उन दोनोंको नाडियोंमें व्यानवायु हिसाबसे बाँटती है, सब नाडियें और हड्डियें अपने २ कामको करती हैं। उसी चेतन आत्माकी सत्ता करके शरीरमें सब नाडियें वगैरह अपने २ कामको करती हैं, आत्मा नहीं करता। यदि आत्माको कर्त्ता मानोगे तब एकही आत्मा एक क्षणमें भीतरके हजारों कामोंको कैसे करसकैगा और अनेक आत्मा एक शरीरमें रह नहीं सक्ते हैं जो अपना २ काम सब करेंगे। यदि कहो आत्माके हुक्मसे सब मन इन्द्रियादिक और नाडियें आदिक अपना २ काम करते हैं सो भी नहीं बनता है। क्योंकि मन, इन्द्रिय और नाडी आदिक सब जड हैं, जडपर एक हुक्म नहीं होसक्ता है, दूसरा हुक्मकी तामील करनेका तिसको ज्ञान नहीं है। तीसरा राजा जैसे एक देशमें नौकरोंको काम करनेका हुक्म देकर आप दूसरे देशमें चलाजाता है और तिसके वहाँपर न रहनेसे भी काम होता रहता है तैसे आत्माके भी शरीरसे चले जानेपर काम होना चाहिये सो तो नहीं होता है इसलिये हुक्मसे कहना नहीं बनता है, हुक्म चेतनपरही होसक्ता है, जिसको तिसका ज्ञान है जडपर हुक्म नहीं होसक्ता है। इसलिये शरीरके भीतर आत्माके हुक्मसे काम होना बनता भी नहीं है। फिर सब किसीको यह ज्ञान तो है जो मेरा आत्मा देहके भीतर विद्यमान है, परन्तु यह ज्ञान किसीको भी नहीं है जो

मेरा आत्मा इदानींकालमें भीतर इस कामको कर रहा है या मन आदिकोंको हुक्म दे रहा है, या प्रेरणा कररहा है इसीसे जाना जाता है, आत्मा अकर्ता है, असंग है, केवल साक्षीमात्र है, जैसे बाहरके ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ती तारागण सब लोक हैं, और जड हैं, परन्तु व्यापक चेतन ईश्वरकी सत्ता करके अपने कामको सब कर रहे हैं। ईश्वर न किसीको प्रेरणा करता है और न किसीको कुछ कहता सुनता है, केवल चेतन ईश्वरकी सत्ता करके सूर्य्य चन्द्रमा आदिक सब तारागण अपने २ चक्रपर घूम रहे हैं और भी जगत्के काम सब हो रहे हैं। तैसे देहके भीतर भी जो कि चेतन आत्मा है, तिसकी सत्ता करके देहके भीतर सब काम हो रहे हैं। जब आत्मा देहको त्यागकर देहान्तरमें चला जाता है, तब देह मुरदा होजाता है, फिर गलसड जाता है। इन्हीं युक्तियोंसे साबित होता है आत्मा अकर्ता है असंग है। जिस वास्ते आत्माके प्रकाश करकेही सब काम देहमें होते हैं और बाहरका व्यवहार भी होता है इसी वास्ते आत्माके प्रकाश गुणका ही सबको ज्ञान है तिसके आनन्दगुणका ज्ञान किसीको नहीं, इसी हेतुसे जीव बाह्य विषयोंकी तरफ ही सब दौडते हैं। उस आनन्दरूपी गुणकी प्राप्तिका मुख्य साधन प्रथम वैराग्य है, फिर चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप योग दूसरा साधन है अर्थात् बाह्यविषयोंकी तरफसें वृत्तिको हटाकर अन्तर आत्माके सम्मुख करना ये दूसरा साधन आत्मानन्दकी प्राप्तिका है, इसीमें दृष्टान्तको दिखाते हैं ॥ ९ ॥

एक राजाकी कन्याकी मैत्री मन्त्रीके लडकेके साथ होगई। कुछ दिनोंतक तो यह वार्ता छिपी रही किन्तु फिर धीरे धीरे प्रगट होने लगी। तब राजाको भी इसका हाल मालूम होगया। राजाने अपने मनमें यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे मन्त्रीका लडका भी मर जाय और हमारी बदनामी न हो। राजाने अपने वैद्यको बुलाकर कहा एक ऐसी दवाई बनाकर डिबियामें बंद करके लाओ जिसके पास वह डिबिया रात्रिको धरीजाय वह आदमी उसकी सुगंधिसे मर जाय। वैद्यने कहा, कलको मैं ऐसी ही दवाई बनाकरके लाऊँगा। दूसरे दिन वैद्य वैसी दवाईको बनाकर डिबियामें बंदकर रूमालमें बांधकर राजाके पास ले आया। राजाने रात्रिके

समय उस डिबियाको एक लौंडीको दिया और कहा, इसको वजीरके लडकेके पलंगपर शिरकी तरफ धर आना। वह लौंडी जाकर उसके पलंगपर तकियाके पास शिरकी तरफ धर आई। आगे वह लडका अफीम खाता था तिसने जाना, नौकर अफीमकी डिबियाको धर गया है; उसने डिबियाको खोलकर उसमेंसे बहुतसी दवाई जहरवाली खाली परन्तु वह मरा नहीं, किन्तु जीताही रहा। तब राजाने इसका सबब वैद्यसे पूंछा। वैद्यने कहा, जिसकी गंधसे आदमी मर जाता है तिसके खानेसे भी जो नहीं मरा है इसका सबब यह है जो तिस आदमीका मन किसी दूसरेमें लगा है उसको अपने शरीरकी भी कुछ खबर नहीं है, इसीसे वह नहीं मरा है। उसके मरनेका सहज ही एक उपाय है। वह यह है जिसके साथ तिसका अति प्रेम है वह स्त्री सुन्दर भूषण और वस्त्रोंको पहरकर तिसके सामने खडी होकर उसकी आंखसे आंख मिलाकर कहै अब फिर कदापि नहीं आऊँगी, ऐसा कहकर तिसके सामनेसे हट जाय अर्थात् छिपजाय, तब वह तुरन्त ही मर जायगा। राजाने कन्यासे कहा। कन्या उसी तरह शृङ्गार करके तिसके सम्मुख जाकर तिसकी आंखमें आंख मिलाकर कहने लगी अब मैं फिर कभी भी नहीं आऊँगी, ऐसा कहकर जब वह हटी तुरन्त ही वह भी मर गया। कन्याके कहनेसे उसको ऐसा भारी दु:ख हुआ जिस दुःखको वह सम्हार नहीं सका, तुरन्त ही उसके प्राण निकल गये। यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाते हैं। हे चित्तवृत्ते! बुद्धिरूपी राजकन्या है. मनरूपी लडकेके साथ इसका चिरकालका प्रेम होरहा है, बुद्धिरूपी कन्या जब कि, ब्रह्मविद्यारूपी शृंगारको करके मनके सम्मुख होकर मनकी तरफसे हटकर आत्माकी तरफ हो जाती है, तिसी कालमें मन भी विषयोंकी तरफसे मरजाता है, मनके मरनेके समकालमें ही पुरुषको आत्मानन्दकी प्राप्ति होजाती है और पुरुषका जन्म-मरण-रूपी संसार भी छूट जाता है। क्योंकि, यह संसार तो सब मनका ही बनाया हुआ है:—

ब्रह्मविंदु उपनिषद्में कहा है:—

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ १ ॥

मन दो प्रकारका होता है, एक तो शुद्ध मन होता है, दूसरा अशुद्ध मन होता है। जो मन कामना करके युक्त है, वह अशुद्ध कहा जाता है और जो मन कामसे रहित है, वह शुद्ध कहा जाता है ॥ १ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ २ ॥

मनुष्योंका मन ही बन्ध मोक्षका कारण है। जब मन विषयोंमें आसक्त होजाता है तव बन्धका कारण होजाता है और जव निर्विषय होजाता है तब मुक्तिका कारण हो जाता है॥ २ ॥

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥ ३ ॥

जिस हेतुसे मनके निर्विषय होजानेका नाम ही मुक्ति कथन किया है, तिसी हेतुसे मुमुक्षु पुरुषोंको उचित है कि मनको नित्यही निर्विषय करें ॥ ३ ॥

निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ४ ॥

विषयोंके सँगसे रहित होकर जब मन हृदयमें जिस कालमें रुक जाता है तिसी कालमें मन परमपदको प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानं च मोक्षश्च ह्यतोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ ५ ॥

तावत्पर्यंत मनका निरोध करना चाहिये यावत्पर्यंत मन हृदयमें नाशको नहीं प्राप्त होजाता है। मनके नाश होजानेका नाम ही ज्ञान और मोक्ष भी हैं और तो सब ग्रन्थोंका विस्तारमात्रही है ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मनको प्रथम शुद्ध करना ही कर्त्तव्य है, मनकी शुद्धिके विना पुरुषको नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती है और मनकी शुद्धिसे रहित जो पुरुष है, वही अज्ञानी कहा जाता है। क्योंकि, तिसको अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं है और विना अपने स्वरूपके ज्ञानसे ही यह जीव दुःखको प्राप्त होता है। जहां तहां इसकी फजीहत होती है, इसीमें तुम्हारेको एक दृष्टांत सुनाते हैं:-

एक पुरुषका नाम वेवकूफ था और तिसकी स्त्रीका नाम फजीहती था, एक दिन तिसकी स्त्री तिसके साथ लडाई झगडा करके कहींको चली गई, तब वह अपनी स्त्रीको जंगलमें खोजनेके लिये गया। एक आदमीने तिससे पूछा, तुम जंगलमें किसको खोजते हो? उसने कहा, मैं अपनी स्त्रीको खोजता हूँ। उसने पूंछा, तुम्हारी स्त्रीका नाम क्या है? उसने कहा, तिसका नाम फजीहती है। फिर पूंछा, तुम्हारा नाम क्या है? तिसने कहा, हमारा नाम वेवकूफ है। तव कहा, फिर तुम स्त्रीको क्यों खोजते हो वेवकूफको फजीहतियोंकी कौन कमती है। जहांपर जाओगे उसी जगहपर तुम्हारी बहुतसी फजीहती होजायगी। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अव इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं। अपने स्वरूपसे भूला हुआ जीव वेवकूफ हो रहा है, इधर उधर जंगलों और पर्वतोंमें पडा आत्माको खोजता है, इसी वास्ते जहांपर जाता है, वहांपर ही इसकी फजीहती होती है। क्योंकि, शरीरके अंतर आनंदरूप आत्माका त्याग करके क्षणपरिणामी विषयोंमें आनन्दको खोजता है। जैसे कूकर सूखी हड्डीको चवाता है, तब तिसके मसूढोंसे रुधिर निकसता है, तिसी रुधिरका रस तिसको स्वादु लगता है और वह जानता है इस हड्डीसे मेरेको स्वाद आरहा है। सूखी हड्डीमें स्वाद कहां है, स्वाद तो तिसको अपने रुधिरमें है। तैसे विषयी पुरुष भी विषयमें स्वादको मानता है, विषयमें स्वाद नहीं है, क्योंकि, विषय जड है स्वाद तो अपने आत्मामें ही है। यदि स्त्रीरूपी विषयमें आनन्द होता तव भोगोत्तर कालमें भी होता, ऐसा तो नहीं है। किन्तु वीर्यके स्खलन कालमें क्षणमात्र वृत्ति स्थिर होजाती है, तिस वृत्तिमें चेतनका प्रतिबिंब पडता है, तिसीसे इसको आनन्दकी प्रतीति होती है, वह आनन्द आत्माका ही है। विषयका नहीं है। परन्तु इतना इसको ज्ञान नहीं है जो यह आनन्द आत्माका है। यदि इतना इसको ज्ञान होजाय तव विषयोंके पीछे यह टक्करें न मारे। जिस वास्ते अज्ञानी बनकर विषयोंके पीछे यह जीव दुःख पाता है इसी वास्ते इसकी फजीहती होती है॥ ६॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयपर तुमको हम एक और दृष्टांत सुनाते हैं। एक पुरुषके पुत्रका नाम रूपसेन था। तिस रूपसेनके सम्पूर्ण वदनमें बाल बहुतसे

थे । जब कि वह बाल बहुत बढगये तब एक दिन तिसके पिताने मनमें विचार किया बालोंके बढजानेसे तो लडका हमारा बडा कुरूप जान पडता है, बाल इसके मूंड दिये जायँ, तब यह सुन्दर मालूम होने लगेगा । उसने लडकेसे बालोंके मुँडवानेके लिये कहा परन्तु लडकेने न माना क्योंकि वह उनके मुंडवानेके सुखको जानता नहीं था । जब रात्रिके समय लडका सो गया तब तिसके पिताने तिसके सब बालोंको मूँड डाला । सवेरे जब कि, लडका जागा तब तिसने अपने बदनपर बालोंको न देखकर जाना मैं तो वह रूपसेन नहीं हूं क्योंकि, रूपसेनके बदनपर तो बडे बडे बाल थे मेरे वदनमें तो वह नहीं हैं; चलो कहीं रूपसेनको खोज लावें । ऐसा विचार करके वह जंगलमें जाकर रूपसेनको खोजने लगा । जब कि तिसने रूपसेनको कहीं भी न देखा तब घरमें आकर अपने बापसे पूंछने लगा रूपसेन कहां है ? उसने कहा रूपसेन तू ही है । पिताके कहनेसे तिसका भ्रम दूर हुआ और तिसने जान लिया जिसको मैं खोजता था वह तो मैंही हूं मैं भ्रम करके अपनेको बाहर जंगलोंमें खोजता फिरता था । यह तो दृष्टान्त है । अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं । यह जो जीवात्मा है यह ही ईश्वररूप था, राग द्वेषरूपी बाल जो इसके अंतः-करणरूपी वदनमें निकसे थे, उन्हों करके यह कुरूप प्रतीत होता था । और अपने असली स्वरूपसे भूलकर अन्यरूपसे अपनेको इसने मान रखा था अर्थात् रागद्वेष कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकोंसे रहित होकर अपनेको कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकों-वाला इसने मान रखा था । पितारूप गुरुने इसकी कुरूपताके हटानेके लिये रागद्वेषरूपी बाल इसके दूर कर दिये तब भी इसका भ्रम दूर न हुआ, फिर भी अपनेको खोजताही रहा । जब इसको विचार हुआ, तब इसने फिर गुरुरूप पितासे पूछा वह रूपसेनरूपी आत्मा कहां है ? तिसने कहा वह तुमही हो, ऐसा जब कि, महावाक्यों करके तिसको बताया तब इसका भ्रम दूर हुआ और इसने जानलिया कि जिसको मैं अपनेसे भिन्न जान करके खोजता था वह तो मैंही निकला । फिर अपनेको सुखरूप आत्मा मानकर यह सुखी होगया ॥ ७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक बनियां बडा धनी और धर्मात्मा रहता था तिसका एकही लडका था, परन्तु तिस लडकेका चालचलन अच्छा नहीं था। बनियांने उसको सुमार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये बहुतसा उपदेश किया, तब भी लडकेने नहीं माना तब बनियांने क्या किया, कि एक लकडीके खम्भेमें बहुतसा द्रव्यभर करके तिसको मकानके भीतर आंगनमें गडवा दिया और अपनी वहीमें लिख-दिया, कि बेटा तुमको जब द्रव्यका काम पडै तब थम्भशाहसे लेलेना । कुछ दिनोंके पीछे वह बनियां मर गया तब तिसके लडकेने बाकीका सब धन भी खराब कर दिया जब कि, तिसके पास खानेको भी न रहा, तब वह वही-खातेको खोलकर देखने लगा। कई एक पत्र उलटनेके बाद एक पत्रेपर लिखाहुवा मिला बेटा जब कि तुमको कुछ रुपैयोंका काम पडे, तब थम्भशाहसे लेलेना । वह लडका थम्भशाहकी तलाश करने लगा । जब कि कहीं भी तिसको थम्भशाहका पता न लगा, तब दुखी होकर घरमें एक टूटीसी खाट-पर पड रहा। एक महात्मा तिस बनियांके गुरु कहींसे आ निकले । उन्होंने आकर बनियांको पूछा। लोकोंने कहा वह तो मरगये हैं और उसका लडका घरमें है परंतु सब धनको उसने उजाड दिया है, अब वह खानेसे भी तंग है। महात्मा बनियांके घरमें गये और जाकर देखा तो उसका लडका शोकयुक्त एक खाटपर पडा है। महात्माने हालचाल पूछा तो उसने सब हाल कह सुनाया। और यह भी कहा कि वहीपत्रेपर लिखा है जब कि, तुमको रुपैयाका काम पडै तब थंभशाहसे लेलेना। मैंने थंभशाहका बहुतसी तलाश की है परन्तु तिसका पता कहीं भी नहीं लगता है। महात्माने विचार किया थंभ नाम खम्भेका है मालूम होता है उस बनियांने लडकेको मूर्ख जानकर अपना धन खंभेमें गाड दिया है। महात्माने घरमें जाकरके देखा तो आंगनमें एक खंभा लगाहुआ उनको दिखाई पडा उन्होंने अपनी लाठीसे तिसको ठकोरा तब तिसमेंसे छन्नसी आवाज आई महात्माने जान लिया इसी खम्भेमें धन गाडा है। तिस लडकेसे कहा यदि तू आगे सुचालसे रहे तब हम तुमको थंभ-शाहको बताते हैं। लडकेने नेम कर दिया मैं कभी भी आजसे लेकर कुकर्म नहीं करूँगा। महात्माने कहा इस खम्भको तुम खोदो इसीमें तुमको धन मिलैगा। इसीका नाम थंभशाह है। लडकेने तिसको खोदा तब उसमें बहु

तपा धन तिसको मिला । उसी दिनसे कुकर्मका तिसने त्याग कर दिया और महात्माको गुरु करके मानने लगा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं । इस शरीररूपी थम्भमें पितारूपी परमेश्वरने आत्मरूपी धनको गाड दिया है, जीव विषयभोगरूपी कुकर्ममें लगकर जब दुःखी हुआ तब सुखरूपी धनकी तलाश करने लगा, महात्मारूपी गुरुने कहा बाहर सुख नहीं है सुखरूप धन तो तुम्हारे शरीररूपी खम्भेमें ही गडा है, महात्मा आत्मतत्त्ववित् गुरुकी कृपासे आत्मारूपी धनकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! जीवात्माके रहनेका नियत स्थान शरीरको आपने बताया है और ईश्वरात्माको सारे ब्रह्मांडभरमें आपने बताया है आपके कथनसे तो जीवात्माका और ईश्वरात्माका भेद सिद्ध हुआ, दोनोंका अभेद तो सिद्ध न हुआ । विवेकाश्रम कहते हैं-हे चित्तवृत्ते ! निरवयव निराकारका उपाधिके बिना भेद किसी प्रकारसे भी नहीं हो सक्ता है । उपाधियों करके ही जीवात्मा ईश्वरात्माका भेद प्रतीत होता है, वास्तवसे इन दोनोंका भेद नहीं है; किन्तु अभेद ही है । जैसे एकही आकाश घट मठ उपाधियोंके भेदसे घटाकाश मठाकाश कहा जाता है, वास्तवसे आकाशमें भेद नहीं है । उपाधियोंके विद्यमानकालमें भी आकाशका भेद नहीहै और उपाधियोंके नाश होजाने पर भी आकाशका भेद नहीं है, क्योंकि निराकार वस्तुका भेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता केवल भेदका कथनमात्रही है । तैसे निराकार निरवयव शुद्ध बुद्ध स्वरूप आत्माका भी भेद बिना उपाधिके किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता है उपाधियोंके विद्यमान कालमें भी आत्माका अभेदही है और उपाधियोंके नाश होजाने पर भी आत्माका अभेदही है । व्यवहारमें उपाधियोंके विद्यमान कालमें भेदका जो कथन है वह मिथ्या है, क्योंकि भेद केवल कथनमात्रही है वास्तवमें नहीं है । वह एकही चेतन माया अविद्या इन दो उपाधियों करके जीव ईश्वर नामसे कहाता है । स्वरूपसे जीव ईश्वरका भेद नहीं है । एकही चेतन तीन प्रकारके भेदको प्राप्त होजाता है, माया उपाधि करके सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहा जाता है और अविद्या उपाधि करके अल्पज्ञ असमर्थ जीव नामसे कहा जाता है । जो कि माया अविद्या दोनों उपायोंसे रहित है वह शुद्ध

ब्रह्म कहा जाता है । चित्तवृत्ति कहती है एकही चेतन तीन प्रकारका कैसे होगया ? आपसे आप होगया या किसी दूसरेने कर दिया ? आपसे आप तो नहीं हो सक्ता है, क्योंकि वह इच्छा आदिकोंसे रहित है, दूसरा कोई इससे बडा चेतन माना नहीं है, जिसने इसके तीन भेद कर दिये हों तब कैसे तीन प्रकारका चेतन बन गया ? विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! एकही चेतन मायाकरके तीन प्रकारका बन गया है।जैसे चेतन अनादि हैं तैसे माया भी अनादि है । अनादि उसको कहते हैं जिसकी उत्पत्तिका कोई भी आदि काल न हो जो उत्पत्तिसे रहित स्वतः सिद्ध हो वही 'अनादि कहा जाता है, जो उत्पत्तिवाला हो वह सादि कहा जाता है और तिस मायामें दो अंश हैं एक शुद्ध, एक मलिन । शुद्ध उपाधि ईश्वरकी है, मलिन जो अविद्या है वह जीवकी उपाधि है। उपाधियोंके अनादि होनेसे जीव ईश्वर भी दोनों अनादि कहे जातेहैं, इसीसे जीव ईश्वरका भेद भी अनादि कहा जाताहै और अविद्या चेतनका कल्पित संबन्ध भी अनादि है। तात्पर्य यह है जीव १, ईश्वर२, शुद्धचेतन३, जीव ईश्वका भेद ४, अविद्या ५, अविद्याचेतनका सम्बंध ६, यह षट् पदार्थ अनादि हैं, इन छहोंमेंसे एक शुद्धचेतन अनादि अनंत है और वाकीके पांच अनादि सांत हैं अर्थात् जीवत्व ईश्वरत्व ये दो धर्म भी मिथ्या हैं केवल चेतन भाग जो धर्मी है सो सत्य है, वही सद्रूप चेतन एक है, द्वैतसे रहित है । द्वैत सब स्वप्नकी तरह कल्पित है, जैसे स्वप्नका प्रपंच सब झूँठा है विना हुएही प्रतीत होता है, तैसे जाग्रत्का प्रपञ्च भी सब झूँठा है विना हुवेही प्रतीत होता है । संपूर्ण जगत् जब कि विना हुएकी तरह प्रतीत होता है, तब तिसमें यह कहना नहीं बनता है जो जगत्को किसने वनादिया है और कव बना है ? मायाका स्वरूप अनिर्वचनीय है । अनिर्वचनीय उसको कहते हैं जिसका कुछ भी निर्वचन अर्थात् निर्णय न होसकै । यदि सत्य कहें तब तिसका नाश न हो, सो नाश होता है । असत्य कहें तिसकी प्रतीति न हो, प्रतीति भी तिसकी होती है । सत्य असत्यसे विलक्षण हो उसीका नाम माया है । वडे वडे ऋषि मुनि इसका विचार करते करते हार गये किसीको भी मायाके स्वरूपका पता नहीं लगा है । जो मायाके पीछे पडता है उसीको माया काटकर खाजाती है ।

इसलिये बुद्धिमान् इस मायाके स्वरूपका निर्णय नहीं करता है किंतु जो इसके त्यागकी इच्छाको करता है वही इससे बच जाता है। इसमें एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:-

एक पुरुष एक वृक्षके नीचे बैठा था, ऊपरसे एक काले रंगका सर्प उनकी गोदमें आकरके गिरा, अब जो वह पुरुष यह विचार करै जो यह सर्प किसीने फेंका है या आपसे आप गिरा है। तबतक तो वह सर्प उसको काटही लेगा और वह विचार भी तिसका निष्फल होजायगा, इसलिये वह बिनाही विचारके तुरन्तही तिस सर्पको फेंकदे। सर्पके फेंकनेसे ही वह सर्पसे डरनेसे बच सक्ता है विचार करनेसे वह नहीं बच सक्ता है। इसी तरह मायाके स्वरूपका भी विचार है, मायाको भी अनिर्वचनीय जानकर तुरन्त ही इसका त्याग करदेवै और आत्माके विचारमें लग जावे तब शीघ्र ही आत्मानंदको प्राप्त हो जायगा ॥ ९ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको सुनो—किसी पुरुषने एक महात्मासे पूछा संसाररूपी वृक्षका बीज कौन है? और इसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ और फल पत्र पुष्पादिक कौन हैं? महात्माने कहा संसाररूपी वृक्षका बीज तो माया है। वह माया क्या है सो स्त्री है येही संसाररूपी वृक्षका बीज है और शब्द स्पर्श रूप रस गंधादिक इसके पत्ते हैं। काम क्रोधादिक इसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ हैं। पुत्र कन्यादिक तिसके फल हैं। तृष्णारूपी जल करके यह बढता है। जिस पुरुषने स्त्रीरूपी मायाका त्याग कर दिया है, उसने संसारका त्याग कर दिया है। क्योंकि स्त्रीही बंधनका कारण है, मोहके वशमें प्राप्त होकर पुरुष स्त्रीका संसर्ग करते हैं, क्षणमात्र सुखके लिये अनेक जन्मोंमें फिर कष्टको उठाते हैं और स्वर्गादिकोंमें जो विषयभोग हैं, उनकी प्राप्तिके लिये पुरुष बडे बडे उपवासादिक व्रतोंको करतेहैं वह सुख भी दुःखसे मिलाहुवा है और विचार दृष्टिसे तो सब लोकोंमें जितना कि, विषयजन्य सुख है वह बराबर ही है।

आत्मपुराणमें कहा है:-

रेतसो निर्गमो यावत्सुखं तावद्धि विद्यते।
विण्मूत्रयोर्विसर्गेऽपि ततो वै नाधिकं सुखम् ॥ १ ॥

स्त्रीके साथ भोगकालमें वीर्यके त्याग करनेमें जितना सुख होता है उतना ही सुख विष्ठा और मूत्रके त्याग करनेमें भी होता है, तिससे अधिक स्त्रीके संभोगका सुख नहीं है ॥ १ ॥

जायते म्रियते ब्रह्मा विट्क्रिमिश्च तथैव हि ।
सुखदुःखकरं तद्वत्सदेहत्वं समं द्वयोः ॥ २ ॥

जैसे क्रिमि जन्मता मरता है, तैसे ब्रह्मा भी जन्मता मरता है और सुख दुःख और सदेहत्व भी दोनोंको बराबर ही है ॥ २ ॥

तिस आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायमें दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिने इन्द्रके प्रति कहा है:—

निंद्यामो वयं यद्वत्कष्टं जन्म शुनोऽधनाः ।
अस्माकं च तथैवैते निन्दन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥

ऋषि कहते हैं हे इन्द्र ! जैसे हमलोक कूकरके जन्मकी निंदा करते हैं, तैसे ही ब्रह्मवादीलोक हमारे जन्मकी निंदा करते हैं ॥ ३ ॥

उत्कृष्टता यथास्माकं स्वदेहे शक्र विद्यते ।
शुनोपि च स्वदेहे सा तादृश्येव हि वर्तते ॥ ४ ॥

हे इंद्र ! जैसे हम लोगोंकी उत्कृष्टता अपने देहमें है, तैसे कूकरकी उत्कृष्टता अपने देहमें है ॥ ४ ॥

श्वविष्ठासदृशो देहः शक्र सर्वशरीरिणाम् ।
हेयं धिया परित्यक्ते तस्मिन्नात्मा प्रकाशते ॥ ५ ॥

हे शक्र ! कूकरके विष्ठाके तुल्य सब जीवोंके शरीर भी मल मूत्रवाले हैं । हेय बुद्धिका त्याग करके तिसमें आत्माही प्रकाशमान है अर्थात् शरीरोंकी जैसे तुल्यता है तैसे आत्माकी भी है ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! विचार दृष्टिसे तो कहीं भी न्यूनाधिकता प्रतीत नहीं होती है केवल विचारकी न्यूनाधिकता प्रतीत होती है । विचारहीन दुःख पाता है, विचारवान् सुखको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक लडकेने मधु खानेके लिये मधुके छातामें हाथ डाला, ज्योंही तिसने मधुके लोभसे हाथ डाला त्योंही मधुमाखियोंने तिसको काट

खाया, यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टांतमें जीवरूपी लडकेने विषयरूपी मधुके भोगनेके लिये हाथ डाला आगे रागद्वेष रूपी मक्खियोंने इसको काट खाया है उनके काटनेसे यह दुःखी भी रहता है, तब भी उन विषयोंका यह त्याग नहीं करता है ॥ ११ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको सुनोः—किसी ग्राममें एक कुतिया व्याई थी; उसने बहुतसे बच्चे दिये, ग्रामके लडकोंने हरएकको अपना २ बनाकर तिसके गलेमें अपना २ पट्टा बाँध दिया । किसीने लाल, किसीने पीला किसीने काला, जिसने जिस बच्चाके गलेमें अपना पट्टा बांधा, वह बच्चा उसीके पीछे दौडने लगा, यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टान्तमें अविद्यारूपी कुतिया व्याई है, तिसने जीवरूपी बच्चोंको किया है, आचार्यरूपी बालकोंने अपने २ कण्ठी और माला आदिक पट्टे अपने २ बच्चोंके गलोंमें बांध दिये हैं, इसी वास्ते वह अपने २ आचार्यके पीछे चलते हैं, विचार नहीं करते हैं इसी संसार चक्रमें सब जीव भ्रमते हैं । हे चित्तवृत्ते ! वेदांतशास्त्रके विना जितने शास्त्र हैं ये सब जीवको फँसानेवाले हैं, छुटानेवाला कोई भी नहीं है । क्योंकि सब इसको पापी अधर्मी ही बनाते हैं, असंग आत्माको पापोंका संगी वेदसे विरुद्ध बनाते हैं । वेदांतशास्त्र इसको पापोंसे रहित शुद्धबुद्धस्वरूप कहता है, तुम वेदांतको धारण करो ॥ १२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! किसी नगरमें एक साहूकार रहता था, तिसके तीन लडके थे । तीनों लडके जब सयाने होगये, तब एकदिन साहूकारने अपने तीनों लडकोंको बुलाकर कहा-मेरे पास एक अलौकिक मणि है, उस मणिमें अनेक गुण भरे हैं, और वह मणि इस डिबियामें रक्खी है, इस मणिको तुमलोक सँभाल करके रक्खो । रात्रिके समय अपनी २ पारी लगाकर अर्थात् रात्रिके तीन विभाग करके एक २ भागमें एक २ लडका इस मणिको लेकर एकांतमें बैठकर इस मणिमेंसे गुणोंको ग्रहण करै । लडकोंने मणिवाली डिबियाको लेकर हिफाजतसे धर दिया, कुछ कालके पीछे उनका पिता मरगया, तब लडकोंने एकदिन रात्रिके तीन विभाग करके अर्थात् सवा २ पहरकी एक २ की पारी लगादी । प्रथम एक लडका तिस मणिको लेकर कोठेपर एकांत

देशमें जाकर बैठा । जब कि, तिसने मणिको निकालकर अपने आगे रक्खा तब मणिके प्रकाशसे अँधेरा जातारहा, जब कि, कुछ क्षण मणिको रखे हुए व्यतीत हुआ तब तिसका मन खाली बैठनेमें न लगा । तब उसने क्या किया, थोडीसी राखको बटोरकर अपने पास रख लिया, जब कि थोडी देर बीते तब जरासी राखको मणिपर डाल देवे फिर जरासी अपने ऊपर डाल देवे, इसी तरह करते उसकी पारी गुजरगई । फिर दूसरेकी पारी आई उसको भी सवा पहर बिताना मुश्किल होगया । वह तिस मणिके प्रकाशमें शिकार करके खाने लगा । फिर जब तीसरेकी पारी आई और वह मणिको आगे रखकर बैठा, इतनेमें चन्द्रमा उदय होआया । चन्द्रमाकी किरण जो मणिपर पडी, तब मणिसे अमृत निकलने लगा, उस अमृतको वह पान करने लगा, तब तिसको बडा आनंद प्राप्त हुवा ।

हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाकर तुमको बताते हैं, वेदांतशास्त्ररूपी एक मणि है, उस मणिको तीन पुरुषोंने पाया है । एक तो वह पुरुष है, जो कि, वेदांतरूपी शास्त्रको पढकर मद्यपान परस्त्री-गमनादिकोंको करते हैं, वह तो राखको उडाकर अपने ऊपर और मणिके ऊपर डालते हैं । क्योंकि, ऐसे मणिको पाकरके फिर भी अपनी आयुको विषयविकारोंमें खोते हैं । दूसरे वह हैं जो कि, वेदांतरूपी मणिके प्रकाशसे शिकार करते हैं । उनका शिकार करना येही है । वेदांतकी बातोंको सुनाकर लोकोंसे धनको वंचन करना । तीसरे वह हैं जो कि, वेदांतरूपी मणिको पाकर तिसके प्रकाशसे सत्य असत्यका निर्णय करते हैं और मनको विषयोंकी तरफसे हटाकर आत्मामें लगाते हैं । वही तिस मणिके आनन्दगुणको प्राप्त होते हैं । इसीपर कहा भी हैः—

पाठकाः पठितारश्च ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥ १ ॥

जितनेक शास्त्रको पढने और पढानेवाले हैं और जो केवल चिंतन ही करने-वाले हैं, शास्त्रोक्त धारणासे शून्य हैं वह सम्पूर्ण व्यसनी और मूर्ख हैं, जो कि, शास्त्रको पढकर स्थैर्य्यादि गुणोंकोधारण करता है वही पंडित है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते! विना शास्त्रोक्त गुणोंके धारण करनेसे वह आत्मानंद कदापि नहीं मिलसक्ता है ॥ १३ ॥

हे चित्तवृत्ते! यह आत्मा असंग है, अकर्ता है, अभोक्ता है, देहादिकोंके साथ सम्बन्ध होनेसे इसने अपनेको कर्ता भोक्ता आदि गुणोंवाला मान रक्खा है, इसीपर तुमको एक और दृष्टांतको सुनाते हैं:—

किसी राजाके मंदिरमेंसे सोये हुए राजाके बालकको रात्रिके समयमें एक भील उठाकर ले गया और वनमें लेजाकर अपने लडकोंके साथ तिसको भी पालने लगा। जब कि, वह लडका कुछ बडा हुआ तब वह भी भीलोंके कर्मोंको करने लगा, अर्थात् घृणासे रहित होकर हिंसाप्रधान जितने कर्म हैं उन सबको वह करने लगा, तिसी वनमें एक महात्मा जा निकले। उन्होंने तिस लडकेको पहँचान कर कहा, तुम तो राजकुमार हो भील नहीं हो, भीलोंके साथ रहकरके तुमने भी अपनेको भील मान रक्खा है और अयोग्य कर्मोंको तुम कर रहे हो, तुम अपनेको चीन्हो और अपने स्वरूपका स्मरण करो। जब तुम अपनेको चीन्होंगे तब तुम भीलपनेको त्यागकर अपने राजमंदिरमें जाकर आनंदसे रहोगे। महात्माके वाक्यको सुनकर राजपुत्रको भी सब अपना पिछला स्मरण हो आया और उसको विश्वास होगया जो मैं भील नहीं हूँ किन्तु राजपुत्र हूँ। वह तुरन्तही भीलोंके वेशको त्यागकर अपने घरको चला आया, हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्तको सुनो; इस जीवरूपी राजकुमारने अज्ञानरूपी भीलकी संगति करके अपनेको भील मान रक्खा है, वह भीलपना क्या है कर्मभोक्ता पुनः पापी बनना, अज्ञानी बनना, इसीसे जीव नानाप्रकारके फलोंके देनेवाले कर्मोंको करता है और संसाररूपी वनमें दुःखी होकर पडा भ्रमता है। पूर्व जन्मके किसी पुण्य कर्मके प्रभावसे तिस जीवको जब कि आत्मवित् गुरुसे मिलाप होगया तब तिस महात्मा गुरुने उपदेश किया तू अज्ञानी नहीं है, याने भील नहीं है। तू न कर्ता है न भोक्ता है, न पुण्य पापके सम्बन्धवाला है, किंतु तू सच्चिदानन्दरूप है। तू अपने स्वरूपसे भूला हुआ है, अपने स्वरूपका तुम स्मरण करो और अपने आपको चीन्हो तब तुमको सुख होगा। महाण्माके उपदेशसे तिसको अपने स्वरूपका स्मरण होता है, तभी तिस भीलपनेको त्यागकर सुखी होजाता है ॥ १४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! यह भेदवादी पुरुषको दुःखी करता है, इसी वास्ते शास्त्रोंमें भेदवादकी निंदा की है, अज्ञानी भेदवादियोंने ईश्वरमें भी भेदको लगाकर अपने अपने भिन्न २ ईश्वर कल्पना कर लिये हैं इसीमें तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक वैष्णव साधु गणेशजीका भक्त था, गणेशजीकी उपासनाको वह बडे प्रेमसे करता था, उसने पांच तोला सोनेकी एक गणेशजीकी मूर्ति बनवाई और पांच तोला सोनेकी एक गणेशजीके वाहन मूसाकी मूर्ति बनवाई। दोनोंकी बडे प्रेमसे वह पूजा करने लगा। पूजा करते २ जब कि, कुछ काळ व्यतीत होगया तब एक दिन तिसको कुछ द्रव्यका काम पडा। तिसके पास उस कालमें एक टका भी नहीं था, उसने विचार किया, इन मूर्तियोंको बेंचकर अब काम चला लेना चाहिये फिर कुछ द्रव्य कहींसे मिल जायगा, तब और मूर्तियें बनवा लेवेंगे। वह दोनों मूर्तियोंको लेकर एक सुनारके पास बेंचनेको लेगया। सुनारने दोनों तौलकर दोनोंका बराबरही दाम लगा दिया। तब वैरागीने उससे कहा, अरे लंडीके, गणेशजीको मूसेके बराबर करदिया। गणेशजी स्वामी हैं मूसा उनका वाहन है, क्या कहीं स्वामी और वाहन भी बराबर होसकता है? सुनारने कहा, अरे वैरागडे, स्वामिपना और वाहनपना अर्थात् गणेशपना और मूसापना जो तुमने इन मूर्तियोंमें मान रखा है उसको तुम निकाल करके अपने पास रख लेओ। हमको तो सोनेका दाम देना है, सोना तौलमें दोनोंका बराबर है, अर्थात् दोनों मूर्तियोंमें पांच पांच तोला सोना बराबर ही है। वैरागी सुनारकी वार्ताको सुनकर चुप होगया। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्तको सुनो। सब शरीर पांचों भूतोंके ही कार्य्य हैं, और सब शरीरोंमें अस्थि, मज्जा, चर्म, रुधिर, मलमूत्र भी बराबरही है, फिर सब शरीरोंकी उत्पत्ति भी वीर्यसे होती है, और सब शरीर उत्पत्ति नाशवाले भी हैं, और सब शरीरोंमें खान पानादिक व्यवहार भी बराबर ही होता है। भेद तो शरीरोंमें किसी प्रकारसे भी साबित नहीं होता है और आत्मा भी सब शरीरोंमें चेतनरूप करके बराबरही विद्यमान है, और अभिमान भी सब शरीरधारियोंको बराबर ही है। कोई भी देहधारी अपनेको नीच और दूसरेको उत्तम नहीं समझता।

है, किंतु सब कोई अपनी ही जातिको उत्तम जानते हैं, किसी प्रकारसे भी भेद नहीं साबित हो सकता है, तब भी अज्ञानी लोक कल्पित धर्मोंको मानकर भेदबुद्धिको करके दुःखको पाते हैं । यदि उन कल्पित धर्मोंको निकाल दिया जाय तब बाकी आत्मा ही केवल शुद्ध सच्चिदानन्दरूप सिद्ध होता है। जो ज्ञानी लोक ही सर्वत्र आत्मदृष्टिको करते हैं वही सुखी रहते हैं। अज्ञानी लोक आत्मदृष्टिको नहीं करते हैं । जसे कल्पित गणेशपनेको और मूसापनेको छोड करके सोना दृष्टिको सुनार करता है, तैसे ज्ञानवान् भी ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादि धर्मोंका त्याग करके सर्वत्र आत्मदृष्टिको ही करता है, इसीसे वह सुखी रहता है । चित्तवृत्ति कहती है, हे भ्राता ! जब कि ज्ञानवान्की दृष्टिमें आत्मा सब शरीरोंमें एक है, शुद्ध है, निर्दोष है, तब फिर सबके साथ ज्ञानवान् खान पानादि व्यवहारको क्यों नहीं करता है, विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! ज्ञानवान् दो प्रकारके होते हैं । एक तो जीवन्मुक्त कहे जाते हैं, जिनको अपने शरीरकी भी खबर नहीं है, और दूसरे चतुर्थी भूमिकावाले आचार्य्य कहे जाते हैं, जो कि, जीवन्मुक्त हैं । वह तो अजगर वृत्तिवाले होते हैं। किसीने उनके मुखमें अन्नको डाल दिया तब खाजाते हैं । पानीको डाला तब पीजाते हैं । धूपमें किसीने उठाकर धर दिया या छायामें या वर्षामें उसी जगह पडे रहते हैं । उनको सब बराबर ही होता है । क्योंकि, वह आत्मानंदमें डूबे रहते हैं, जगत् उनको दिखाता ही नहीं है । आत्मा ही आत्मा उनको सर्वत्र दिखाता है । उनके मुखमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमेंसे कोई अन्नको डालदे या भंगी चमार डालदे उनके अन्न खानेमें उनको कोई भी दोष नहीं होता है। क्योंकि, उनकी दृष्टिमें न कोई ब्राह्मण है न कोई भंगी या चमार है। आत्मा ही आत्मा है वह किसीसे बातचीत भी नहीं करते हैं । उन जीवन्मुक्तोंका शरीर भी थोडे ही कालतक रहता है, वह तो सर्व प्रकारसे निर्दोष है, वेदादिक किसी शास्त्रकी आज्ञा भी उनपर नहीं है । क्योंकि, वह ब्रह्मरूप है, महान् सुखमें वह निमग्न रहते हैं। दूसरे आचार्य्यकोटिमें जो हैं; वे सर्वत्र आत्मामें समदृष्टि हैं अर्थात् सर्व जीवोंमें एक ही आत्माको देखते हैं, इसीसे उनका किसीके साथ राग द्वेष नहीं होता है । परन्तु वह समवर्ती नहीं होते हैं । क्योंकि सम-

वर्ती होनेसे श्रेष्ठाचार जाता रहता है। दूसरा, यदि सब किसीका जूँठा खानेसे ज्ञानी हो सकता हो तब जितने कि भंगी चमार वगैरा हैं, वे भी सब ज्ञानी कहे जायँगे, उनको तो कोई भी ज्ञानी नहीं कह सक्ता है। इसीसे समवर्तीका नाम ज्ञानी नहीं है। तीसरा, जिसको इतर सब व्यवहारके वर्णाश्रमका ज्ञान है, वह यदि समवर्ती होकर सबका खाने लगेगा तब लोकमें वह पतित कहावेगा। जब कि, और सब विधि निषेधका तिसको ज्ञान है और उनको वह मानता है, तैसे अपनेसे नीच ऊँच जातिवालेके जूँठेके निषेधका भी तो तिसको ज्ञान है। अगर पागलकी तरह उसको कोई भी ज्ञान न हो तब तिसको जूठे खानेका भी दोष न हो। वह पागलोंमें तो गिना नहीं जाता, इसलिये तिसको समवर्ती होना मना है। चौथा, ज्ञानका फल समवर्ती होना कहीं भी नहीं लिखा है। ज्ञानका फल राग द्वेषकी निवृत्ति परमानन्दकी प्राप्ति है। सो जो रागद्वेषसे रहित है; अपने आत्मानन्दमें आनंदित है, वही ज्ञानी है, जो राग द्वेष करके युक्त विषयभोगोंसे आनन्द मानता है, वही अज्ञानी है। ज्ञानी अज्ञानीका इतनाही फरक है॥ १९॥

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

एक पंडित किसी ग्रामको कथा बांचनेके लिये जाते थे, रास्तामें एक खेतके किनारेपर एक बटके पेडके नीचे बैठकर सुस्ताने लगे। उस खेतमें एक जाट हल जोतता था, उसके आगे जो बैल थे, वह दुर्बल थे, शीघ्र चल नहीं सक्ते थे, बारबार खडे होजाते थे, जब २ तिसके बैल खडे होजायँ तब २ वह जाट अपने बैलोंको बुरी २ गाली अर्थात् बलोंके खसमको जोरू और लडकीके फलानकी गालियें देता था। पंडितने उससे पूछा, यह बैल किसके हैं? उसने कहा, यह बैल हमारे हैं। तब कहा, इनका खसम कौन हुवा? जाटने कहा, इनके खसम हम हीं हुए। तब पंडितने कहा, तुम जो इन बैलोंको गालियां देते हो वह सब गालियें किसको लगती हैं? जाटने कहा, जो सारा गालियोंके अर्थोंको समझता है ये सब गालियें उसी सारेको लगती हैं, पंडित जाटकी बातको सुनकर लाजवाब होगया। क्योंकि, जाटका यह तात्पर्य था

कि मैं तो गालियोंके अर्थको समझता नहीं मेरेको क्यों लगेंगी? तुम पंडित हो तुमको इनके अर्थका ज्ञान है यह गालियें तुमहींको लगैंगी। हे चित्तवृत्ते! जिस पुरुषको गालियोंके अर्थका ज्ञान नहीं होता है, उसको गालियें नहीं लगती हैं। इसीसे वह बुरा भी नहीं मानता है। जैसे बालकको गालियोंके अर्थका ज्ञान नहीं है इससे बालक गाली देनेपर बुरा नहीं मानता है, और बालककी गालीपर दूसरा भी कोई बुरा नहीं मानता है। जैसे बालकको धर्म, अधर्म, पुण्य, पापका ज्ञान नहीं है, इसीसे उसको पुण्य पाप भी नहीं लगता और शास्त्रकारोंने भी तिसको पुण्य पापका निषेध किया है। जैसे बालकको आचारका ज्ञान नहीं है ऊपर मुखसे तो रोटी खाता जाता और नीचेसे मलमूत्रका त्याग भी करता जाता है किसीको भी तिसकी क्रियापर ग्लानि नहीं फुरती है। तैसे जीवन्मुक्तको भी कोई पुण्य पाप नहीं लगते हैं, क्योंकि, तिसको उनका ज्ञान ही नहीं है और न कोई तिसकी क्रिया पर बुराही मानता है और जो कि आचार्य्यकोटिमें ज्ञानी हैं, वह यदि भ्रष्टाचारको करने लगे, परस्त्रीगमन, मांस मद्यका सेवन करे, तब तिसको अवश्य पाप लगेगा। क्योंकि उसको तो सर्व प्रकारका ज्ञान है और लोक उससे घृणा भी करते हैं। क्योंकि, उसको अभी ज्ञानका कुछ भी आनंद नहीं मिला है तब महान् आनंदका त्याग करके तुच्छ आनंदके साधनोंमें वह प्रवृत्त न होता। जिनको काकविष्टाके तुल्य जानकरके त्याग कर दिया था उनके ग्रहण करनेमें फिर प्रवृत्त न होता वह ज्ञानी आचार्य्य नहीं है। ज्ञानवान् चतुर्थ भूमिकावाला आचार्य्यकोटिमें वह गिना जाता है, जो निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके विहित कर्मोंको निष्कामतासे श्रेष्ठाचारके लिये अनासक्त होकर करता है, अथवा निषिद्ध कर्मोंको और विहित कर्मोंको नहीं करता है। केवल आत्मचिंतनही करता है वही आचार्य्यकोटिमें है। और जो विहित कर्मोंको त्याग करके निषिद्ध कर्मोंको करता है और आत्मबोधसे शून्य होकर असंग बनता है वही वन्ध्य ज्ञानी, मूर्ख, पाप पुण्यका भागी होता है। तिसका जन्ममरणरूपी संसार कदापि नहीं छूटता है ॥ १६ ॥

अष्टावक्रगीतामें कहा है:—

यस्याभिमानो मोक्षेपि देहेपि ममता तथा ॥
न वा योगी न वा ज्ञानी केवलं दुःखभागसौ ॥ १ ॥

जिस पुरुषका मोक्षमें अभिमान है और देहादिकोंमें ममता है वह पुरुष न तो योगी है और न ज्ञानी है केवल दुःखकोही वह भजनेवाला है ॥ १ ॥

कपिलगीतामें भी ज्ञानीका लक्षण दिखाया है—

न निंदति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति ।
न ददाति न गृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः ॥ १ ॥

जो न किसीकी निंदा करता है और न किसीकी स्तुति करता है, न किसीको देता है न किसीसे लेता है, जो सर्वत्र रागसे रहित है वही मुक्त कहाजाता है ॥ १ ॥

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम् ।
अविकलमनाः स्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ २ ॥

जो अनुरागके सहित स्त्रीको देखकरके और मृत्युको भी सन्मुख उपस्थित देखता है, फिर भी जिसका मन व्याकुल नहीं होता है वह महाशय मुक्तरूप है ॥ २ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो सर्वत्र आत्माको ही देखता है किसीमें भी कमती बढती नहीं देखता है वही आत्मदर्शी तथा ज्ञानी कहा जाता है । आत्माकी समतामें एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

जो कि मैला उठानेवाले भंगी होते हैं वह भी अपनेसे ऊंचा किसी क्षत्री ब्राह्मणादि जातिवालेको नहीं मानते हैं क्योंकि, पंजाब देशमें जब कि भंगियोंका विवाह होता है और इनकी सब बिरादरी आकरके बैठती है और जिस कालमें वर कन्याका पाणिग्रहण होता है तिस कालमें लड़कीका बाप अपनी लडकीके हाथको दामादके हाथ पर धरकरके कहता है इसको तुम भंगन मत जानना, कोई ब्राह्मणी जानना या क्षत्रानी जानना वैश्यानी या शूद्रानी जानलेना या इनसे और कोई छोटी जातिवाली मुगलानी या पठानी जान लेना भंगन मत जानना । तात्पर्य उसका यह होता है, भंगी जाति किसीसे छोटी नहीं है अब देखिये जिनके छूजानेसे स्नान करना पडता है वह भी अपनेको छोटा नहीं मानते हैं । अब बताइये इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि, आत्मामें छोटापन किसीके भी नहीं है, केवल उपाधियोंका भेद है, इसीसे भंगी भी

अपनेको छोटा नहीं मानते हैं । भंगियोंके गुरु लालबेग हुए हैं । एक दिन भंगियोंने अपने लालबेग गुरुसे कहा, महाराज ! हम लोगोंका कल्याण होनेमें तो कोई भी सन्देह नहीं है क्योंकि, आप सरीखे हमारे गुरु हैं, परन्तु इन क्षत्री ब्राह्मणोंका कल्याण कैसे होगा ? भंगियोंके गुरु लालबेगने कहा, उनका कल्याण तुम्हारे हाथ है, तुम लोक जो सबेरे गलियों और बाजारोंमें झाडू देते हो और वह लोक जो स्नान करके आते हैं तुम्हारे झाडूकी रज जो उनपर पडती है उसीसे उनका भी कल्याण होजायगा । भंगी लोक भी अपनी जातिको इतना बडा मानते हैं । बस इसीसे जाना जाता है आत्मामें नीचता ऊंचता नहीं है, आत्मा सबका बराबर ही है । क्योंकि, सबको अपने ही आत्माकी पवित्रताका अभिमान है । इसी तरह और भी जितने कि, मुसलमान ईसाई बौद्ध जैनी वगैरह मतोंवाले हैं, सब कोई अपने २ आत्माको पवित्र मानते हैं । इसीसे भी जाना जाता है कि, आत्मामें अपवित्रता और नीचता नहीं है । यदि होती तब सब ऐसा न मानते । हे चित्तवृत्ते ! आत्मा सबमें एकही है, जैसे एकही आकाश मंदिरमें भी है, और पाखानामें और मसजिदमें गिरजेमें जैनमंदिरमें बौद्धमंदिरमें भी है, भंगी चमारोंके घरोंमें भी है, उत्तम २ मूर्तियोंमें भी है, मलमूत्रादिकोंके पात्रोंमें भी है, परन्तु अति सूक्ष्म होनेसे उपाधियोंके साथ तिसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है और न उपाधियोंके गुण दोषों करके आकाश गुण दोषवाला होजाता है । इसी प्रकार एक ही आत्मा ऊंच नीच सब शरीरोंमें विद्यमान है, शरीरोंके गुण दोषों करके वह गुणदोषवाला नहीं होता । क्योंकि, आकाशसे भी अतिसूक्ष्म है इसीसे असंग और निर्लेप भी है ॥ १७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें एक और दृष्टांत भी तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरके बाहर नदीके किनारे पर एक अद्वैतवादी महात्मा रहते थे । एक दिन एक द्वैतवादी पंडित उनके साथ वादविवाद करनेको गये और जाकर पंडितने महात्मासे कहा, मैं द्वैतको साबित करता हूँ आप मेरेसे वाद विवाद करिये । महात्माने कहा, हमारे शिरके बाल बहुत बढ गये हैं, इनके बढनेसे हमारा शिर दुखता है, जबतक हम हजामत बनवा नहीं लेंगे तबतक

वादको नहीं करैंगे सो प्रथम तुम जाकर किसी नाऊको बुलालाओ पश्चात् हम तुमसे शास्त्रार्थ करैंगे। पंडितजी जाकर नाऊको बुला लाये। नाऊने आकर महात्माकी हजामत बनाई। जब कि नाऊ हजामत बना चुका तब महात्माने नाऊसे कहा, तुम तो परमेश्वर हो। नाऊने कहा, अरे महाराज! मैं तो महापापी हूँ। मैं कैसे परमेश्वर हो सक्ता हूँ? महात्माने पंडितसे कहा, देखो द्वैतको तो यह नाऊ भी साबित कर रहा है; बल्कि इस नाऊसे जो मूर्ख हैं महामूढ हैं, वह भी द्वैतको साबित कररहे हैं। जब कि तुम भी द्वैतको ही साबित करोगे तब फिर इस नाऊसे भी तुम्हारी कुछ अधिकता साबित नहीं होगी किंतु तुल्यता ही होगी। अधिकता तो अद्वैत साबित करनेसे होती है॥ १८॥

हे चित्तवृत्ते! किसी नगरमें एक द्विज रहता था। तिसके तीन लडके थे, एक सबसे बडा पंद्रह या सोलह बरसका था, दूसरा तिससे छोटा सात बरसका था, तीसरा चार बरसका था। तिस नगरके बाहर एक देवताका स्थान था, वहांपर सालमें एक दिन मेला होता था, तिसमें वह द्विज अपने लडकोंको साथ लेकर चला। मेलामें भीड बहुत थी। देवस्थानतक जाना कठिन था इसलिये छोटे लडकेको तिसने कांधेपर उठालिया, मझोलेका हाथ पकड लिया, बडा पीछे पीछे चलने लगा। जो कि, सबसे छोटा था वह कांधेपर बैठा हुआ आरामसे देवस्थानमें पहुंच गया। मझोला भी धक्के खाकर पहुँचा। धक्के तो तिसने खाये परन्तु बापका हाथ न छोडा। जो कि, सबसे बडा था वह धक्के खाकर पीछेको ही रह गया। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टांतमें सुनो। देवस्थान कौन है? आत्मपद, पिता कौन है? परमेश्वर, छोटा लडका वेदांती है, मझोला लडका भक्त है, सबसे बडा कर्मी है। जब कि, परमेश्वर अपने तीनों लडकोंको आत्मपदकी तरफ लेजाता है तब सबसे बडा लडका जो कि भेदवादी कर्मी है, वह तो रागद्वेषरूपी धक्कोंको खाकर पीछे ही संसारमें रह जाता है। जब कि शुभ कर्म करता है तब स्वर्गको जाता है, स्वर्ग भोगकर नीचेको आता है। इसीतरह चक्रमें भ्रमता

सरा भक्त है, वह धक्के तो खाता है अर्थात् भेद

भावना करके उपासना करनेसे जन्मोंकी परंपरारूपी धक्कोंको तो खाता है परन्तु अपने पितारूपी परमेश्वरका हाथ नहीं छोडता है। इसलिये कभी न कभी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा वह भी पहुंच जाता है। तीसरा जो ज्ञानी है वह बिना ही धक्कोंके खानेसे पिताके कांधेपर सवार होकर पिताके साथ जो अभेद ज्ञान होता है, इसीसे वह आरामसे पहुँच जाता है, क्योंकि जो भेद मानताहै वही दूर रहजाता है। अथवा वेदरूपी पिताके कांधेपर बैठकर पहुँच जाता है। वेदकी आज्ञा तिसके ऊपर नहीं रहती है यही कांधेपर बैठना है। और जो कि वेदमें ईश्वरमें प्रेम करना कहा है तिसको जो भक्त नहीं छोडता है यही हाथ पकडना है। और कर्मी अर्थवादरूपी फलोंको जो वेदने कहा है उन्हीके पीछे दौडता है, इसलिये वह परमपदसे दूर रह जाताहै, क्योंकि दुःखका जनक भेदवाद है और सुखका जनक अभेदवाद है। विना अभेदवाद ज्ञानके इस जीवकी मुक्ति कदापि नहीं होती है ॥ १९ ॥

श्रुति भी इसी अर्थको कहती है:-

अन्योसावहमन्योस्मीत्युपास्ते योऽन्यदेवतम्।
न स वेद नरो ब्रह्मन् स देवानां यथा पशुः ॥ १ ॥

वह ब्रह्म मेरेसे अन्य याने भिन्न है और मैं तिससे भिन्न हूँ, इस प्रकार जान करके जो अन्य देवताओंकी उपासना करता है, हे ब्रह्मन्! वह पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता है। जैसे मनुष्योंके लादनेके पशु होते हैं, वैसे ही वह भी देवताके लादनेका एक पशु ही होता है ॥ १ ॥

भेदवादकथोन्मत्तः कार्य्याकार्य्यविवर्जितः।
मद्यसंपर्कमात्रेण कथं वाच्यः स वै द्विजः ॥ इति ॥ १ ॥

जो द्विज भेदवादरूपी कथामें मत्त हो रहा है, कर्तव्य अकर्त्तव्यको नहीं जानता है, जैसे मदिराकी एक बून्दके मिलनेसे गंगाजलका घट अपवित्र हो जाता है, वैसेही तिसको भी जान लेना ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते! जैसे कोई पुरुष अंधकारसे अंधकारको दूर करना चाहे जैसे कोई मिट्टीकी गैया बनाकर दूध पीना चाहे, जैसे कोई संकल्पकी मिठा-

इसे पेट भरना चाहे तैसे ही वह भी करता है, जो भेदवादका आश्रयण करके अपनी कल्याणकी इच्छा करता है। हे चित्तवृत्ते! इसीपर एक और दृष्टांतको भी सुनो:—

हे चित्तवृत्ते! एक पुरुष गणेशजीकी उपासना करता था, एक दिन वह पूजा कररहा था, कि इतनेमें एक मूसा जो बिलसे निकला वह आते ही गणेशजीके ऊपर चढकर चावलोंको खाने लगा और भोगकी मिठाईको लेकर भाग गया। तब तिस उपासकने विचार किया कि, - गणेशजीसे तो मूसा ही बली निकला और पूजा भी बलीकी करना चाहिये क्योंकि बलीसे ही कुछ मिलता है, दुर्बलसे तो कुछ मिलता नहीं। ऐसा विचार करके तिसने एक मूसाको पकड कर तिसके पांवमें तागा बांधकर पर्यंकमें तिसको विठाकर तिसीकी नित्य पूजा करने लगा। एक दिन बिलारने वहांपर आकर मूसेकी तरफ जो ताका मूसा तुरंत ही भागकर बिलमें घुसगया। उपासकने देखा मूसासे तो बिलार ही बली निकला। उसी दिनसे वह बिलारको बांधकर चौकीपर विठाकर तिसकी पूजा करने लगा। एक दिन कूकर एक वहांपर आ निकला और ज्योंही वह बिलारपर झपटा त्योंही बिलार भागा। बिलारको भागते देखकर उस उपासकने जानलिया, कि बिलारसे कूकर बली है। उसी दिनसे वह कूकरकी पूजा करने लगा। एक दिन वह कूकर उनके चौकामें चला गया। तिसकी स्त्री एक लाठी जो उठाकर तिस कूकरके मारी वह भाग गया। तब तिसने जाना कूकरसे तो हमारी स्त्री बली है। उसी दिनसे अपनी स्त्रीकी वह पूजा करने लगा। एक दिन किसी वार्तासे तिसको अपनी स्त्रीपर क्रोध आगया, लाठी लेकर तिसके मारनेको वह दौडा तब स्त्री भागी। उसने मनमें विचार किया, सबसे बली तो मैं ही निकला। उसी दिनसे वह अपनी पूजा करने लगा। आत्माकी मानस पूजा करते २ तिसके मनका निरोध होगया उसीसे उसको परमानंदकी प्राप्ति होगई। हे चित्तवृत्ते! जैसे पक्षी दिनभर इधर उधर भ्रमता रहता है, सुखको नहीं प्राप्त होता है। जब अपने घोंसलेमें आता है तभी तिसको सुख मिलता है। तैसे यह जीव भी अपनेसे भिन्न देवतान्तरकी सुखकी प्राप्तिके लिये उपासना करता है परन्तु इसको सुख नहीं मिलता है

क्योंकि वासनाओंको लेकर उपासना करता है। जब कि यह निर्वासनिक होकर अपने आत्माकी अहंग्रह उपासनाको करता है, तब ही उसको नित्य सुखकी प्राप्ति होती है अन्यथा किसी प्रकारसे भी नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २० ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको सुनोः—

एक पुरुषके तीन लडके थे। तीनोंमेंसे एक तो लूला और लंगडा था। दूसरा अंधा था तीसरा सर्वांगसंपन्न था। तीनोंमेंसे जो कि लूला और लंगडा था यह तो मातापिताकी सेवा किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकता था। क्योंकि सेवा हाथपांवसे होती है सो हाथ पांव तो तिसके थे नहीं, दूसरा जो अंधा था उसको दीखता ही नहीं था इसलिये वह भी सेवालायक नहीं था। तीसरा जो कि सर्वांगसंपन्न था वही सेवालायक था और वही सेवा करता भी था। क्योंकि तिसको सब कुछ दीखता भी था। यह तो दृष्टांत हैं। अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं, एक तो कृपण और आलसी हैं। दूसरे विषयी हैं। तीसरे उद्यमी और उदार हैं। तीनोंमेंसे जो कि कृपण और आलसी हैं वही लूले और लंगडे हैं। वह तो परमेश्वरकी सेवा किसी प्रकारसे भी नहीं करसक्ते हैं। क्योंकि हाथोंसे वह कुछ दानको नहीं करते हैं और पांवोंसे चलकर किसी सत्संगमें या किसी महात्माके पास वह नहीं जाते हैं। और जो विषयी हैं, वह अन्धे हैं, क्योंकि उनको तो परमार्थ दीखता ही नहीं है और न उनको परमेश्वर ही दीखता है। इसलिये वह भी परमेश्वरकी सेवा बंदगी नहीं करसक्ते हैं। तीसरे जो उद्यमी और उदार हैं, वही उद्यम करके सत्संगमें जाते हैं, हाथोंसे दान करते हैं, वही परमेश्वरकी सेवाको करते हैं। वही ज्ञानके भी अधिकारी कहे जाते हैं, दूसरे नहीं। वही अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षको भी प्राप्त होजाते हैं ॥ २१ ॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयपर एक और दृष्टांत भी तुमको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! संसारमें तीन तरहके घोडे होते हैं, तीनोमेंसे एक लादव टट्टू कहलाते हैं, जिन पर कि, हमेशा बोझा ही लादा जाता है। वह तो हमेशा लदते ही रहते हैं। और इसीमें मर भी जाते हैं। दूसरे रिसालेके घोडे

होते हैं, जो कि, तुरमके आवाजको सुनकर हमेशा कवायद परेटही करते रहते हैं, वह परेट कवायद करते २ ही मर जाते हैं । तीसरे तोपखानेके घोडे होते हैं, वह हजारों तोपोंके गोलोंके चलने पर भी अपने कानको नहीं उठाते हैं । क्योंकि उनको इतना विश्वास हो चुका है, जो यह तोपें नित्य ही चलती रहती हैं इनके चलनेसे हमारी कुछ भी हानि नहीं है । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं । संसारमें भी तीन प्रकारके पुरुष हैं, एक तो वे हैं जो कि, हमेशाही स्त्री पुत्रादिकोंकी सेवामें रहते हैं, कभी भी कहीं सत्संगमें नहीं जाते हैं, वह तो लादवे टट्टू हैं । क्योंकि हमेशा स्त्री पुत्रादिक उनको लादते ही रहते हैं । और वह लदते २ उसीमें मर जाते हैं । दूसरे कर्मी हैं, जो कि श्रुति स्मृति उक्त कर्मोंके करनेमें ही सदैवकाल लगे रहते हैं । रिसालेके घोडोंकी तरह हमेशा कर्मरूपी कवायदको ही करते रहते हैं । वह कवायद करते ही खतम होजाते हैं । तीसरे ज्ञानी हैं, जो कि अर्थ-वादरूपी स्वर्गादि फलोंके दिखानेवाले जो वेदादिक हैं उनके वाक्यरूपी गोलोंके चलने पर भी वह तोपखानेके घोडोंकी तरह कानको नहीं उठाते हैं, अर्थात् आत्मविचारको छोडकर अनात्मविचारमें नहीं लगते हैं. वही पुरुष परमानन्दको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! राजा अपनी सेनाको प्रथम युद्ध करनेकी रीतिको सिखाता है, एक मैदानमें अपनी फौजको लेजाकर आधी फौजको पूर्वकी तरफ भेज देता है और आधी फौजको पश्चिमकी तरफ भेज देता है । दोनों फौजें खाली बारूदके गोलोंको चलाती हुई आपसमें झूठी लडाईको करती हैं । जो लोक इस वार्ताको जानते हैं, जो यह बारूदके झूठे गोले चलते हैं इनके चलनेसे हमारी कुछ भी हानि नहीं होती है, तो वह दोनों फौजोंके बीचमें घूम २ करके दोनोंका तमाशा देखते हैं । न डरते हैं । और न भागते हैं । और जो लोक उन गोलोंको सच्चा जानते हैं वे डरते भी हैं और भागते भी हैं । यह तो दृष्टांत है । अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं । इस संसाररूपी मैदानमें आसुरी सम्पद्वाले और दैवी सम्पद्वाले दो प्रकारके पुरुष हैं । दोनों अपने २ संकल्प विकल्पके रोचक भयानक अर्थवादरूपी झूंठे गोलोंको पडे चलाते हैं ।

जो कि अज्ञानी जीव हैं, वह तो उन गोलोंकी आवाजको सुनकर डरते भी हैं और भागते भी हैं और जो कि ज्ञानवान् हैं, वह उन झूंठे गोलोंकी आवाजको सुनकर न डरते हैं न भागते हैं, किंतु मैदानमें ही खडे रहते हैं और दोनोंके तमाशेको देखते हैं ॥ २३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक आदमीको एक पुरुषका सौ रुपैया देना था, जब वह माँगे तभी वह कह दे, मेरे पास इस कालमें रुपैया नहीं है, जब मेरे पास होगा तभी मैं देऊंगा । एक दिन उसके लेनदारने तिसको पकड करके तंग किया, तब भी उसने तिसको रुपैया न दिया और कहा मेरे पास नहीं है और रुपैया उसके घरमें रखा था, परन्तु देता नहीं था, तब तिस लेनदारने कहा, यदि तुम सौ गठा प्याजका खाजाओ तब हम तुमको रुपैया छोड देवेंगे । उसने सौ गठा प्याज खानेको मंजूर किया । जब खाने लगा तब तिससे नहीं खाये गये किंतु दस बीस खाकरके ही रह गया, तिससे और नहीं खाये गये । तब उसने कहा अच्छा तुम सौ लाल मिरचोंको खालेवो, तो हम तुमको रुपैया छोड देवेंगे । उसने मंजूर किया जब कि मिरचोंको वह खाने लगा तब तिससे सौ मिरचें खाये न गये किन्तु दस पांचही खाकर रह गया । फिर तिसने कहा, तुम सौ जूताकी मार सह लेवो हम तुमको रुपैया छोड देवेंगे । उसने मंजूर किया जब कि दस पांचही जूता लगे तभी चिल्लाने लगा, सौ जूता भी उससे नहीं सहागया । आखिर हारकर तिसको रुपैया देनाही पडा । गठे, मिरचें, जूते सब तिसने मुफ्तमें खाये ।

हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं । अज्ञानी मूर्ख संसारके दुःखों करके दुःखित होकरके जब कि आत्मवित् किसी महात्माके पास उपदेशके लिये जाता है, महात्मा यदि प्रथम ही तिसको कह दे तू ब्रह्म है, तब वह किसी प्रकारसे भी नहीं मानता है, जब कि प्रथम तिससे अनेक देवतोंकी उपासना कराता है, फिर अनेक प्रकारसे व्रतोंको करवाता है फिर अनेक तीर्थोंमें तिसको फिराता है यही सब गठे स्थानापन्न तिसको खाने पडते हैं जब कि सब कुछ करके हार जाता है तब अन्तमें महात्माकी कही हुई बातको मानता है । तात्पर्य यह है, प्रथम मूर्ख सच्चे उपदेशको नहीं मानता है ।

जब कि इधर उधर भटककर हार जाता है, तब शास्त्रके जूतोंको खाकर इसको मानना ही पडता है, जो मैं ही ब्रह्म हूँ तब वह शांतिको प्राप्त होता है और इधर उधरकी भटकनासे छूटता है ॥ २४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक पुरुषका चित्त संसारसे जब बहुत उपराम हुआ तब तिसने अपनी स्त्रीसे कहा, हमारा चित्त गृहस्थाश्रममें नहीं लगता है, हम अब संन्यासाश्रमको अंगीकार करेंगे और गृहस्थाश्रमका त्याग करदेवेंगे। स्त्रीने तिसको बहुतसा मना किया परन्तु तिसने नहीं माना, जाकर एक महात्मासे कहा, हमको उपदेश कीजिये । महात्माने उत्तम अधिकारी जानकर तिसको महावाक्यका उपदेश करके अपना चेला बना लिया । तिसने मनमें विचार किया, महात्माने जो हमको उपदेश किया है इसमें तो कुछभी देर नहीं लगी है, क्योंकि जरासी बात इन्होंने बता दी है न मालूम वेदोंमें क्या लिखा है । चलकर किसी पंडितके पास थोडे कालतक पढना चाहिये । मनमें ऐसा विचार करके वह एक पंडितके पास पढनेके लिये गया और पंडितसे कहा, हमको भी कुछ पढाया करियें । पंडितने कहा, हमारे पास जितने कि विद्यार्थी पढते हैं, एक २ काम हमारा सब विद्यार्थी करते हैं । आप भी हमारा एक काम किया करें और विद्या पढा करें । तिसने भी मंजूर कर लिया और पंडितसे कहा, आप हमको जो काम बता दें हम उसको नित्य किया करेंगे । पंडितने कहा, हमारी गैयाका कोई गोबर पाथनेवाला नहीं है आप हमारी गैयाका गोबर नित्य पाथ दिया कीजिये । उसने मंजूर करलिया । नित्य ही पंडितजीकी गैयाका गोबर वह पाथा करे और विद्या पढा करे क्रमसे वह पढने लगा । प्रथम व्याकरण, फिर न्याय, फिर सांख्य, फिर योग, फिर मीमांसाको तिसने पढा । इतनेमें बारह बरस व्यतीत हो गये । जब वेदांतको उसने पढा तब सब वेदोंका सारभूत वही बात आयी जिसको कि गुरुने प्रथम ही तिसके प्रति बता दिया था । तब तिसने कहा, बात तो वही सारभूत निकली जिसको कि, गुरुने मेरेको पहले ही बता दिया था । गोबरको हमने बारहबरस मुफ्तमें पाथा । इसीपर एक महात्माने भी कहा हैः—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः ॥ १ ॥

अर्द्ध श्लोकसे हम उस वार्ताको कहते हैं जो वार्ता कि, करोडों ग्रन्थोंमें कही है। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है और जीव जो है सो ब्रह्मरूप ही है, दूसरा नहीं ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! उत्तम अधिकारीके लिये तो एक वाक्य ही अलं हैं, मध्यम अधिकारीके वास्ते सब शास्त्र बने हैं। कनिष्ठ अधिकारीके प्रति शास्त्रकी भी कुछ नहीं चलती है ॥ २९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक किसान अपने पकेहुए खेतको बहुतसे मजदूरोंसे कटवा रहा था, जब कि थोडासा दिन बाकी रहगया, तब किसानने मजदूरोंसे कहा, जल्दी २ काटो ऐसा न हो कि, संध्या होजाय। जितना डर हमको संध्याका है इतना हमको सिंहका भी नहीं है। एक अनाजके खेतमें सिंह बैठा हुआ किसानकी वार्ताको सुन रहा था। सिंहने जाना संध्या कोई हमसे भी बली जानवर है, जो यह किसान हमारा डर तो नहीं मानता है और संध्याका डर मानता है। इतनेमें दिन अस्त होगया, किसान और मजदूर सब अपने अपने घरोंको चले गये। उसी ग्रामके धोबीका गधा उस दिन कहीं भाग गया था, अंधेरी रात्रिमें धोबी गधेको खोजता हुआ जब कि, तिस खेतमें आया जहांपर सिंह बैठा था। उसने जाना यह हमारा गधा ही छिपकर खेतमें बैठा है। दो लाठी धोबीने सिंहकी कमरमें दीं और गलेमें रस्सी बांधकर आगे धर लिया। सिंहने जाना यह वही संध्या आगई है, जिसका जिकर किसान दिनमें कररहा था। सिंह धोबीके साथ २ चल पडा। सिंहने जाना यदि बोलूंगा तब दो लाठी और कमरमें लगावेगा। धोबीने घरमें लेजाकर तिसको खूँटेके साथ बांध दिया। जब एक पहर रात्रि बाकी रही तब धोबीने सिंहपर दो चार लादीको लाददिया और नदीकी तरफ चलपडा। आगे रास्तामें एक सिंह खडा था, उसने देखा यह सिंह होकर धोबीकी लादियोंको उठाये हुये चला आता है, इसमें क्या कारण है?

भला सिंहसे पूंछे तो तुम इसके बोझा ढोनेवाले क्यों बने हो ? सिंहने उस लदे हुए सिंहसे पूंछा, तुम धोबीके गधे क्यों बने हो ? उसने कहा, बोलो मत। यह संध्या बडी बलवान् है हमको अपना गधा इसने बना लिया है, यदि तुम बोलोगे तो सन्ध्या पीछे पीछे चली आती है, तुमको भी पकडकर वह अपना गधा बनालेगी। तुम जल्दी यहांसे भाग जावो। तिस सिंहने कहा अरे तू वडा मूर्ख है। सन्ध्या कौन चीज है। अन्धेरेका नाम सन्ध्या है, संध्या कोई तुमसे बली जानवर नहीं है, तुम्हारे संकल्पका रचा हुआ वह जानवर है। तुम इस संकल्पको दूर करके अपने स्वरूपका स्मरण करो। तुम तो सिंह हो ये तो सब तुम्हारे खाद्य हैं। तुम्हारी आवाजको सुनकर ये सब भाग जायँगे। सिंहको तिसके कहनेसे अपने स्वरूपका स्मरण हो आया। ज्योंही लादीको फेंककर वह गरजा त्योंही धोबी घरकी तरफ भागा और सिंह वनमें चला गया। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाते हैं। यह जीव तो वास्तवमें सिंह था, कर्मीरूपी किसानके भयानक वचनरूपी सन्ध्याको सुन-कर अज्ञानरूपी धोबीका यह गधा बनकर कर्मरूपी लादीको ढोने लगा। जब कि सिंहरूपी आत्मवित् गुरुने इसको उपदेश किया, कि तुम गधे नहीं हो किंतु सिंह हो अर्थात् तुम पुण्य पापके कर्ता भोक्ता नहीं हो, किंतु असंग, चैत-न्यस्वरूप हो, तभी अपने स्वरूपका इसको स्फुरण हो आता है और बंधनसे रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

चित्तवृत्ति कहती है—हे भ्राता! जीव ईश्वरकी उपाधियोंके त्यागमें कोई दृष्टांत तुमने नहीं कहा है, सो कहना चाहिये। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! अब हम तुमको उपाधियोंके त्याग करनेमें दृष्टांतको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! किसी ग्राममें दो भाई बनियां एक मकानमें रहते थे। उन दोनों भाइयोंकी स्त्रियें बडी लडाकी थीं। जिस कालमें वे दोनों भाई अपने घरमें आते थे उसी कालमें वह दोनों स्त्रियें परस्पर लडाईको शुरू कर देती थीं। दोनों भाइयोंकी आपसमें फूटको ही बनाये रखती थीं। किसी प्रकारसे भी उनको परस्पर मिलने नहीं देती थीं। नित्यही कलह करती थीं। दोनों भाइयोंने परस्पर विचार करके दोनों स्त्रियोंको घरसे निकाल दिया, तब दोनों भाई परस्पर एक

होगये और नित्यकी कलह भी दूर होगई । यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो । जीव ईश्वर दोनों सगे भाई हैं जीवकी स्त्री अविद्या है ईश्वरकी स्त्री माया है, वह दोनों परस्पर नित्यही लडती रहती हैं । इसीसे दोनोंका मेल परस्पर नहीं होताहै । जब कि, अविद्या मायारूपी स्त्रियोंका त्याग करदिया जाता है, तब दोनों परस्पर मिलजाते हैं अर्थात् दोनोंकी एकता होजाती है ॥ २७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

प्रयागराज तीर्थमें बाप और बेटा दोनों स्नान करनेके लिये गये । जब कि, दोनों स्नान करचुके, तब बेटा वहांपर गंगाजीकी वालुकासे खेलने लगा अर्थात् बेटेने गंगाजीकी वालूका एक किला बनाया । बाप कितना ही बेटेसे घर जानेके लिये कहता था, परन्तु बेटाने बापकी वार्ताका ख्याल ही न किया । ऐसे खेलमें बेटा लगा जो बापकी तरफ देखे भी नहीं । तब बाप भी लगे खेलने याने बापने बेटेसे भी अधिक एक बडा भारी रेतीका किला बनाया । बेटेने देखा बापने तो हमसे भी भारी किला बनाया है, तुरन्तही बेटेने बापके किलेको गिरादिया और बापने बेटेके किलेको गिरा दिया । दोनों परस्पर मिल करके अपने घरको चले गये । यह तो दृष्टांत है अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं । जीव बेटा है, ईश्वर बाप है । ईश्वर वेदवाक्यों करके जीवको अपने घरमें जानेके लिये बार २ उपदेश करता है परन्तु जीव अपने खेलमें ऐसा लगा है, जो बापके उपदेशको नहीं सुनता है । जीवने अपने संकल्पका एक किला बनाया है, वह किला इस तरहका है कि, यह मेरी स्त्री है, यह मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धन है, यह मंदिर है, इस कामको आज मैंने कर लिया है, इसको कल करूँगा ऐसे दृढ किलोंको बनाता ही चला जाता है और ईश्वररूपी पिताकी वार्ताको नहीं सुनता है । जब ईश्वररूपी पिताने देखा कि जीवरूपी पुत्र तो इस तरहसे मेरी वार्ताको नहीं मानता है तबतक हम भी इसीकी तरह एक संकल्पके किलेको बनावैंगे । तब ईश्वरने भी कर्म उपासनारूपी एक भारी किलेको बनाया । जीवने देखा बापने तो मेरे किलेसे भी अपना बडा किला बनाया है, तब जीवने ईश्वरके बनाये हुए किलेको तोड दिया याने मिथ्या कर दिया तब ईश्वरने

जीवके बनाये हुए किलेको भी श्रुतिवाक्योंकरके मिथ्या कर दिया । तब दोनों जीव और ईश्वर अपने शुद्धस्वरूपरूपी घरमें स्थित होगये अर्थात् दोनों एकही होगये ॥ २८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और भी लौकिक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक बनियां बडा गरीब रहता था, उसके एक लडका पैदा हुआ । जब कि, वह लडका एक सालका हुआ तब वह बनियां गरीबीके दुःखके मारे विदेशमें कमानेके लिये चला गया । घूमता फिरता वह काशीजीमें जा निकला । वहांपर जाते ही तिसका रोजगार जम गया और जब कि तिसको काशीजीमें रहते दश या बारह बरस बीतगये तब तिसके पास बहुतसा धन जमा होगया । एक दिन तिसके मनमें आया इस धनमेंसे कुछ धन शुभ मार्गमें लगाना चाहिये । उसने ऐसा विचार करके एक मंदिरका बनाना शुरू कर दिया और इधर पीछे तिसका लडका भी सयाना होगया । उसने अपनी मातासे पूछा पिता हमारे कहांपर गये हैं ? माताने पूर्ववाला सब हाल तिसको कह सुनाया । लडकेने मातासे कहा चलो उनको खोजैं । माताकी भी सलाह होगई, वह दोनों मां बेटा विदेशमें निकल पडे । खोजते २ वह काशीमें जा पहुँचे । एक मकानमें डेरा लगाकर लडकेने मातासे कहा हम मजदूरी करनेको जाते हैं, कुछ कसा लावेंगे तब रात्रिको भोजन बनैगा । माताकी आज्ञाको लेकर लडका मजदूरी करनेको निकला जहांपर बनियांका मंदिर बनता था, वहां पर जाकर वह लडका भी मजदूरोंमें काम करने लगा । बनियाँ जब कि, मंदिर देखनेको आया तब उसने उस लडकेको नया जानकर पूछा तुम्हारा मकान कहाँपर है ? और तुम कौन जाति हो ? और कैसे तुम यहाँपर काम करनेको आये हो ? लडकेने शुरूसे आखीरतक सब अपना हाल बनियांको कह सुनाया । तब बनियांने जानलिया यह मेराही लडका है, उसकी मांको बुलाकर घरके भीतर भेज दिया और लडकेको स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रोंको पहराकर अपनी गद्दीपर बैठाकर अपना सब धन तिसको सौंप दिया । बाप बेटा दोनों मिलकर बडे आनंदसे रहने लगे । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब तुम इसको दार्ष्टान्तमें सुनो । यह जीवरूपी पुत्र जब कि महान् प्रयत्नको करके

अपने पिताकी खोज करता है, तब अवश्य ही अपने पितासे जा मिलता है और पिता भी तब इसको अपना सब देदेता है । तात्पर्य यह है, इस कायारूपी काशीपुरीके भीतर पितारूपी परमेश्वर रहता है, जबतक जीव बाहर तिसको खोजता है, तबतक पितासे नहीं मिलता है । जब इस कायारूपी पुरीके भीतर खोजता है, तब अपने पितासे जा मिलता है । और पिता भी तिसको अपना सब धनरूपी जो कि महान् सुख है अर्थात् मोक्षरूपी नित्य सुखको जीवके प्रति देदेता है ॥ २९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक अन्धा और दूसरा आंखोंवाला दोनों मिलकर रास्तामें चले जाते थे । दैवयोगसे पूर्वकी तरफसे आँधी उठी और ऐसा गरदा उडने लगा जो समीपकी वस्तु भी नहीं दीखती थी । उन दोनोंकी आंखोंमें मिट्टी भरगई, थोडी देरमें जब कि, आँधी हटगई, तब दोनोंने आंखोंको झाड दिया, अर्थात् आंखोंसे मिट्टीको निकाल दिया तब आंखवालेको तो दीखने लग गया; परन्तु अन्धेको मिट्टीके निकालने पर भी न दिखाई दिया । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो ।

ज्ञानी तो आंखोंवाला है, क्योंकि तिसको सर्वत्र एकही आत्मा दीखता है और अज्ञानी अंधा है, क्योंकि तिसको सर्वत्र आत्मा नहीं दीखता है किंतु भिन्न करके परिच्छिन्न आत्माको वह जानता है, इसीसे वह अंधा है । जब कि क्रोधरूपी आँधी आती है तब दोनोंकी आंखोंमें अविचाररूपी मिट्टी तिस कालमें भरजाती है । क्रोधरूपी आँधीके हटजानेके पीछे ज्ञानी तो विचारके बलसे अविचाररूपी मिट्टीको तुरन्तही निकाल देता है । उसको तो फिर उसी तरह सर्वत्र एकही आत्मा दिखाई पडने लग जाता है । इसीसे तिसका राग-द्वेष फिर किसीसे भी नहीं रहता है और अज्ञानीको क्रोधरूपी आँधीके हट-जानेपर भी सर्वत्र आत्मा नहीं दीखता है क्योंकि विचाररूपी तिसकी आँखें नहीं हैं, इस लिये तिसकी आँखोंमें अविचाररूपी मिट्टी कुछ न कुछ रहही जाती है, इतनाही ज्ञानी अज्ञानीका फरक है । ज्ञानवान्‌के क्रोधादिक पानी-पर लीक है, अज्ञानीके पत्थरपर लीक है, इसीसे ज्ञानवान् सदैवकाल आनन्दमें रहता है । अज्ञानी दुःखमें रहता है ॥ ३० ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने पीछे कहा कि, ज्ञानवान् अपनेको अकर्ता अभोक्ता मानता है और ज्ञानहीन अपनेको कर्ता, भोक्ता मानता है, ऐसा तो संसारमें देखनेमें नहीं आता है। क्योंकि विना कर्ता भोक्ता माननेसे व्यवहार चलही नहीं सक्ता है, तब फिर व्यवहारको करनेवाला ज्ञानी अकर्त्ता कैसे हो सक्ता है ?

विवेकाश्रम चित्तवृत्तिके प्रति कहते हैं. व्यवहारको करता हुआ भी ज्ञानवान् अकर्ता ही होता है, क्योंकि वह अपनी खुशीसे नहीं करता है । इसीमें एक दृष्टांतको कहते हैं:—

एक राजा अपने मंत्रीको साथ लेकर वनमें शिकारको गया, शिकार खेलते २ राजाको प्यास लगी तब राजाने मंत्रीसे कहा कहींसे पानीको मँगावो। मन्त्रीने इधर उधर देखा तो ग्रामकी तरफसे एक आदमी चला आता था, उस आदमीसे मंत्रीने लोटा देकर कहा जल्दी पानी ले आवो। वह लोटा लेकर ग्रामकी तरफ पानी लेनेको जब चला वजीरको जंगलकी तरफ दोपहरकी धूपसे रेता चमकता दीखता था, उसने जाना यह पानीकी नदी चल रही है, वजीरने उससे कहा वो सामने पानी दीखता है तुम दूसरी तरफ क्यों जाते हो ? उसने कहा वह पानी नहीं है, पानीका कुआँ ग्राममें है; हम ग्रामसे पानीको लाते हैं। वजीरने कहा तुम झूंठ बोलते हो हमको पानी दीखता है, तुम हमको धोखा देकर भागना चाहते हो । ऐसा कहकर वजीरने चार पांच कोडे तिसको लगादिये तब वह उधरको ही चला; जिधरको मृग-तृष्णाका जल तिसको दीखता था। उसने विचार किया, यदि नहीं जाऊंगा तो चार कोडे और लगावेगा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टां-तमें इसको सुनिये । ज्ञानवान्ने संसारके भोगोंको मृगतृष्णाके तुल्य जानकर त्याग दिया है और उनकी तरफ नहीं भी जाता है, तब भी प्रारब्धरूपी कोडा तिसको उधर भोगोंकी तरफही भेजता है न जाय तो और कोडे लगते हैं। तात्पर्य यह है ज्ञानवान्को भोगोंकी इच्छा नहीं भी है, तब भी प्रारब्ध-रूपी कर्म जबरदस्ती इसको भोगोंको भुगाता है और प्रारब्धने ही इसके शरी-रको बना रक्खा है, वास्तवसे इसकी दृष्टिमें शरीर भी नहीं है, किंतु ज्ञानवान्के शरीरका योगक्षेम भी प्रारब्ध कर्महो करता है ॥ ३१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने कहा है जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भेद नहीं है, किंतु दोनों एक ही हैं, तब फिर ईश्वरमें जो सर्वज्ञतादिक गुण हैं, वह जीवमें क्यों नहीं हैं ? आत्मा तो दोनोंमें एकही है । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! इसमें भी हम तुमको एक दृष्टांत सुनाकर विरोधको हटाकर दिखाते हैं:—

किसी नगरके बाहर एक महात्मा जंगलमें रहते थे । एक दिन एक पुरुषने जाकर उनसे यही सवाल किया, कि आप लोक कहते हैं, जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भेद नहीं हैं, किन्तु दोनोंमें एकही आत्मा है । तब फिर ईश्वरात्मामें जो कि सर्वज्ञतादिक गुण हैं वे जीवात्मामें क्यों नहीं हैं ? महात्माने कहा हमको प्यास लगी है, और गंगाजलको ही हम पीते हैं और गंगाजी हमारी कुटीसे दूर दो कोसके फासले पर हैं । प्रथम तुम जाकर हमारी तूंबडीमें गंगाजलको गंगाजीसे भरलावो मगर गंगाजलको ही लाना कूपके जलको न लाना; जब कि हम गंगाजलको पान कर लेवेंगे, तब फिर तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देवेंगे । वह महात्माकी तूंबडी लेकर गंगाजीसे जल भरलाया और महात्माके आगे तिसने तूंबडीको धर दिया और महात्मासे कहा, लीजिये गंगाजलको मैं लाया हूँ । महात्मा तूंबडीके जलको देखकर कहने लगे यह तो गंगाजल नहीं है। उसने कहा महाराज! यह गंगाजलही है । महात्माने कहा, हम कैसे विश्वास करलें, जो यह गंगाजलही है ? वह कसमें खाने लगा कि, यह गंगाजलही है । महात्माने कहा तुम तो सच कहते हो परन्तु गंगाजीमें तो पचासों नावें चलती हैं, हजारों मछलियें रहती हैं, लाखों मनुष्य तिसमें स्नान करते रहते हैं, सैकडों पर्वत और वृक्ष तथा नगर और ग्राम तिसके किनारेपर रहते हैं उनमेंसे तो इसमें एक भी नहीं दीखता है, तब हम कैसे जानलें कि, यह गंगाजलही है।उसने कहा महाराज!वह बडा भारी गंगाजीका प्रवाह है, जिसके किनारेपर हजारों नगर और पर्वतादिक हैं, यह थोडासा उसी प्रवाहका हिस्सा है, इसमें वह सब कैसे रहसक्ते हैं ? सारांश यह है कि, गंगाजल होनेमें तो कोई भी संदेह नहीं है । क्योंकि, जो माधुर्य उसमें है, सोई इसमें भी है । महात्माने कहा, इसीतरह तू जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भी घटाले । जीवात्माकी

उपाधि जो अंतःकरण है, वह छोटीसी उपाधि है, ईश्वरात्माकी उपाधि जो माया है वह सारे ब्रह्मांडमें फैली हुई है। इसीवास्ते ईश्वरात्मामें सर्वज्ञतादिक धर्म रहते हैं, जीवात्मामें नहीं रहते हैं। परन्तु सुखरूपता दोनोंमें बराबरही है और नित्यत्व चेतनत्वादिक भी धर्म दोनोंमें बराबरही हैं। इसीसे सिद्ध होता है कि, जीवात्मा और ईश्वरात्माका बिलकुल भेद नहीं है॥ ३२॥

चित्तवृत्ति कहती है, ईश्वरात्मा और जीवात्मा यदि दोनों विद्यमान हैं, तब इन नेत्रोंसे क्यों नहीं दीखते हैं, जो वस्तु नेत्रोंसे नहीं दीखती है, उसकी सत्यतामें क्या प्रमाण है? विवेकाश्रम कहते हैं, हम एक दृष्टांतको देकर इस वार्ताके उत्तरको कहते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! किसी नगरके बाहर वनमें एक महात्मा रहते थे। उनके पास जाकर एक मूर्ख पुरुषने इसी प्रश्नको किया। तब महात्माने उसको शास्त्रके वाक्यों और युक्तियोंसे बहुत समझाया तब भी वह मूर्ख न समझा और उसने हठ किया कि हमको इन दोनों नेत्रोंसे दोनोंको दिखला देवो। महात्माने एक मिट्टीके ढेलेको उठाकर तिसके शिरमें मारा तिसका शिर फटगया और वह रोता रोता राजाके पास फरयादी गया और राजासे तिसने जाकर कहा मैंने फलाने महात्मासे ऐसा सवाल किया और उन्होंने जबावके बदले मेरा शिर फोड दिया, अब मेरेको ऐसा दर्द होता है जो दर्दके मारे मेरे प्राण निकले जाते हैं। राजाने सिपाहीको भेजकर उन महात्माको बुलाया और कहा आपने इसका शिर क्यों फोड दिया है? महात्माने कहा हमने इसके सवालका जवाब दिया है। यह जो आपके पास फरयादी आया है सो क्यों आया है? उसने कहा इसके शिरमें दर्द होता है तिसीसे यह फरयादी आया है। महात्माने कहा जैसे दर्द होता है और दीखता नहीं है, तैसे जीवात्मा और ईश्वरात्मा विद्यमान हैं परन्तु दीखते नहीं हैं। हमको यह अपने दर्दको नेत्रोंसे दिखादे तब हम भी इसके प्रति आत्माको नेत्रोंसे दिखा देवेंगे। जैसे दर्द है भी और नेत्रों करके नहीं दीखता है तैसे आत्मा भी है और नेत्रों करके नहीं दीखता है। राजाने कहा ठीक है। महात्मा अपने आसन पर चले आये, हे चित्तवृत्ते! यही तुम्हारे प्रश्नका भी उत्तर है॥ ३३॥

चित्तवृत्ति कहती है हे भ्राता ! जो लोक वैराग्यपूर्वक गृहस्थाश्रमका त्याग करके संन्यासाश्रममें होजाते हैं, वे पहले घरके प्रपंचको त्याग करके फिर संन्यासाश्रममें जाकर उससे भी अधिक प्रपंचको क्यों फैलाते हैं ? इसका क्या कारण है ? विवेकाश्रम कहते हैं उनको पहले मन्द वैराग्य हुआ था; मन्द वैराग्य अल्प कालतक रहता है फिर नष्ट होजाता है। जब कि स्त्रीको लडका पैदा होने लगता है, तब उस कालमें उसको बडा क्लेश होता है तिसकालमें वह कहती है कि, फिर पतिके पास नहीं जाऊंगी। जब कि, कुछ दिन बीत जाते हैं तब वह दुःख भूल जाती है फिर वह पतिके पास जाती है।

इसीप्रकार जब किसी पुरुषको किसी तरहका घरकार्य्योंसे या धनादिकोंके नष्ट होजानेसे दुःख प्राप्त होता है, तब वह गृहस्थाश्रमको किसी मंद वैराग्यमें त्याग देता है। कुछ दिन बीते जब कि, दुःख भूल जाता है और धनादिकोंकी तिसको प्राप्ति होने लगती है, तब वह संन्यासाश्रममें ही फिर मठादिकोंको बांधकर गृहस्थाश्रम बना लेता है। क्योंकि, तिसका वह मन्द वैराग्य भी जाता रहता है। जैसे वैष्णवको मांससे बडा तिरस्कार रहता है कभी स्वप्नमें भी तिसका मन मांसकी तरफ नहीं जाता है, ऐसा जब कि, स्त्री धनादिकोंसे जिसको वैराग्य होजाता है वह फिर त्यागे हुए प्रपंचकी रचनाको नहीं करता है, इसीमें एक दृष्टांतको कहते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! ईरान देशमें किसान लोक घोडोंको पालते हैं, याने चार २ सौ पांच २ सौ घोडियोंके गोलोंको वह रखते हैं। जब कि, वह घोडियें बच्चोंको उत्पन्न करती हैं, तब वह किसान लोग जंगलमें एक किलेको बनाते हैं। गिरदे तिसके तीन खाइयोंको खोददेते हैं, उस किलेमें नये उत्पन्न हुए घोडियोंके बच्चोंको रखकर भीतर जानेके रास्ताको भी बन्द कर देते हैं और ऊपरके रास्तासे बच्चोंको मसाला वगैरह खिलाकर पालते हैं और उस जंगलमें तिस किलेके समीप किसी प्रकारके शब्दको भी वह नहीं होने देते हैं। जब कि वह बच्चे एक सालके होजाते हैं, तब एक दिन वे किसान लोग एक तोपको ले जाकर तिस किलेके समीप चलाते हैं, तिस तोपकी आवाज़को सुनकर वह

घोडियोंके बचे कूदने लगते हैं, कोई तो तीनों खाइयोंको फाँदकर जंगलको दौड जाते हैं, कोई दो खाइयोंको फाँदकर तीसरीमें फँस जाते हैं, कोई एक खाईको कूदकर दूसरीमें फँस जाते हैं, कोई एकमें ही गिरकर फँस जाते हैं, कोई उसी जगहमें फड फडाकर रहजाते हैं। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं।गृहस्थाश्रमरूपी एक किला है तिसमें जीवरूपी घोडियोंके बच्चे सब फँसे हैं, जिस कालमें कोई विरक्त महात्मा आकर वैराग्य-रूपी तोपको चलाता है, तिस कालमें जो कि, तीव्रतर वैराग्यवान् होते हैं वे तीनों खाइयोंको कूदकर निकल जाते हैं। प्रथम खाई तो स्त्री पुत्रादिकोंका मोहरूप है दूसरी खाई वर्णाभिमान है, तीसरी खाई आश्रमाभिमानी है। सो तीव्रतर वैराग्यवाले इन तीनों खाइयोंको कूद जाते हैं अर्थात् स्त्रीपुत्रादिकोंमें मोहको त्यागकर फिर वर्णाश्रमके अभिमानको त्यागकर जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं, वे फिर दूसरे प्रपंचकी रचना किसी प्रकारसे भी नहीं करते हैं और जिनको तीव्र वैराग्य होता है, वे प्रथमकी दो खाइयोंको कूदकर तीसरी आश्रम अभिमानरूपी खाईमें फँस जाते हैं। हम संन्यासी हैं, हम दण्डी हैं, हम सबसे उत्तम हैं, हमारे तुल्य दूसरा कौन है, वह मोक्षके अधिकारी नहीं होते हैं। क्योंकि उनका मिथ्या आश्रममें अभिमान बना है और मन्द वैराग्यवान् प्रथमवाली खाईको कूदकर अर्थात् स्त्री पुत्रादिकोंमें मोहको त्याग करके दूसरी वर्णाभिमानरूपी जो खाई है, चेले मठादिक तिनमें फँस जाते हैं वह भी मोक्षके और ज्ञानके अधिकारी नहीं होते हैं। क्योंकि एक गृहस्थाश्रमरूपी खाईसे निकल दूसरी खाईमें अर्थात् नये प्रपंचकी रचनाको करने लग जाते हैं। और जो अतिमंद वैराग्यवान् हैं वे घरको छोडकर ग्रामके बाहर रहकर सन्त नाम अपना धरकर सुपेद वस्त्रोंको और शिखा सूत्रको भी रखकर कथा वार्त्ता बांचकर अपने घरकी और अपनी पालनाको करते हैं वह भी ज्ञानके अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि उनका दाम्भिक व्यवहार है, इस प्रकारके मनुष्य पांचाल देशमें बहुत हैं और चौथे महामूढ पुरुष हैं, जो कि, वैराग्यकी बातोंको सुन घडी दो घडी वाहें वाहें हाय २ करके रहजाते हैं, उनसे तो वैराग्य दूर भाग जाता है ॥ २४ ॥

चित्तवृत्ति कहती है–हे विवेकाश्रम ! समुच्चयवादी कहता है कि कर्म और ज्ञान दोनोंको इकठा करनेसे मुक्ति होती है । और वेदांती कहता है केवल ज्ञानसे ही मुक्ति होती है सो दोनोंमेंसे किसका कथन ठीक है ? विवेकाश्रम कहते हैं–हे चित्तवृत्ते ! कर्म और ज्ञानका समुच्चय नहीं होसक्ता है । जिसको ऐसा अभिमान है कि मैं इस कर्मका कर्ता हूँ, मैं इस कर्मको करके इसके फलको भोगूंगा उसी पुरुषका कर्मोंमें अधिकार है और जिस पुरुषको ऐसा अभिमान नहीं है, किन्तु जिन पुरुषोंकी ऐसी बुद्धि है कि न हम कर्मके कर्ता हैं न हम तिसके फलके भोक्ता हैं किंतु हम असंग सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, उन्हीं पुरुषोंका ज्ञान और मोक्षमें अधिकार है । दोनों विरोधी एक जगहमें नहीं रहसक्ते हैं ।इसीमें एक दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं:—

एक जाटकी दो लडकी थीं, एक लडकीकी शादी किसानके साथ हुई थी और दूसरी लडकीकी शादी कुम्हारके साथ हुई थी। जब कि,लडकियोंकी शादीको हुए बहुत दिन गुजर गये, तब एक दिन जाटसे स्त्रीने कहा बहुत दिन हुए लडकियोंका कोई खत पत्र नहीं आया तुम जाकर उनके आनंद मंगलकी खबर लाओ । जाट घरसे निकलकर उस ग्राममें गया, जहांपर कि, दोनों लडकियें विवाही गईं थीं । पहले वह किसानके घरमें जाकर लडकीसे मिला और हाल चाल पूंछा । लडकीने कहा बापू खेतमें बीज फेंका है और बादल भी घिरा है । यदि वर्षा न हुई तब तो हम उजड जायँगे । क्योंकि धानका बीज सब जलजायगा और जो वर्षा हो जायगी तब तो हम बस जायेंगे । फिर दूसरी कुम्हारके घरवाली लडकीके पास गया और जाटने पूंछा बच्ची सुखसांदकी खबर कहो । उसने कहा बापू और तो सब अच्छा है हमने बर्तनोंका आवाँ लगाया है और आजही तिसको आग दी है, इधरसे हमने आवांको आग दी है, उधरसे बादल घिरकर आया है यदि वर्षा हो जायगी तब तो हम उजड जायँगे क्योंकि कच्चे बर्तन सब गल जायँगे । जो वर्षा नहीं होगी तब तो हम बस जायँगे, क्योंकि बर्तन हमारे सब पकजायँगे । जाट दोनों लडकियोंके हालको पूंछकर जब अपने घरमें आया तब स्त्रीने जाटसे पूछा लडकियोंके हालको सुनाओ । जाटने कहा या तो किसान उजडेगा

या कुम्हार उजडेगा । दोनोंमेंसे एक तो जरूर उजडेगा यही सब हाल कह सुनाया । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं अन्तःकरणरूपी जाट है, तिसकी जो वृत्तियें हैं कर्तृत्व अकर्तृत्व वही तिसकी दो लडकियें हैं । यदि ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होजायगी तब कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप वृत्ति उजड जायगी और जो दूसरी अहमाकार कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप वृत्ति उत्पन्न होजायगी तब तो ब्रह्माकारवाली नहीं होगी । दोनों वृत्तियें परस्पर विरोधी हैं । इसलिये दोनोंमें एकही होगी दूसरी नहीं होगी, तब समुच्चय कैसे होसक्ता है ? किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है । हे चित्तवृत्ते ! जैसे कोई अनजान बालक नशा खानेवालेकी संगतसे नशा खाने लगजाता है और जब पूरा नशाबाज होजाता है, तब दुःखको उठाता है, फिर जब कि तिसको किसी अच्छेकी संगत होजाती है, तब वह नशेको छोडकर अच्छा बनकर दुःखसे छूट जाता है तैसे आत्मा भी निर्धार्मिक है । जैसी संगत इस जीवको होजाती है वैसाही यह अपनेको मानने लगजाता है भेदवादीकी संगत होनेसे भेदवादी, अभेदवादीकी संगत होनेसे अभेदवादी होजाता है । आत्मा असंग है, सब धर्म आत्मामें कल्पित हैं, आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप है ॥ ३९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक लडका सात आठ बरसका अपने मुहल्लामें खेलता था । अपने खेलमेंही लडका चिल्लाने लगा । उस मुहल्लामें मकान बहुत ऊंचे २ थे उसकी आवाजसे टक्कर खाकर गूँज उठे तब आगेसे भी चिल्लानेका प्रतिध्वनिरूप शब्द हुआ, लडकेने जाना कोई मेरी नकल करता है । लडकेने पूछा तू कौन है? आगेसे भी शब्द हुआ तू कौन है ? लडकेने कहा मैं तुमको मारूंगा उधरसे भी आवाज आई मैं तुमको मारूंगा ! लडकेने तिसको गाली दी, आगेसे भी गालीकी आवाज आई, तब लडकेने अपनी मातासे जाकर कहा कोई आदमी मेरेको चिढाता है, परन्तु दिखाई नहीं देता है । माताने कहा बेटा ! दूसरे मुहल्लामें इस वक्त कोई भी तुमको चिढानेवाला नहीं है । जब कि, तुम आवाज करते हो तब तुम्हारी आवाज टक्कर खाकर गूँजती है । तुम जो जानते हो कोई दूसरा हमको चिढाता है, यह तुमको भ्रम है, तुम्हारेसे विना दूसरा कोई भी

तुमको चिढानेवाला नहीं है, तुम अपने इस भयको दूर करो । माताके उपदेशसे लडकेका डर जाता रहा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है अब इसको दार्ष्टांतमें सुनो । इस जीवके बिना दूसरा कोई भी इसको भय देनेवाला नहीं है, इस जीवका संकल्पही इसको भय देता है अपने संकल्पसे यह जीव नरक स्वर्गादिकोंकी कल्पना करता है, फिर उनकी प्राप्तिके लिये कर्मोंकी कल्पना करता है । फिर फलोंकी कल्पना करताहै, आपही कर्ता भोक्ता बनकर कर्मोंके धक्कोंको भोगता है । जैसे मकडी अपने मुखसे तार निकालकर आपही तिसके साथ क्रीडा करती है । जसे बालक अपने परछांहीको देखकर आपही डरता है, तैसे जीव भी अपने संकल्पोंको करके आपही उनसे भयको प्राप्त होता है । अपने स्वरूपसे भूलकरही जीव दुःखको पाता है । इसी पर एक कविने भी कहा है:-

सवैया-रम्यो सब ब्रह्म नहीं कछु भ्रम तू जान न रम जो नाहिं मरे हैं । एकोहि राम झूठी धूमधाम नहीं कोई काम तु काहि डरे हैं ॥ ब्रह्म सो लाग द्वैतको त्याग स्वरूपमें जाग वृथा क्यों जरे हैं । कहे रामदयाल नहीं कोऊ काल तू आप सँभाली जो वेग तरे हैं ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जीव अपने अज्ञान करके ही भयको प्राप्त होता है, वास्तवसे इसको भय किसीका नहीं है, जब कि मन दूसरेकी कल्पना करता है तभी भय खडा होता है । देवीभागवते:-

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ १ ॥

हे परंतप ! बंध मोक्षमें देह और जीवात्मा तथा इंद्रियें ये सब भी कारण नहीं हैं, किन्तु मनुष्योंका मन ही कारण है ॥ १ ॥

शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा नैव बध्येत कर्हिचित् ।
बंधमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यतः ॥ २ ॥

आत्मा सदैवकाल शुद्ध है, मुक्त है, किसी प्रकारसे भी वह बंधायमान नहीं होता है, बंध और मोक्ष मनसेही स्थित रहते हैं अर्थात् मनका संकल्पमात्र है, मनके शांत होने पर वह भी शान्त होजाते हैं ॥ २ ॥

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः ।
एकात्मत्वे कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ ३ ॥

शत्रु, मित्र और उदासीनता ये सर्व भेद मनमेंही हैं एक आत्माके निश्चय होनेसे फिर भेद कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है भेद तो द्वैतदर्शनहीसे होता है ॥ ३६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था, रात्रिके समय तिसकी स्त्री एक जलका लोटा भरकर तिसके सोनेके पलंगके नीचे धर देती थी। सवेरे बनियां जब झाडे जाता था तब तिस लोटेको शौच करनेके लिये ले जाता था। दीपमालिका आनेका दिन जब कि नजदीक आगया तब तिस बनियांकी लडकीने लोटेमें गेरूऔर रगडकर पानी मिलाकर भर दिया और तिस लोटेको बापके पलंगके नीचे धर दिया। सवेरे अन्धेरेमें वही गेरूवाला लोटा बनियांके हाथमें आगया। बनियांने जंगल फिरकर तिस लोटेसे जब कि, शौच किया तब वह पृथिवी सब गेरूके रंगसे लाल होगई। बनियांने जाना यह सब खून पाखानेके रास्तेसे हमारे भीतरसे गिरा है। बनियां घरमें आकर खाटपर गिरपडा और स्त्रीसे तिसने कहा आज मैं मरूंगा क्योंकि मेरे पेटसे पाखानेके रास्तासे बहुतसा खून गिरा है, जल्दी कुछ तू मुझसे दान पुण्य कराओ। स्त्री रोने लगी। बनियांने कहा अब रोनेका समय नहीं है जल्दी एक गौको मँगाकर दान करावो और कुछ अन्न वगैरा भी मँगाकर दान करावो। स्त्री सब वस्तुओंके मँगानेके फिकरमें हुई और बनियां भी धीरे २ सुस्त होने लगे। इतनेमें बनियांकी लडकीने पलंगके नीचे जब कि गेरूके लोटेको खोजा और लोटा तिसको नहीं मिला तब लोटाके न मिलनेसे वह लडकी रोने लगी। बापने पूछा क्यों रोती है? उसने कहा मैंने गेरू घोलकर लोटेमें आपके पलंगके नीचे रखा था न मालूम तिसको कौन उठा लेगया और यह दूसरा लोटा पानीका भरा हुआ इस जगहमें रखा है। मेरा लोटा नहीं दीखता है। लडकीकी वार्ताको सुनकर बनियां उठ बैठा और स्त्रीसे कहने लगा अब मैं अच्छा होगया दान पुण्य करानेकी कुछ जरूरत नहीं। वह खून नहीं था

किन्तु गेरूका रंग था मेरेको भ्रम खूनका होगया था, अब वह भ्रम मेरा जाता रहा है। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो। अनादि अज्ञानके सम्बन्धसे इस जीवको अपने स्वरूपमें भ्रम होरहा है, तिसी भ्रम करके यह जीव अजर आत्मामें जन्म मरणादिकोंको मान रहा है; जब आप्तवक्ताके उपदेश करके इसका भ्रम दूर होजाता है तब यह अपनेको अजर अमर मानने लगजाता है और जन्म मरणसे रहित होजाता है॥ ३७॥

हे चित्तवृत्ते! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक राजाने दो नौकरोंको विदेशमें किसी कामके लिये भेजा। जब कि कुछ दिन बीतगये और उनका कोई भी खत पत्र न आया तब राजाने दोनों नौकरोंकी तरफ दो हुकमनामे लिखे और लिखा इनको पूज्य करके मानना। वह दोनों परवाने दोनों नौकरोंके पास जब पहुँचे तब उन दोनोंमेंसे एकने तो जो परवानेमें करनेको लिखा था तिस कामको करके परवानेको फेंक दिया, और दूसरेने उसमें जो लिखा था उसको तो न देखा, किन्तु परवानेको चौकीपर धरकर तिसकी धूप दीपसे नित्य पूजा करने लगा। जिसने लिखेहुए कामको करके परवानेको फेंक दिया था, राजा उसपर तो बडे प्रसन्न हुए और तिसको राजाने भारी दरजा भी दिया, और जो परवानेको चौकीपर धर कर केवल पूजाही करता रहा था, तिसपर राजा नाराज हुए और तिसको निकाल भी दिया। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें सुनो। वेद शास्त्ररूपी परवाने याने हुकमनामे ईश्वरके भेजे हुए हैं, जो पुरुष उनपर अमल करता है अर्थात् जो कुछ उनमें लिखा है उसको धारण करता है, उसपर तो ईश्वर प्रसन्न होता है, और उसको मोक्ष देता है। जो कि उनमें लिखेको धारण नहीं करता है, किन्तु चौकीपर धरकर धूप दीपादिकोंसे आरती करता है उनके आगे घण्टोंको हिलाता है, उसपर ईश्वर नाराज होकर उसको जन्मोंकी परम्पराको देता है। इसीपर पंचदशीकारने भी लिखा हैः—

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी विचार्य्य च पुनःपुनः।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः॥ १॥

बुद्धिमान् पुरुष प्रथम ग्रन्थोंका अभ्यास करै, फिर पुनः पुनः उनका विचार करके धारण करै, फिर जैसे धान्यका अर्थी पुरुष धान्यको ग्रहण करके पलालीका त्याग करदेता है इसी प्रकार यह भी संपूर्ण ग्रन्थोंको फिर त्याग करदेवै ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! केवल ग्रन्थोंके बाँचनेसे आत्मबोध नहीं होता है किन्तु धारण करनेसे होता है ॥ ३८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर तुम्हारेको एक और दृष्टांत सुनाते हैं-एक पुरुष तीर्थयात्रामें जाने लगा तब तिसने विचार किया, यदि द्रव्यको साथ लेजायँगे तब तो रास्तामें चोरोंका भय है, कहीं लुटही जायँगे तब क्या करैंगे। हुंडी लिखवाकर लेजायँ तब अच्छा होगा, वहांपर जाकर शाहकी दूकानसे रुपैया लेलेवेंगे। तिस आदमीने हुंडी लिखवा ली। एक दूसरा भी तिसके साथ तीर्थमें चला। उसने भी हुंडी लिखवा ली। तहांपर जब जाकर दोनों पहुँचे तब एकने तो शाहकी दूकानपर जाकर तिस हुंडीको दिखाकर अपना रुपैया लेलिया। उसको तो रुपैया मिलगया और दूसरा अपने डेरेपर बैठके तिस हुंडीका पाठ करने लगा। कई एक दिन पाठ करता रहा तब भी तिसको हुंडीका रुपैया नहीं मिला। यह तो दृष्टांत है, दार्ष्टान्तमें वेद शास्त्ररूपी सब हुंडियें हैं, इनके केवल पाठमात्र करनेसे आत्माका लाभ नहीं होता है, किन्तु इनमें जो उपदेश लिखा है, तिसपर चलनेसे आत्माका लाभ होता है ॥ ३९ ॥

दो प्रकारके राजा होते हैं, एक न्यायकारी दूसरा अन्यायकारी। जो कि, न्यायकारी होता है, वह कामको देखता है, अपनी खाली तारीफको नहीं सुनता है। और जो नौकर तिसका अच्छा काम करता है, उसको भारी ओहदा देता है और जो नौकर कामको नहीं करता है केवल तिसकी तारीफको ही करता है, तिसको वह पसंद नहीं करता है और न तिसको कोई ओहदा देता है, और जो अन्यायकारी है, वह कामको नहीं देखता है, किन्तु केवल अपनी तारीफको ही सुनता है। अन्यायकारी राजाको दोषका भागी कहा है, निर्दोष और धर्मात्मा राजा न्यायकारी होता है, जो सबको सम देखता है। तैसे ईश्वर भी न्यायकारी है वह कर्मको ही देखता है, जो पुरुष उत्तम

कर्मको करता है अर्थात् वेदोक्त मार्गपर चलता है, उसीको मोक्ष देता है। जो वेदोक्त मार्गपर तो नहीं चलता है, केवल वेदोंके और शास्त्रोंके लोकदिखलावेके लिये पाठोंको करता है या झूठे पाखंडोंको ही करता है, उसको कदापि मोक्षको नहीं देता है ॥ ४० ॥

हे चित्तवृत्ते ! जबतक इस जीवको देहादिकोंमें अहंता और गेहादिकोंमें ममता बनी है, तबतक इस जीवको कदापि सुख नहीं होता है। अहंता ममताके त्याग करनेसे इसको सुख होता है सो अहंता ममताका त्याग करना बडा ही कठिन है। इसीमें एक दृष्टांतको सुनाते हैं:—

एक कालमें नारदजी पृथिवीपर पर्यटन करते हुए वैकुण्ठमें जा निकले। वहांपर भगवान्‌को अकेले वैठे हुए देखकर नारदजीने भगवान्‌से कहा महाराज ! आपका वैकुण्ठ तो आजकल खाली पडा है कोई भी पुरुष यहाँपर नहीं दिखाता है, क्या वैकुण्ठमें भी कोई आनेकी इच्छा नहीं करता है। यहाँपर तो सर्व प्रकारका सुख है किसी प्रकारका भी यहांपर दुःख नहीं है फिर क्यों वैकुण्ठ खाली है ? भगवान्‌ने कहा नारदजी ! यद्यपि यहाँपर सर्व प्रकारका सुख है तब भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छा किसीको भी नहीं होती है और हमारा भी मन अकेले नहीं लगता है, दूसरा कोई हो तब दो घडी तिससे बातचीत ही करैं, कोई सेवा करनेवाला भी नहीं है हम क्या करैं ? मर्त्यलोकनिवासी कोई भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छा नहीं करता है। नारदने कहा ये कैसी वार्ता है ? वैकुण्ठका तो नाम सुनकर सब लोक आपसे आप चले आवेंगे। भगवान्‌ने कहा अच्छा तुम जाकर दो चार आदमियोंको लावो कुछ सेवाका तो काम चलै, फिर देखा जायगा। नारदजी बडे उत्साहके साथ चले और आकर एक बूढेसे नारदने कहा बाबा वैकुण्ठको चलोगे ? नारदजीकी बातको सुनकर वह बूढा बडा विगडा और नारदजीसे कहने लगा, अभागे ! तूही वैकुण्ठमें जा, जिसका न कोई आगे है न पीछे है मैं क्यों जाऊं ? मेरे पुत्र और पोते और स्त्री धनादिक सब मौजूद हैं। जो निपूता हो सो वैकुण्ठमें जाय। नारदजी चुपचाप होकर वहांसे चलपडे। आगे एक और युवावस्थावालेसे नारदजीने

कहा, वैकुण्ठको चलोगे ? उसने नारदसे कहा, बाबा! वैकुण्ठ तो बूढोंके लिये बना है, जो कि, किसी कामलायक न हो वह वैकुण्ठमें जाय, हम तो सब काम करसक्तेहैं; हम क्यों वैकुण्ठमें जायँ ? वहांसे थोडी दूर जाकर फिर एक पुरुषसे नारदने कहा, वैकुण्ठको जावोगे ? उसने कहा किसी लूले लंगडेको खोजो, यहां पर तुम्हारी दाल नहीं लगती है। नारदजीने बहुतसे मनुष्योंको वैकुण्ठ जानेके लिये कहा परन्तु किसीने भी कबूल न किया। तब नारदजीने एक वृद्ध साहूकारको तिलक छापे लगायकर दूकानमें बैठे हुये देखा। नारदजीने अपने मनमें विचार किया यह भगवान्का भक्त दीखता है, यह अवश्य ही वैकुण्ठको चलेगा और जो यह एक भी चलदे तब हमारी भी बात रहजाय, क्योंकि हम भगवान्से कह आये हैं हम किसीको लावेंगे और भगवान्को भी सेवा करनेसे आराम मिलजाय। नारदजी तिस सेठके पास जाकर बैठगये और सीताराम २ करके तिस सेठके कानमें नारदजीने कहा, सेठजी! संसारका सुख तो आपने सब देख ही लिया है, अब चलकर कुछ काल वैकुण्ठके सुखको भोगो। सेठने कहा, महाराज! मेरी भी यही सलाह है परन्तु अभी लडका सयाना नहीं है, यह जरा सयाना होजाय और दूकानके कामकाजको सँभाल ले तब चलूंगा, आप कुछ दिन पीछे फिर आना। नारदजी चले गये और कुछ दिन पीछे फिर उसके पास आये और उससे कहने लगे, अब तो तुम्हारा लडका सयाना होगया है अब चलो। उसने कहा, अभी इसके संतति नहीं हुई है इसके पुत्र हो ले तब चलूंगा नारदजी चले आये। फिर कुछ कालके पीछे तिस सेठसे जाकर कहने लगे, अब तो चलो अब तो तुम्हारे पोता भी होगया है। सेठने कहा महाराज! अभी इसकी शादी नहीं हुई है इसके विवाहको देखकर चलूंगा। नारदजी फिर कुछ कालके पीछे आये और सेठके लिये पूंछा कि, सेठ कहां है? तिसके लडकेने कहा, वे तो मरगये। नारदजीने ध्यान लगाकर देखा तो सर्प बनकर अपने द्रव्यपर बैठे थे। नारदजीने कहा, अब तो चलो। उसने कहा, अपने द्रव्यकी रक्षा करताहूँ अभी लडका द्रव्यकी रक्षालायक नहीं है जब यह रक्षालायक होजायगा तब चलूंगा। नारद कुछ दिन पीछे फिर गये तब

वह कुत्ता बनकर द्वारपर बैठा था, नारदजीने कहा अब तो चलो, तब तिसने कहा महाराज पतोहें अनजान हैं, मैं द्वारपर बैठकर चोर चकारकी रक्षा करता हूँ, नहीं तो चोर घरमेंसे मालको निकालकर लेजायँ । तब नारदजीने तिस सेठकी स्त्रीसे कहा, तुमही वैकुंठको चलो, तिसने कहा महाराज ! अभी दो चार काम घरके बाकी हैं, वह होजायं तब मैं चलूंगी । फिर थोडे दिनोंके पीछे नारदजी जब गये तब वह सेठानी भी मरकर कुतिया बनकर द्वारपर बैठी हुई और कुत्तोंसे खराब हो रही थी । नारदजीने कहा अब तो चलो । उसने कहा अभी तो मैं इसी जन्ममें बडी सुखी हूँ, फिर चलोंगी । नारदजी हारकर वैकुण्ठमें जाकर भगवान्‌से कहने लगे, महाराज ! आपने सत्य कहा है संसारी लोक ऐसी ममतामें फँसे हैं जो कोई भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छाको नहीं करता है । हे चित्तवृत्ते ! यह संसार असाररूप भी है और अति मलिन भी है, तब भी सांसारिक लोक ऐसी मोह ममतामें फँसे हैं, जो इसके त्यागकी इच्छाको नहीं करते हैं ॥ ४१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! जो वस्तु मलिन होती है उससे तो मनुष्यमात्रको घृणा होती है, फिर संसारी लोकोंको क्यों नहीं घृणा होती है ? विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! मोह ममतामें जो फँसे हैं उनको घृणा नहीं होती है । जैसे भंगीको मैलाके देखनेसे घृणा नहीं होती है, तैसे महामलिन घृणाका जो पात्र गृहस्थाश्रम है, जिसमें कि, नित्यही अपने बाल बच्चोंके पुरीष मूत्रको उठाना और धोना पडता है, घरमें किसी जगहमें मूता है, किसी जगहमें पुरीष किया है, कहीं सींड पडी है, कहीं थूक पडा है, कोई हाय २ करता है, कोई वाह २ करता है, ऐसे मलिन व्यवहारसे संसारियोंको घृणा नहीं फुरती है । क्योंकि, इनका स्वभाव ही वैसा होजाता है । इसीपर एक दृष्टांत कहते हैं:—

किसी नगरके बाहर एक महात्मा रहते थे, एक दिन राजाने जाकर उनसे प्रार्थना की, महाराज ! हमारे घरमें चलकर चरण धरिये जो वह पवित्र होजाय । प्रथम तो महात्माने नहीं माना। जब कि, राजाने बहुतसी विनती की तब राजाके

साथ चलपडे। जब राजाके घरमें जाकर बैठे, तब थोडी देरके पीछे महात्माने कहा हे राजन्! हम चलेंगे क्योंकि,तुम्हारे घरमें बडी दुर्गंधी आती है.राजाने कहा महाराज! यहांपर दुर्गंधीका कौन काम है? यहांपर तो बडी सफाई है। महात्माने कहा, राजन्! तुमको वह माल्लम नहीं देती है। क्योंकि तुम्हारा स्वभावभूत हो रहा है, चलो हम तुमको दिखावेंगे। महात्मा राजाको साथ लेकर उस बाजारमें गये जिस बाजारमें कच्चे चामके कूपे बनते थे, वहांपर जाकर खडे होगये। राजाने कहा, महाराज! यहांपर तो सडे हुए चर्मकी बडी दुर्गंधी आती है। महात्माने एक चर्मकारसे पूंछा क्यों भाई! यहांपर कुछ दुर्गंधी है? उसने कहा यहां दुर्गंधी कोई नहीं है। महात्माने राजासे कहा देखो यहांके रहनेवाले कहते हैं यहांपर दुर्गंधी नहीं है फिर आपको कैसे आती है, राजाने कहा, इनका दीमाग गन्दा होगया इसीलिये इनको नहीं आती है। महात्माने कहा इसी तरह आपके यहांकी दुर्गंधी जो है सो आपको भी नहीं आती है क्योंकि, वह आपके दीमागमें घुसगई है। जो वस्तु स्वभावभूत होजाती है उससे घृणा नहीं होती है। सो गृहस्थाश्रमकी दुर्गंधी भी आपकी स्वभावभूत होगई है, इसलिये आपको उससे घृणा नहीं होती है। राजाने कहा ठीक है। हे चित्तवृत्ते! गृहस्थाश्रम घृणा करनेका स्थान है, क्योंकि अनेक प्रकारके क्लेश इसमें रात्रिदिन बनेही रहते हैं परन्तु मोह ममताके जालमें फँसे हुए जो पुरुष हैं, उनके अन्तःकरण अति मलीन होगये हैं, इसलिये उनको उससे घृणा नहीं होती है और जिनका अन्तःकरण सत्संग करके शुद्ध होगया है उनको घृणा तो होती है। वह बिगारी पकडे हुएकी तरह गृहस्थका काम करते हैं, खुशीसे नहीं करते हैं॥ ४२ ॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरके मुहल्लोंमें एक धनी पुरुष अपने द्वारपर खडा था, इतनेमें एक भंगी मैलेकी दौरीको उठाये हुए उस रास्तासे निकला, तब धनिकने उस भंगीसे कहा, अरे नीच! इस मैलेको नंगा मत लेजाया कर, क्योंकि इसको देखकर लोकोंके जी मिचलाने लगते हैं, किसी कपडासे इसको ढककर

लेजाया कर । भंगीने कहा मैं कपडा कहांसे पाऊं जो इसको ढकूं । धनिकने एक सुपेद रूमाल तिसको देदिया और कहा इससे इसको ढककर लेजा । भंगीने उस रूमालको उस मैलेकी दौरीपर डालदिया और चलपडा । जब कि वह कुछ दूर निकलगया, तब वहांपर तीन पुरुष खडे थे। उन्होंने जाना इस दौरीमें कोई अच्छी वस्तुको यह लिये जाता है । भंगीसे उन्होंने कहा, इसमें क्या है हमको दिखला दे । भंगीने कहा आपके देखने लायक यह नहीं है,ऐसा कह करके भंगी चलपडा । तीनोंने भंगीका कहा न माना, तिसके पीछे २ चलयडे, आगे एक पुरुष खडा था, उसने उनसे कहा, क्यों मैलेके पीछे चले जाते हो ? इसमें मैला है, कोई उत्तम वस्तु नहीं है । एक तो तिसके कहनेपर पीछेको लौट गया, दो फिर भी न हटे किन्तु भंगीके पीछे पीछेही चलने लगे, कुछ दूर जाकर फिर भंगीने उनसे कहा इसमें कोई अच्छी वस्तु नहीं है किन्तु मैला है । तुम क्यों दिक होते हो ? दूसरा भी पीछेको हटा । तीसरेने कहा हम बिना देखे नहीं हटेंगे हमको तुम दिखला देवो । जब कि भंगी एक तंग गलीमें पहुँचा तब उससे कहा आवो देखो । ज्योंही वह आगे देखनेको बढा और भंगीने मैलापरसे रूमालको उठाया और मैलेकी दुर्गंधी सब तिसके नासिका और मुखमें गई और वह भागा त्योंही उस तंग गलीमें वह गिरा और कई एक जगह तिसको चोटभी लगी । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें सुनो । संसारमें उत्तम मध्यम कनिष्ट ये तीन प्रकारके पुरुष हैं और स्त्रीका शरीररूपी एक मैलेकी दौरी है, ऊपरसे सुपेद चर्मरूपी रूमालसे ढकी हुई है, विषयी पुरुषरूपी भंगी तिसको लिये जाता है, तीनों पुरुष तिसको अच्छी वस्तु जानकर तिसके पीछे चले । आगे कोई महात्मा खडे थे उन्होंने कहा इसके पीछे तुम मत खराब होवो । यह तो एक मैलेकी दौरी है, जोकि उत्तम था वह तो उनके वाक्यपर विश्वास करके पीछेको लौट गया, जो मध्यम था वह कुछ दूर जाकर लौटा, जो कनिष्ठ था वह भी लौटा तो सही, परंतु धक्के और चोटको खाकर शिर फटाकर अनेक प्रकारके क्लेशोंको सह करके पश्चात् उसने भी तिसका त्याग किया और जो अति मूर्ख हैं वे इसीमें ही जन्मभर दुःख पाते रहते हैं, उनको कभी भी घृणा नहीं होती है ॥ ४३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! संसारमें जीवोंको जो ममता होरही है, येही दुःखका हेतु है। जिसको ममता नहीं है, वह घरमें रहकरके भी सुखी है। जिसको ममता बनी है वह घरका त्याग करके भी दुःखी है। इसीमें एक दृष्टांतको सुनाते हैं:—

एक राजा बडा सत्संगी था, महात्माका संग सदैवकालही करता था और उसके नगरके बाहर वनमें एक महात्मा रहते थे, नित्यही उनके पास जाया करता था। एकदिन राजाने महात्मासे कहा, महाराज ! राजकाजमें बडा दुःख होता है, इस दुःखकी निवृत्तिका कोई उपाय आप कहिये। महात्माने कहा, राजन् ! तुम अपने राज्यको हमारे प्रति दान करदेवो। राजाने तुरंतही जल लेकर राज्यको महात्माके प्रति दान करदिया। महात्माने कहा, राजन् ! अब तुम्हारी इस राज्यमें कुछ ममता है या नहीं ? राजाने कहा हमारी अब इस राज्यमें कुछ भी ममता नहीं है चाहे बने चाहे बिगडे। महात्माने कहा अब तुम हमारी तरफसे इसका इन्तजाम करो और जो कुछ तुम्हारा खर्च हो वह अपनी तनखाह जानकर लिया करो। नौकर वही धर्मात्मा कहाजाता है जो मालिकका काम अच्छा करता है, राजा अपनेको नौकर जानकर राजकाजको करने लगे। फिर राजासे एकदिन महात्माने पूंछा राजन् ! राजकाजमें तुमको कुछ विक्षेप तो नहीं होता है ? राजाने कहा, हमारी अब राज्यमें ममता ही नहीं है, विक्षेप हमको क्यों हो ? महात्माने कहा ठीक है। हे चित्तवृत्ते ! जो पुरुष गृहमें रहकरके भी ममतासे रहित होकर गृहके कामोंको करता है उसको विक्षेप नहीं होता है परंतु ऐसा होना अति कठिन है ॥ ४४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जबतक पुरुषका मन अंतर आत्माकी ओर नहीं लगता है, तबतक पुरुष विषयोंकी तरफ दौडता है। मनको अंतर्मुख करनेके लिये शास्त्रकारोंने योगाभ्यास आदिक अनेक साधन कहे हैं। प्रथम मनको स्थूल पदार्थमें लगाना कहा है, स्थूलमें जब कि लगने लगता है तब धीरे २ सूक्ष्ममें जाकर ठहर जाता है, विना स्थूलमें लगानेसे सूक्ष्ममें नहीं लग सक्ता है। योगसूत्रमें लिखा है, जो वस्तु अपनेको अति प्यारी हो, उसीमें मनको लगाय किसी मनुष्यकी वा देवताकी मूर्तिमें या सूर्य्य चन्द्रमा आदिक

तारोंमें निरोध करै विना मनके निरोध करनेसे महान् सुखका लाभ नहीं होता है। केवल ज्ञानकी बातोंसे भी सुख नहीं होता है। अभ्यास और वैराग्यको ही मनके निरोधका साधन लिखा है। तात्पर्ह यह है, मनका निरोध किसीतरहसे होसके उसी तरहसे सुखका हेतु है। इसीमें एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:-

हे चित्तवृत्ते ! किसी नगरमें एक भंगी राजाके घरमें नित्यही पाखाना कमानेको जाता था। दैवयोगसे एक दिन जब वह पाखाना कमानेको गया तब रानीको उसने सिंहासनपर बैठीहुई देखलिया। देखतेही उसका मन रानीमें चला गया और किसी तरहसे वह अपने घरतक पहुँचा, आते ही वह गिर पडा और अपनी स्त्रीसे उसने कहा, अब मैं दोचार घडीमें मरूँगा। स्त्रीने हाल जब पूछा तब उसने सब हाल बतादिया। स्त्रीने कहा तुम धीरज धरो, मैं इसका कोई उपाय करूंगी। स्त्रीने रानीसे जाकर कहा, हमारा पति मरता है इसका कोई इलाज तुम बतावो सब हाल पतिका रानीसे कह दिया। आगे रानी बडी बुद्धिमान् थी उसने कहा, तुम पतिसे जाकर कहो वह साधुका भेष बनाकर बाहर नदीके किनारेपर बैठकर रात्रिदिन हमारा ध्यान करै और किसीकी तरफ बिलकुल न देखे अंतर मनमें मेरेको ही देखे। थोडे दिनके पीछे मैं उसी जगहमें उसके पास आऊंगी। उसने जाकर पतिसे रानीके मिलनेका उपाय कह दिया। वह साधुका भेष बनाकर नदीके किनारेपर पद्मासन लगाकर रानीका ध्यान करने लगा। कोई पुरुष कुछ आगे धरजाय चाहे कोई उठाकर लेजाय वहाँ किसीकी तरफ भी न देखै। थोडे ही दिनमें नगरमें बडी चरचा फैलगई; एक महात्मा ऐसे योगिराज आये हैं जो आठों पहर अपनी समाधिमें ही स्थित रहते हैं। अब बहुतसे लोक उनके पास जाने लगे। राजातक खबर पहुँची। राजा भी एक दिन उनके दर्शनको गये, परन्तु उसने राजाकी तरफ भी आँख खोलकर नहीं देखा। ऐसी उसकी वृत्ति रानीके ध्यानमें जमी, जो बाहरके संसारकी उसको कुछ भी खबर न रही और वृत्तिके एकाकार होजानेसे वृत्तिमें चेतनका प्रतिबिंब भी स्थिर होगया, तिस प्रतिबिंबके स्थिर होजानेसे उसको अंतर आत्मसुखका लाभ होगया, तिस आत्मसुखके आगे विषय सुख

सब अति फीके और बेरस माळूम होते हैं। रानीने राजासे कहा, मेरेको हुक्म हो तो मैं भी उन महात्माका दर्शन कर आऊं। राजाने कहा जाओ। रानी वहाँपर गई। कनात लगाई गई, चौगिरदा पहरा खडा होगया। रानीने समीप जाकर उनसे कहा, जरा आंखोंको खोलकर देखो मैं वही रानी हूँ जिसके मिलनेके लिये आपने इतना आडंबर किया है। उसने कहा, मेरेको अब वह रानी मिली है जिसके सामने तुम्हारी जैसी करोडों रानियें हाथ जोड-कर खडी हैं, अब तू चली जा। मैं महान् रानीके साथ जाकर मिलगया हूँ। आंख खोल करके भी उसने रानीकी तरफ न देखा। रानी अपने घरको लौटकर चली आई। हे चित्तवृत्ते! जितना भारी सुख है सो मनके निरोधमें ही है, और जितना भारी दुःख है सो मनके इतस्ततः स्वतन्त्र होकर भ्रमण करनेमें ही है॥ ४९॥

हे चित्तवृत्ते! एक और भी दृष्टांत तुमको मनुष्य जन्मपर सुनाते हैं:—

एक राजाके तीनसौ साठ रानी थीं और प्रत्येक रानीके पास राजा एक २ रात्रिको जाते थे, अर्थात् बरसकी तीनसौ साठ रात्रि होती हैं सो हिसाबसे तीन सौ साठ रातोंपर बटी हुई थीं। जिस रानीके घरमें राजाके आनेकी जिस दिन पारी होती थी वह रानी उस दिन अपने घरमें बडी तैयारी करती थी, क्योंकि फ़िर सालभर पीछे तिसकी पारी पडती थी। जिस दिन सबसे छोटी रानीकी पारी पडी तिसने अपने घरमें बहुतसी तैयारी करी। जब कि, चार पांच घडी रात्रि व्यतीत होगई और राजाको आनेमें देर होगई क्योंकि; राजाको उस दिन कोई काम पेश आगया। राजा उस काममें रुक गये और इधर रानीको नींदने सताया तब रानीने अपनी लौंडीसे कहा, मैं तो सो जाती हूँ, क्योंकि, मेरेको नींदने बहुत सताया है और तू जागती रह, जब राजा साहिब आवें तब हमको जगा देना। लौंडीसे ऐसे कहकर रानी तो सोगई। अर्द्ध रात्रिके बीत जानेपर राजा वहांपर गये और रानीको सोती देखकर बडे क्रुद्ध हुए। लौंडी राजाके सामने कुछ बोल न सकी किन्तु रानीको न जगासकी। राजा भी थके थे वह भी जाकर सोगये। सबेरे राजा उठकर अपने कामपर चले गये। पीछे जब कि रानीकी नींद खुली तब उसने लौंडीसे

पूछा राजा साहिब आये थे ? लौंडीने कहा हां, आये थे। तब रानीने कहा, हमको तुमने क्यों नहीं जगाया ? लौंडीने कहा, राजाके क्रोधके आगे मेरे होश बिगड गये थे. कैसे जगाती ? तब रानी रोने लगी और रानीने कहा, फिर कब तीन सौ साठ रात्रि बीतेंगी। जो राजा फिर मिलेंगे। ऐसे कह कर पश्चात्ताप करके रोने लगी। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब इसको दार्ष्टान्तमें लेना। चौरासी लाख योनियोंमेंसे फिरता २ यह जीव मनुष्ययोनिमें आता है, इस मनुष्ययोनिमें भी यदि इसको अपने स्वरूपका बोध न हुवा तब फिर कब चौरासी लाख योनि व्यतीत होंगी जो इसको फिर मनुष्य जन्म मिलेगा ? इस प्रकारका इसको भी अन्तमें पश्चात्ताप ही करना पडेगा ॥४६॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें हम तुमको एक और दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक राजाने किसी दूसरे राजापर चढाई की और उस राजाके देशको इस राजाने जीत लिया। कुछ कालतक राजा उसी देशमें रहा, जब राजाने अपने देशमें आनेकी तैयारी की तब अपने घरमें सब रानियोंके प्रति राजाने लिखा जिस २ वस्तुकी जिसको जरूरत हो वह लिखे उसके लिये मैं वही वस्तु खरीद करके लेता आऊंगा। सब रानियोंने उस देशके भूषण वस्त्रोंके लानेके लिये राजाको लिखा, जो कि, सबसे छोटी रानी थी उसने एक सादे कागज पर एकका अंक लिखकर लिफाफामें बन्द करके राजाकी तरफ खतको भेज दिया। राजाने सबके खतोंको वाँचकर जिसने जो २ वस्तु लिखी थी उसके लिये मँगाकर सन्दूकोंमें बन्द करके रखवादी। जब कि, तिस छोटी रानीके खतको वाँचा तब उसमें कुछ भी नहीं लिखा था। केवल एकका एक अंक ही लिखा था। राजाने वजीरसे कहा, यह रानी कैसी मूर्ख है ? इसने खाली अंक लिख-कर भेज दिया है। अब इसका क्या मतलब है आप समझाइये। वजीरने कहा, सब रानियोंमें यही रानी चतुर है, इस एक अंक लिखनेका यह मतलब है हमको एक तुम्हारी ही चाहना है और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है, राजाने कहा ठीक है। जब राजा अपने नगरमें आये तब जो २ वस्तु जिसके लिये लाये थे सो सो वस्तु उसके घरमें भिजवादी और आप राजासाहिब उस छोटी रानीके घरमें चले गये। राजाके वहांपर जानेसे बाकीकी सब विभूति राजाके

साथही तिस रानीके घरमें चली गई। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाओ। संसारमें जितनेक सकामी पुरुष ईश्वरकी भक्ति उपासनाको जिस २ फलके लिये करते हैं उसी २ फलको पाते हैं, उससे अधिकको नहीं पाते हैं। जो कामनासे रहित होकर केवल तिसी एक ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये उपासनाको करता है, वही तिस निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होता है, वही जन्ममरणरूपी संसारचक्रसे छूट जाता है। दूसरा किसी प्रकारसे भी तिस चक्रसे नहीं छूट सक्ता है। इस लिये मुक्तिकी इच्छावालेको उचित है कि, निष्काम होकर तिस एकहीकी उपासना करै॥ ४७॥

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

किसी नगरमें दो पुरुष परस्पर मित्र थे और इकट्ठे भी रहते थे और दोनोंको यह बीमारी थी जो जहांपर एक आदमी खडा हो वहांपर दो दिखाते थे, अर्थात् एक २ के दो २ उनको दिखाते थे। एक दिन दोनोंने परस्पर विचार किया चलकर किसी वैद्यके पास इस बीमारीका इलाज कराना चाहिये। दोनों एक वैद्यके पास गये और वैद्यसे अपना हाल कहा, हमको एकके दो २ दीखते हैं हम इसकी दवाई करैंगे। वैद्यने. उनसे कहा, हमको तो एकके तीन दीखते हैं। इन्होंने कहा, कैसा भी हो हम तुम्हारी ही दवा करेंगे। दोनोंमेंसे एकने विचार किया हमसे तो वैद्यको अधिक बीमारी है यह हमारी क्या दवाई करैगा? वह तो ऐसा विचार करके अपने घरको चला गया। दूसरा जो अनजान था वह तिस वैद्यके पास बैठ गया और तिसकी दवाईको करने लगा थोडे दिनमें तिसको भी एक २ के तीन २ दिखने लगगये। यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टांतमें इसको सुनो। इस जीवको ईश्वर जीवका भेदरूपी द्वैत तो पहले ही दिखाता था। तिस द्वैतके दूर करनेके लिये यह गुरुके पास गया आगे गुरु ऐसा मिला जो उसने त्रैत लगा दिया। एक हम हैं दूसरा ईश्वर है तीसरी प्रकृति याने माया है और तीनों नित्य हैं, अथवा तीन जो ब्रह्मा विष्णु महेश देवता हैं सो तीनों ईश्वर हैं, इन तीनोंकी उपासनासे मुक्ति होती है। इसतरहका त्रैत लगा दिया। इसके तरहके जो गुरु हैं उनके उपदेशसे मोक्ष कदापि नहीं होसक्ता है। मोक्ष उसी गुरुके उपदेशसे होसक्ता है जो एकात्मवादी है॥ ४८॥

हे चित्तवृत्ते ! जिस कालमें यह जीव माताके गर्भमें आता है और फिर पिताके वीर्यसे और माताके रक्तसे जिस कालमें इसका शरीर बनकर गर्भमें तैयार होजाता है उस कालमें जीवको अपने पूर्वके अनेक जन्म याद आते हैं और अनेक जन्मोंमें जो दुःख सुख भोगे हैं वह भी सब इसको याद आते हैं, तब यह ईश्वरसे प्रार्थना करता है, अबकी बार जो मैं जन्मको लेऊंगा, तब अवश्य ही आपकी उपासना करूंगा ऐसा बार २ कहता है । जब कि, जन्म लेता है तब माया मोहमें पडकर तिस करारको भूल जाता है, इसीसे फिर जन्म मरणको प्राप्त होता है और वह पुरुष भी नहीं होसक्ता है । पुरुष वही कहाता है जो अपने वचनकी पालना करता है । हे चित्तवृत्ते ! इसीमें हम तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं:—

किसी नगरके बाहर जंगलमें एक महात्मा रहते थे और नित्य ही वह दोपहरके समय नगरमें भिक्षा मांगनेको जाते थे । रास्तेमें एक वेश्याका मकान था जब कि वह महात्मा उस मकानके समीप जाते थे तब वह वेश्या उनसे नित्यही पूंछती थी आप स्त्री हैं या पुरुष हैं ? तब महात्मा कहते थे इसका जबाब हम फिर देंगे । इसी तरह नित्यही उनकी आपसमें बातें होती थीं। कई बरस इसी तरह कहते सुनते बीत गये । एक दिन उन महात्माका देहान्त होगया । जब नगरमें उनके मरनेकी खबर फैली तब बहुतसे लोग गये । उस वेश्याने जब सुना वह भी गई। आगे वहांपर लोकोंकी बडी भीड लगी थी। उस वेश्याने कहा हटो, हमको भी दर्शन कर लेने देवो । लोक जब थोडासा हटगये तब वेश्याने उनका नाम लेकर पुकारा और कहा तुम स्त्री हो या पुरुष हो ? जब कि तीन बार वेश्याने कहा, महात्मा सत्यवादी होते हैं, आपने कहा था हम तुम्हारे प्रश्नका उत्तर फिर देंगे सो बिना उत्तर दिये क्यों मरगये ? यदि हमारे प्रश्नका उत्तर न देकर मरजावोगे तब असत्यवादी ठहरोगे । जब कि, वेश्याने ऐसा कहा तब महात्मा उठकर कहने लगे हम पुरुष हैं हम पुरुष हैं । वेश्याने कहा, आप तो पहलेसे ही जानते थे हम पुरुष हैं तब फिर आपने क्यों न कह दिया । महात्माने कहा बाहरके चिह्नोंसे आदमी पुरुष नहीं होसक्ता है, किंतु जो अपने वचनकी पालना करता है वह पुरुष कहा जाता है । हम तुमसे तभी कह देते जो, हम पुरुष हैं और बीचमें किसी तरहका विघ्न

पडजाता तब हम कैसे पुरुष होसक्के ? अब तो हमारी आयु समाप्त होचुकी है और किसी तरहका अब विघ्न भी नहीं पडसक्ता है । इसलिये अब हम कह सक्ते हैं जो हम पुरुष हैं। वेश्याने कहा ठीक है । हे चित्तवृत्ते ! जो आदमी तिस गर्भवाले करारको परमार्थदृष्टिसे ही पूरा करता है, वही पुरुष है । ऊपरके चिह्नोंसे परमार्थिक पुरुष नहीं होसक्ता है ॥ ४९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः–

दक्षिण देशमें वंजरा और गरुडगंगा नदीका जहाँपर संगम होता है, वहांपर देवशर्मा नाम करके एक ब्राह्मण रहता था और तिसकी स्त्रीका नाम सुधर्मा था, तिस ब्राह्मणके घरमें लडका कोई नहीं था । पुत्रकी उत्पत्तिके लिये वह ब्राह्मण वंजरा और गरुडगंगाकी उपासना करता रहा । जब उपासना करते २ तिसकी उमर साठ बरससे ऊपरकी होगई, तब तिसके घरमें एक अंधा लडका पैदा हुवा । उस अन्धे लडकेके भी पैदा होनेसे तिसको वडा हर्ष हुवा और तिसको बडे लाड प्यारसे वह पालन करने लगा । जब कि, वह लडका पाँच बरसका हुवा तब तिसका यज्ञोपवीत उसने बडी धूमधामसे कराया और फिर तिसको विद्या पढाने लगा, थोडेही बरसोंमें वह अंधा पढकर पंडित होगया । एक दिन वह अंधा अपने आसनपर बैठा था और बाहरसे तिसका पिता आकर जब तिसके पास बैठा तब अन्धेने बापसे पूंछा हे पिता ! पुरुष किस पाप करके अन्धा होजाता है ? पिताने कहा, हे पुत्र ! जो पुरुष पूर्व जन्ममें रत्नोंकी चोरी करता है वह अन्य जन्ममें अंधा होता है । अन्धेने कहा, हे पिता ! यह वार्ता नहीं है, क्योंकि, शास्त्रकारोंने ऐसा नियम करदिया हैः–"कारणगुणा हि कार्य्यगुणानारभन्ते" कारणके जो गुण होते हैं वही कार्य्यके गुणोंको भी आरंभ करते हैं अर्थात् कारणके गुण ही कार्य्यमें भी आजाते हैं । हे पिता ! मैं जानता हूँ जिस हेतुसे तुम अन्धे हो इसी हेतुसे मैं भी तुम्हारे घरमें अंधा पैदा हुवा हूं । पुत्रकी वार्ताको सुनकर पिताने क्रोधसे कहा, मैं कैसे अंधा हूं ? पुत्रने कहा, हे पिता ! साक्षात् मुक्तिको देनेवाला जो वंजरा और गरुडगंगाका संगम है उसकी उपासना तुमने पुत्रकी कामना करके की है, इसीसे मैं जानता हूँ जो तुम ही अन्धे हो मैं अन्धा नहीं हूँ । हे पिता !

ब्रह्मास्त्रको धारण करके भी तुमने एक मच्छरको ही मारा इसीसे तुमही अन्धे हो । हे पिता ! वेद शास्त्रको पढकर एक मूत्रके कीटकी जो इच्छा करता है, वही पुरुष अन्धा कहा जाता है । जैसे और मूत्रसे अनेक कृमि उत्पन्न होते हैं, तैसे पुत्र भी एक मूत्रका कृमि है । हे पिता ! जिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये तुमने जन्मभर तप किया है वह पुत्र तो बिनाही तपके सूकर कूकरादिकोंके भी उत्पन्न होते हैं । हे पिता ! पुत्र करके किसीकी भी गति न हुई है न होवेगी । अपने पुरुषार्थसे ही गति होती है । जो पुरुष संसारबन्धनसे छूटना चाहता है वह पुत्रोंका भी त्याग करदेता है । यदि पुत्रसे गति होती तब वह पुत्रोंका त्याग क्यों करदेता और बहुतसे राजोंने भी आत्मसुखलाभके लिये तप किया है इसीसे साबित होता है कि पुत्रसे गति नहीं होती है, जो पुत्रसे ही गति मानता है वही अंधा है ॥

य आत्मज्योतिरुत्सृज्योदयास्तमयवर्जितम् ।
उदयास्तमयं ज्योतिः सेवते सोऽन्ध ईर्यते ॥ १ ॥

जो पुरुष अन्तरहृदयमें ज्योतिमय नित्य आत्माका त्याग करके उत्पत्ति नाशवाली सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतियोंकी उपासना करता है वही अन्धा है, नेत्रहीन पुरुष अंधा नहीं है ॥ १ ॥

हे पिता ! जैसे ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध है तैसे जीव भी नित्य शुद्ध है और यह जितना जगत् दीखता है सो सब भ्रममात्र है, जैसे मरुभूमिमें जो जल दीखता है, वह जल मरुभूमिरूप ही है । तैसे यह जगत् भी भ्रमकरके अधिष्ठान चेतनमें दीखता है सो अधिष्ठानरूप ही है । हे पिता ! यह जो पुरुष कहता है यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, गृह है, ये सब वासना-करके ही दीखता है, वासना करकेही यह जीव बंधको प्राप्त होता है, वासनाका त्याग करनेसे परमानन्द प्राप्त होजाता है और वासना करके ही यह अज्ञानी बना है वासनाके त्याग करदेनेसे ज्ञानवान् बनजाता है ।

हे पिता ! सच्चिदानंदरूप ब्रह्मको ज्ञानवान् पुरुष ज्ञानरूपी चक्षु करके देखते हैं, अज्ञानी जीव तिसको ज्ञानरूपी चक्षु करके नहीं देखसक्ते हैं । वह

अज्ञानी पुरुष ही अन्धे कहे जाते हैं,जैसे अन्धा पुरुष सूर्यको नहीं देखसक्ता है, तैसे भेदवादी पुरुष भी सर्वत्र आत्माको नहीं देख सक्ता है । हे पिता ! तुम भेदबुद्धिको दूर करके सर्वत्र एक ही आत्माको देखो । पुत्रके उपदेश करके देवशर्मा भी आत्मज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ ९० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और निर्मोही राजाका इतिहास तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक धर्मात्मा निर्मोही नाम करके राजा रहता था । तिस राजाका पुत्र एक दिन वनमें शिकार खेलनेको गया,वहांपर तिसको बडी प्यास लगी, तब वह वनमें एक ऋषिके आश्रमपर गया । ऋषिने तिसको जल पिलाकर पूछा, तुम किसके लडके हो ? उसने कहा मैं निर्मोही राजाका लडका हूँ । ऋषि तिसकी वार्ताको सुनकर कहने लगा, निर्मोही और राजा ये दो बातें एकमें कैसे हो सक्ती हैं ? जो निर्मोही होगा वह राजा नहीं होगा जो राजा होगा वह निर्मोही नहीं होगा । राजाके लडकेने ऋषिसे कहा, यदि आपको विश्वास न हो तो जाकर मालूम करलीजिये, याने परीक्षा करलीजिये । ऋषिने राजपुत्रसे कहा हमारे आनेतक तुम इसी हमारे आश्रमपर बैठो मैं जाकर परीक्षा करके आता हूँ । ऋषि जब राजभवनमें गये तब द्वारपर राजाकी लौंडी खडी थी उससे ऋषिने जाकर कहा ।

सवाल ऋषिका दोहा ।

तू सुन चेरी श्यामकी, बात सुनावों तोहिं ।
कुँवर विनास्यो सिंहने, आसन परयो मोहिं ॥ १ ॥

जवाब लौंडीका दोहा ।

ना मैं चेरी श्यामकी, नहिं कोइ मेरा श्याम ।
प्रारब्ध वश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥ २ ॥

ऋषि लडकेकी स्त्रीसे कहते हैं:—

दोहा ।

तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवनवान ।
देवीवाहन दलमल्यो, तुम्हरो श्रीभगवान ॥ ३ ॥

लडकेकी स्त्री कहती है:—

दोहा ।

तपिया पूरब जन्मकी, क्या जानत हैं लोक ।
मिले कर्मवश आन हम, अब बिधि कीन वियोग ॥ ४ ॥

फिर ऋषिने कुँवरकी मातासे कहा:—

दोहा ।

रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना कियो, तिसी मृतकके काज ॥ ५ ॥

ऋषिसे रानी कहती है:—

दोहा ।

एक वृक्ष डालें घनी, पंछी बैठे आय ।
यह पाटी पीरी भई, उड उड चहुँ दिशि जाय ॥ ६ ॥

ऋषिने राजासे कहा:—

दोहा ।

राजा मुखतैं राम कहु, पल पल जात घडी ।
सुत खायो मृगराजने, मेरे पास खडी ॥ ७ ॥

ऋषिसे राजा कहते हैं:—

दोहा ।

तपिया तप क्यों छोडियो, इहाँ पलक नहिं सोग ।
वासा जगत् सरायका, सभी मुसाफिर लोग ॥ ८ ॥

जब कि ऋषिने सबके उत्तरोंको सुना तब ऋषिको विश्वास होगया जो ठीक राजा निर्मोही है, बल्कि राजाका घरभर निर्मोही है । ऋषिने आकर अपने आश्रमपर राजपुत्रसे कहा कि आपने सत्य कहा था । हमने परीक्षा करली, ठीक राजा निर्मोही है । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! जो इस प्रकार निर्मोही है वही ज्ञानी है और वही जीवन्मुक्त है ॥ ५१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है हे विवेकाश्रम ! आपने कहा है, कि सम्पूर्ण जगत्में एक ही चेतन आत्मा व्यापक है और वही आत्मा सम्पूर्ण शरीरमें भी व्यापक है। जब कि, एक ही आत्मा ऊंच नीच सर्व शरीरमें व्यापक है तब फिर एक जीवको सुख होनेसे सर्व जीवोंको सुख होना चाहिये, एकको दुःख होनेसे सर्व जीवोंको दुःख होना चाहिये, एकके मृत्यु होजानेसे सर्वकी मृत्यु हो जानी चाहिये, एकका जन्म होनेसे सर्वका जन्म होना चाहिये। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! जैसे एकही आकाश अनेक घटादिकोंमें व्यापक होकर स्थित है, एक घटके फूट जानेसे सब घट नहीं फूट जाते हैं, एक घटके उत्पन्न होनेसे सब घट उत्पन्न नहीं होजाते क्योंकि घटादिरूप उपाधियें सब भिन्न २ और फिर घटादिकोंकी उत्पत्ति नाशसे आकाशकी उत्पत्ति तथा नाश नहीं होता है। क्योंकि आकाश व्यापक है, उपाधियें परिच्छिन्न हैं। तैसे एक शरीरकी उत्पत्ति नाशसे भी आत्माकी उत्पत्ति नाश नहीं होता है। क्योंकि आत्मा व्यापक है निरवयव है; उपाधियें सर्व सावयव हैं और परिच्छिन्न हैं। जैसे किसी एक घटमें धूम या धूलि आदिकोंके भरजानेसे सर्व घटोंमें धूमादिक नहीं भर जाते हैं तैसे एक शरीरमें सुख या दुःख होनेसे सर्व शरीरोंमें नहीं होते हैं ॥ ९२ ॥

और दृष्टांतको कहते हैं:—

एक शरीरके सम्पूर्ण हस्त पादादिकोंमें एक ही आत्मा नख शिखतक व्यापक है, परन्तु पादमें दुःख होनेसे हाथमें दुःख नहीं होता है। हाथमें सुख होनेसे पादमें सुख नहीं होता है। एक ही कालमें पादमें शीतलता और शिरमें उष्णता होनेसे सर्व शरीरमें उष्णता शीतलता नहीं होती है। आत्मा तो सम्पूर्ण शरीरके अवयवोंमें एक ही है. फिर सुख दुःखादिक क्यों नहीं बराबर ही एक कालमें होते हैं ? जैसे कि एक शरीर सम्पूर्ण अवयवोंमें एक आत्माके होने पर भी सुख दुःखादि बराबर सर्व अवयवोंमें नहीं होते हैं, तैसे ही ब्रह्मांड भरके शरीरोंमें एक आत्माके होनेसे भी सर्व शरीरोंमें सुख दुःख बराबर नहीं होते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण शरीर एकही विराटके अवयव हैं, विराटके शरीरमें आत्मा एकही है। हे चित्तवृत्ते ! एक आत्माके होनेमें कोई भी सन्देह नहीं है और नाना आत्माके माननेमें श्रुतियुक्तिका भी विरोध आता है। प्रथम श्रुतियोंके विरोधको दिखाते हैं:—

कैवल्योपनिषद्ः—

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्त-
ममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ तमादिमध्यान्तविहीन-
मेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥ १ ॥

वह ब्रह्म अचिन्त्य है, अनन्तरूप है, कल्याणरूप है, शांतस्वरूप है, अमृत है, मायाका भी कारण है और आदि मध्य अन्तसे भी हीन है, विभु है, एक है, आनन्दरूप है, अद्भुत है ॥ १ ॥

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत् ॥ २ ॥

जो ब्रह्म सर्व प्राणियोंका आत्मा है, संपूर्ण विश्वका आधार है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है नित्य है सो तूही है और तू वही है ॥ २ ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्ः—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१॥

एक ही चेतनदेव सम्पूर्ण भूतोंमें छिपाहुआ है, सर्वमें व्यापक है, सम्पूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका भी अध्यक्ष याने ज्ञाता है, सम्पूर्ण भूतोंके निवासका स्थान भी है, साक्षी है, चेतन है, द्वैतसे रहित है, निर्गुण है ॥ १ ॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥ २ ॥

न यह आत्मा स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है किन्तु जिस २ शरीरको धारण करता है तिसी २ के साथ जुड जाता है ॥ २ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक है और आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे रहित है सर्वका स्वामी है, सर्वका प्रेरक है और सर्वका आश्रय भी है ॥ ३ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषम् महान्तम् ॥ ४ ॥

जिस चेतनके न हाथ हैं न पाद हैं, फिर भी बडे वेगसे चलता है और ग्रहण करता है । बिनाही नेत्रोंके देखता है, विनाही कानोंके सुनता है और जानने योग्य पदार्थोंको जानता है । तिसको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है, तिसको आदिपुरुष और सबसे महान् कहते हैं ॥ ४ ॥

इत्यादि अनेक श्रुति वाक्य जीव ब्रह्मके अभेदको और चेतनकी एकताको कथन करते हैं और युक्तियोंसे भी एक ही चेतन साबित होता है ॥

चित्तवृत्ति कहती है—हे विवेकाश्रम ! जीव ईश्वरके स्वरूपको भिन्न २ करके तू मेरे प्रति कह, फिर उनकी एकताको कहो । विवेकाश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ते ! जीव ईश्वरके स्वरूपको मैं आपको मतभेदसे दिखाताहूँ ! प्रकटार्थ-कारका यह मत है कि, अनादि अनिर्वचनीय जो माया है, तिस मायामें जो चेतनका प्रतिबिंब है, तिस प्रतिबिंबका नाम तो ईश्वर है और तिस मायाका आवरण विक्षेप शक्तिवाला जो अविद्यानामवाला भाग है तिस अविद्याके जो अन्तःकरणरूपी अनेक प्रदेश हैं उनमें जो चेतनका प्रतिबिंब है, उसका नाम जीव है ।

प्रश्न—वह माया चेतनसे भिन्न है या अभिन्न है ? ।

उत्तर--वह माया चेतनसे भिन्न नहीं है, क्योंकि भिन्न माननेमें "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होगा और अभिन्न भी नहीं कहसक्ते हैं । क्योंकि जड चेतनका अभेद कदापि नहीं होसक्ता है और माया चेतनका भेदाऽभेद भी नहीं कह सक्ते हैं अर्थात् चेतनसे माया भिन्न भी है और अभिन्न भी है, इसमें कोई दृष्टांत नहीं मिलता है और जड चेतनका भेदाऽभेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता है । क्योंकि उभय विरोधी धर्म एकमें नहीं रह सक्ते हैं, इस लिये भेदाऽभेद भी नहीं बनता है । फिर यदि मायाको सत्य माना

जाय तब अद्वैत श्रुतिसे विरोध आता है। यदि असत्य माना जाय तब मायाको जड जगत्‌की कारणता नहीं बनती है। क्योंकि असत्‌से जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होसकती है। असत् नाम अभावका है, यदि अभावसे उत्पत्ति मानी जायगी तब घटरूपी कार्यके लिये मृत्तिकाकी कुछ भी जरूरत नहीं होगी, सर्वत्रही सब वस्तुओंका अभाव विद्यमान है, सर्वत्र सब पदार्थोंकी उत्पत्ति होनी चाहिये, ऐसा तो नहीं देखते हैं, इस लिये अभावसे भाव पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये माया असत्यरूप भी नहीं है और सत्‌असत् उभयरूप भी माया नहीं है। क्योंकि विरोधी धर्म दो एकमें रह सक्ते हैं और माया सावयव या निरवयव भी नहीं है। यदि मायाको सावयव माना जायगा तब तिसका कोई दूसरा कारण मानना पडेगा क्योंकि जो सावयव पदार्थ होता है वह जरूर किसी कारणसे उत्पन्न होता है। इसलिये तिसको सावयव भी नहीं मान सक्ते हैं, कारण अनवस्था आदिक दोष आवेंगे और मायाको निरवयव भी नहीं मान सक्ते हैं; क्योंकि निरवयव मायासे सावयव जगत्‌की उत्पत्ति भी नहीं होसक्ती है, और सावयव निरवयव दोनों रूप एकमें रह भी नहीं सक्ते हैं। जो सावयव होगा, वह कदापि निरवयव नहीं होसक्ता है। जो निरवयव होगा वह कदापि सावयव नहीं होसक्ता है। एक तो दोनों परस्पर विरोधी हैं, दूसरा इसमें कोई दृष्टांत भी नहीं मिलता है इस वास्ते मायाका स्वरूप अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीयका अर्थ क्या है? जिसका कुछ भी निर्वचन नहीं होसक्ता प्रथम तो मायाके कार्यका ही कोई भी निर्वचन नहीं कर सक्ता है। देखो अतिछोटेसे वटके बीजमें इतना बडा बटका वृक्ष रहता है और भावरूप करकेही रहता है, अभावरूप करके नहीं रहता। क्योंकि अभावकी उत्पत्ति नहीं होती है फिर हम पूछते हैं इतने छोटेसे बीजमें अनेक शाखा और पत्तोंके सहित इतना बडा वृक्ष किसतरहसे रह सक्ता है, इसको आप किसी तरहसे भी नहीं बतला सक्ते हैं। फिर हरएक बीजमें कारणरूप करके कार्य विद्यमान है, कार्योंमें अनेक प्रकारकी रचना हमको दिखाई पडती है कारणमें वह नहीं दिखाती है और सूक्ष्मरूप तिसमें तिसकी सब रचना विद्यमान है। तिस छोटेसे बीजमें इतनी बडी रचना क्योंकर रह सक्ती है?

इसका निर्वचन भी तुमसे कुछ नहीं बनेगा, तब अर्थसे ही कार्य भी अनिर्वचनीय सिद्ध होगा । जिसका कार्य्य अनिर्वचनीय है, तिसका कारण तो अर्थसेही अनिर्वचनीय सिद्ध हुआ और साइन्सवालोंने पैंसष्ट तत्त्व माने हैं, जल और अग्निको इन्होंने स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना है, किन्तु और तत्त्वोंके संयोगसे इनकी उत्पत्ति उन्होंने मानी है । दो प्रकारकी भिन्न २ वायुके मिलनेसे जलकी उत्पत्ति इन्होंने मानी है । हम पूछते हैं उन दो प्रकारके वायुओंमें प्रथम जल था या नहीं था । यदि कहो था तब पृथक् तत्त्व जल साबित होगया । यदि कहो उन दो प्रकारके वायुओंमें जल नहीं था तब उनके संयोगसे भी जल उत्पन्न नहीं होसक्ताहै । क्योंकि अभावसे भावकी उत्पत्ति कदापि नहीं होसक्ती है । और जलका निर्वचन भी कुछ न हुआ इसी प्रकार एक एक वृक्षके पत्तेका निर्वचन करोगे तब सैकडों बरसों तक भी नहीं होगा और न पूर्व हुआ है । जिस मायाके अनन्त कार्योंमेंसे एक कार्यका भी निर्वचन नहीं होसक्ता है, उस कारणरूप मायाका कौन निर्वचन करसक्ता है ? फिर जब पुरुष सो जाता है, तब इसको अपने भीतर बडे २ देश, पर्वत, नदियें हाथी, घोडे आदिक दिखाते हैं और जिस नाडीमें मनके जानेसे स्वप्न आताहै वह नाडी बालसे भी महीन है, उसमें सुईके नोककी भी जगह नहीं है और हाथी घोडे आदिकोंका कोई कारण भी बीजादिक वहांपर नहीं है और जाग्रत् होनेपर सब हाथी घोडे आदिक लय भी होजाते हैं । अब इसका निर्वचन कौन करसक्ता है जो कहांसे वह सब पैदा होते हैं और कहांपर लय होजातेहैं । जैसे स्वप्नके पदार्थोंका और उनके कारणका कुछ निर्वचन नहीं हो सक्ता है, तैसे माया और मायाके कार्यका भी कुछ निर्वचन नहीं होसक्ता है । तब दोनों ही अनिर्वचनीय साबित हुए, उस अनिर्वचनीय मायामें जो कि चेतनका प्रतिबिंब है, उसका नाम तो ईश्वर है और मायामें आवरण विक्षेप शक्तिवाले जो कि परिच्छिन्न अनन्त प्रदेश हैं उन्हीका नाम अविद्या है । उन प्रदेशोंमें जो कि चेतनका प्रतिबिंब है उसका नाम जीव है, प्रदेशोंके अनन्त होनेसे जीव भी अनन्त हैं । इस मतमें एकही अनिर्वचनीय प्रकृतिमें.

प्रदेश प्रदेशीरूपकी कल्पना करके जीव और ईश्वरको प्रतिबिंबरूप करके माना है ॥ १ ॥

अब तत्त्वविवेक करके मतको दिखलाते हैं:-

त्रिगुणात्मिका एक मूलप्रकृति है । तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम ही मूलप्रकृति है । वह मूलप्रकृति आप ही माया और अविद्या रूपोंवाली हो जाती है । और एकही चेतनको जीव ईश्वर दो रूपोंवाला भी कर देती है । शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान वही प्रकृति माया कहलाती है । और मलिन सत्त्वप्रधान वही प्रकृति अविद्या कहलाती है तिस मायामें जो कि चेतनका प्रतिबिंब पडता है तिसका नाम ईश्वर है और अविद्यामें जो प्रतिबिंब है तिसका नाम जीव है " जीवेशावाभासेन करोति माया च अविद्या च स्वयमेव भवति " । वह मूल प्रकृति जीव ईश्वरको अपनेमें आभास करके कर देती है और आपही माया और अविद्यारूप भी हो जाती है यही श्रुति जीवेश्वरकी सिद्धिमें प्रमाण है और एक ही प्रकृतिमें सत्त्व गुणकी शुद्धि अशुद्धिसे माया अविद्याका भेद भी कल्पना किया है ॥ २ ॥

अब अपरमतसे कहते हैं:—

एक ही मूलप्रकृति विक्षेप प्रधानतासे माया और आवरण शक्ति प्रधानतासे अविद्या कही जाती है । माया ईश्वरकी उपाधि है और अविद्या जीवकी उपाधि है और बिंबरूप साधारण चेतनके वह आश्रित भी है, तथापि ' अज्ञोहं ' ऐसा जीवको ही अनुभव होता है । ईश्वरको नहीं होता । क्योंकि जीवकी उपाधिमें ही आवरणविक्षेप शक्ति है ईश्वरकी उपाधिमें वह नहीं है इसलिये ईश्वरको ' अज्ञोहम् ' ऐसा नहीं होता है । इस मतमें आवरण विक्षेप शक्तिका भेद कल्पना करके जीव ईश्वरका भेद माना है ॥ ३ ॥

अब संक्षेपसे शारीरककारके मतको दिखाते हैं:—

वह कहता है "कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" कार्योपाधिवाला जीव है कारणोपाधिवाला ईश्वर है । इस श्रुतिके अनुसार अविद्यामें प्रतिबिंबका

नाम ईश्वर है और अविद्याका कार्य्य जो अन्तःकरण तिसमें प्रतिविंबका नाम जीव है और जहांपर विंब एक हो, वहांपर उपाधिके भेदसे विना प्रतिविंबका भेद नहीं बनता है । इसलिये ईश्वरकी उपाधि अविद्या भिन्न है और जीवकी उपाधि अन्तःकरण भिन्न है । दोनों उपाधियोंके भेद होनेसे जीव ईश्वरका भेद है, अविद्या एक है, इसलिये ईश्वर भी एक है । अन्तःकरण अनन्त हैं जीव भी अनन्त हैं, अविद्याका सम्बन्ध ईश्वरके साथ हैं, अन्तःकरणका संवन्ध जीवके साथ है । जैसे घटकरके आकाशका अवच्छेद मानते हैं, तैसे यदि अन्तःकरण करके चेतनका अवच्छेद माना जावैगा तव दोष आवैगा सो दिखाते हैं । इस लोकमें ब्राह्मणजाति ब्राह्मणादि शरीरमें गत जो अन्तःकरण, तदवच्छिन्न जो चेतन प्रदेश है, सो तो कर्मोंका कर्ता होगा और परलोकमें देवादिशरीरमें जो अन्तःकरण तदवच्छिन्न चेतन प्रदेश भोक्ता होगा जो कि इस लोकमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन प्रदेश कर्मोंका कर्ता था वह तो भोक्ता नहीं होगा, क्योंकि वह परलोकमें देवादिशरीरमें नहीं है और जो देवादिशरीरमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन प्रदेश है, वह इस लोकमें नहीं है, वह कर्ता न हुआ तब अन्य करके किये हुए कर्मोंका फल अन्य ही भोगेगा । यही अवच्छेदवादमें दोष आता है, इसी हेतुसे अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन जीव नहीं होसक्ता है, किन्तु अन्तःकरणमें जो कि चेतनका प्रतिबिम्ब है वह जीव होसक्ता है । घटरूप उपाधिके गमनागमन होनेपर भी जैसे तिस घटरूप उपाधिमें एकही सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सर्वत्र उसी घटमें पडता है, प्रतिविंबका भेद नहीं होता है, तैसे अन्तःकरणरूपी उपाधिके गमनाऽगमन होनेपर भी एकही चेतनका प्रतिबिम्ब तिसमें पड़ता है। तब जो कर्ता होगा वही भोक्ता भी होगा, कोई भी दोष नहीं आवेगा ॥ ४॥

अब अवच्छेदवादीके मतको दिखाते हैं:—

अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनका नाम जीव है, अन्तःकरणानवच्छिन्न चेतनका नाम ईश्वर है, इस मतमें कोई भी दोष नहीं आता है, किन्तु प्रतिविम्बवादमें ही दोष आता है सो दिखाते हैं । जैसे जलसे बाहर आकाशमें स्थित जो सूर्य्य है तिसीका प्रतिबिम्ब जलमें पडता है । तैसे उपाधियोंसे बाहर स्थित चेतनका

भी प्रतिबिम्ब उपाधियोंमें मानना पडैगा तब ब्रह्मांडसे बाहर कहीं स्थित चेतन सिद्ध होगा । ब्रह्मांडके अन्तर्गत नहीं सिद्ध होगा । तब फिर चेतन भी परिच्छिन्न होजायगा परिच्छिन्न होनेसे व्यापक नहीं सिद्ध होगा, किंतु विनाशी सिद्ध होगा । एक तो प्रतिबिम्बवादमें यह दोष आवेगा, दूसरा व्यापक चेतन निरवयव निराकारका प्रतिबिंब कहना भी नहीं बनता है, क्योंकि ऐसा देखनेमें आता है कि जलसे बहिर्गत मेघाकाशका जलमें प्रतिबिम्ब पडता है, जलगत आकाशका जलमें प्रतिबिंब नहीं पडता है । तैसेही ब्रह्मांडके बहिर्गत चेतनका ही प्रतिबिंब भी मानना होगा । ब्रह्मांडके अन्तर्गत चेतनका तो नहीं मानना होगा, तब फिर 'विज्ञाने तिष्ठन्' जो विज्ञानके अन्तरस्थित होकर प्रेरणा करता है इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध भी जरूर आवैगा और ईश्वर भी ब्रह्मांडसे बाहिर सिद्ध होगा इसी हेतुसे प्रतिबिंबवाद असंगत है । यदि उपाधिके अन्तर्गतका भी प्रतिबिम्ब माना जावैगा तब जसे जलसे बहिर्गत मुखका जलमें प्रतिबिम्ब पडता है, तैसे जलके अन्तर्गत मुखका भी जलमें प्रतिबिम्ब पडना चाहिये सो तो देखनेमें नहीं आता हैं । और जैसे जलसे बहिर्गत मुखका प्रतिबिम्ब पडता है,तैसे अन्तःकरणसे बहिर्गत चेतनका भी प्रतिबिंब अन्तःकरणमें कहना होगा । तब भी पूर्वोक्त श्रुतिसे विरोध बनाही रहेगा । और जो वादीने अवच्छेदवादमें कर्ता भिन्न भोक्ता भिन्न होजानेका दोष दिया है वह दोष प्रतिबिम्बवादमें तुल्यही लगता है। तथाहि यदि सम्पूर्ण अन्तःकरणोंमें ब्रह्मांडसे बहिर्गत अर्थात् व्यवहित चेतनका प्रतिबिंब माना जावै तब तो इस लोक परलोकमें प्रतिबिंबका भेद सिद्ध नहीं होगा । तथापि एक तो ब्रह्मांडके बहिर्गत समग्र चेतनका अन्तःकरणमें प्रतिबिम्ब किसी प्रकारसे भी नहीं पडसक्ता है और न तिसके एकही देशका प्रतिबिम्ब पडसक्ताहै । क्योंकि ब्रह्मांडसे बहिर्गत समग्र चेतनके साथ या तिसके एक देशके साथ अन्तःकरणकी सन्निधि नहीं है और बिना सन्निधिके प्रतिबिंब पड नहीं सक्ताहै।जिसे ब्रह्मांडके बहिर्गत आकाशका जलमें प्रतिबिंब नहीं पडसक्ताहै,तैसे ब्रह्मांडसे बहिर्गत चेतनका भी प्रतिबिंब नहीं पडसक्ता है।यदि ब्रह्मांडके अन्तर्गत अन्तःकरण सन्निहित चेतनका प्रतिबिंब अन्तःकरणमें मानोगे तब भी ब्रह्मांडभरके अन्तर्गत चेतनका प्रतिबिंब अन्तःकरणमें नहीं मान

सकोगे। क्योंकि ब्रह्मांडभरके चेतनकी अंतःकरणके साथ सन्निधि नहीं है, किन्तु ब्रह्मांडके अन्तर्गत जो चेतन तिसीके किसी प्रदेशके साथ अंतःकरणकी सन्निधि होगी उसी चेतनके प्रदेशका प्रतिबिंब भी तुमको मानना पड़ैगा। तब फिर पूर्ववाला दोष लगाही रहेगा। अंतःकरणके गमनाऽऽगमन करनेसे बिंबके भेदसे प्रतिबिंबका भेद भी अवश्य ही होगा, तब फिर कृतहानि अकृतकी प्राप्तिरूप दोष होगा। यदि प्रतिबिंबरूप जीवकी अन्तःकरणरूप उपाधिका त्याग करके अविद्याको जीवकी उपाधि मानोगे तब अविद्याका गमन बनैगा नहीं। तब इस लोक परलोकमें प्रतिबिंबका भेद भी सिद्ध नहीं होगा और प्रतिबिंबके भेदके न सिद्ध होनेसे पूर्वोक्त दोष भी नहीं आवैगा। सो अवच्छेदवादमें हम भी अविद्या अवछिन्न चेतनको ही जीव मान लेवेंगे। हमारे मतमें भी अविद्याके गमनागमनके अभाव होनेसे चेतनका भेद नहीं होगा, चेतनके भेदका अभाव होनेसे पूर्वोक्त दोष भी नहीं आवैगा। इन्हीं हेतुओंसे प्रतिबिंबका निषेध करके अवच्छेदवादीने अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनको ही जीव माना है और अन्तःकरण अनवच्छिन्न चेतनको तिसने ईश्वर माना है॥ ९॥

अब औरके मतको दिखाते हैं:—

अन्य कोई कहता है प्रतिबिंबवाद और अवच्छेदवादमें श्रुतिका विरोध दूर नहीं होता है। श्रुति कहती है जो जीवात्माके अन्तःस्थित होकर जीवात्माको प्रेरणा करता है सोई ईश्वर है। सो जीवात्माके अन्तःस्थित होना ही प्रथम ईश्वरके नहीं बनता है सो दिखाते हैं। अवच्छेदवादमें अंतःकरणके भीतर जो चेतन आगया है, उसीको जीव माना है और अंतःकरणके बाहर जो चेतन है उसको ईश्वर माना है। अब इस मतमें अंतःकरणके अंतर ईश्वर है नहीं तब जीवको प्रेरणा कैसे करेगा और तिसके कर्मोंको कैसे जानेगा। यदि कहो वह ईश्वर चेतन व्यापक है तिसके भीतर भी रहेगा बाहर भी रहेगा सो नहीं बनता। निरवयव निराकार दो पदार्थ, एक स्थानमें नहीं रह सक्ते हैं जो रहेंगे तब वह उपाधि करके परिच्छिन्न होजायेंगे। परिच्छिन्न होनेसे वह जीव ही होगा सो परिच्छेदवाला जीव तो तुमने पहले ही मान लिया है। दो जीव

एक अन्तःकरणमें तुमने भी माने नहीं हैं और न जीव ईश्वर दोकी उपाधि अन्तःकरण होसक्ता है, इसी युक्तिसे श्रुतिका विरोध बनाही रहेगा फिर यही दोष प्रतिबिंबवादमें भी होगा । पूर्वोक्त मतमें अविद्यामें प्रतिबिंबको ईश्वर माना है और अन्तःकरणमें प्रतिबिंबको जीव माना है। वहां अविद्यामें जो प्रतिबिंब है, जब अन्तःकरणमें नहीं है और प्रतिबिंबका प्रतिबिंब बनता नहीं, तब प्रतिबिंबवादमें भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर न रहा तिस मतमें भी दोष बराबर ही लगा रहा । और प्रकटार्थकरके मतमें भी यही दोष लगाही रहेगा । क्योंकि उसने भी मायामें प्रतिबिंबको ईश्वर माना है और मायाके प्रदेशोंमें चेतनके प्रतिबिंबको जीव माना है । अब इस मतमें भी मायामें जो प्रतिबिंब वह मायाके प्रदेशोंमें नहीं है और जो आवरण विक्षेप शक्तिवाले प्रदेशोंमें प्रतिबिंब है मायामें वह नहीं है, तब भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर साबित न हुआ और दो प्रतिबिंब एक उपाधिमें नहीं रह सक्ते हैं । यदि कहो जलमें सूर्य और आकाश तथा इतर वृक्षादिकोंका प्रतिबिंब एक ही जलरूप उपाधिमें देखते हैं सो दृष्टांत यहांपर नहीं घटता है क्योंकि सूर्य्य और वृक्षादि सब भिन्न भिन्न सावयव पदार्थ हैं उनका प्रतिबिम्ब जलरूप उपाधिमें पड भी सक्ता है । परन्तु एकही आकाशके दो प्रतिबिंब एकही घटमें जैसे नहीं पडसक्ते हैं, तसे एकही चेतनके एकही उपाधिमें दो प्रतिबिंब नहीं पडसक्ते हैं । तब जीवके अन्तर्गत ईश्वर भी सिद्ध न हुआ और पूर्वोक्त दोष लगाही रहा । और जिसके मतमें एकही प्रकृतिके माया अविद्या दो भेद मानकर जीव ईश्वरका भेद सिद्ध भया उस मतमें भी मायामें जो प्रतिबिंब है वह अविद्यामें नहीं है । अविद्यासें भिन्न है, मायासें भिन्न है। इस मतमें भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर सिद्ध नहीं होता है; श्रुति-विरोध इस मतमें भी हट नहीं सक्ता है । सांख्यमतवालोंने ईश्वरको नहीं माना है किन्तु जीवको ही चेतनरूप करके व्यापक माना है अर्थात् इनके मतमें ब्रह्माण्ड भरके जीव व्यापक हैं और चेतनरूप हैं, असंग हैं निराकार निरवयव हैं, जीव कर्ता नहीं भोक्ता है कर्त्री प्रकृति है । इनके मतमें एक तो यह दोष पडता है जो जड प्रकृतिको कर्तृत्वपना नहीं बनता है । यदि जडको कर्ता माना जवैगा तब मृत्तिका आप ही घटको बनालेगी घटके बनानेके लिये कुलालकी आवश्य-

कता नहीं होगी। दूसरा निरवयव निराकार अनेक विभु एक देशमें रह नहीं सक्ते हैं। इन दोनोंमें कोई भी दृष्टांत नहीं मिलता है। और नैयायिक जीव और ईश्वर दोनोंको विभु और जड मानता है, चेतनता उनका गुण मानता है। इसके मतमें भी एक तो वही दोष आवैगा जो बहुतसे विभु एक देशमें नहीं रह सक्ते हैं। यदि मानेंगे तब कर्मोंका संकर होजायगा और जीवोंके कर्म ईश्वरमें भी जारहेंगे। क्योंकि दोनों निराकार व्यापक हैं। भेदक तो कोई ईश्वर जीवके अन्तरमें नहीं है। दोनोंको निराकार होनेसे दोनों एक ही होजायँगे तब जीव ईश्वरकी कल्पना भी इनकी मिथ्या होजायगी। फिर जड निराकार हो भी नहीं सक्ता है। यदि मानैंगे तब शून्यवाद ही सिद्ध होगा और जडका धर्म चेतनता भी नहीं होसक्ती है। इसमें भी कोई दृष्टांत नहीं मिलता है इसलिये इनका मत श्रुतियुक्तिसे विरुद्ध होनेसे असंगत है। वैष्णव और आचारी लोक जीवात्माको निरवयव और अणु परिमाणवाला मानते हैं और चेतन भी मानते हैं। चेतन निरवयव विना उपाधिके अणु परिमाणवाला नहीं होसक्ता है और फिर केवल चेतनमें चेतन रह भी नहीं सक्ता है। इस मतमें भी ईश्वरको प्रेरणा करनी जीवको नहीं बनती है। इसी तरह और भी मतोंवालोंने अपने ईश्वर भिन्न २ माने हैं और फिर भिन्न उनके लोक माने हैं। उन सबके मत तो सर्वथा श्रुति युक्ति विरुद्ध हो त्यागने योग्य हैं। पूर्व जो मत दिखाये हैं उनको यदि सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तब उन सब मतोंमें जीव ईश्वरका भेद सिद्ध नहीं होता है। इसीसे यह वार्ता भी साबित होती है जो भेद कल्पित है, वास्तवसे अभेद ही है। अब अपने मतको दिखाते हैं। न तो प्रतिबिंबरूप जीव हैं और न अवच्छेदरूपही जीव है, किंतु जैसे कर्णको सूतपुत्र भ्रम हुआ था जो मैं सूतपुत्र हूँ और अपनेको सूतपुत्र करके ही मानता था और वास्तवसे वह सूतपुत्र नहीं था, तैसे अवच्छेद और प्रतिबिंब भावसे रहित ब्रह्मको अनादि अविद्याके सम्बन्धसे अपनेमें जीवत्वका भ्रम हुआ है और अपनी अविद्या करके जीवभावको प्राप्त जो ब्रह्म है, उसने सर्व प्रपंचकी कल्पना की है अर्थात् वही ब्रह्म ही सर्व प्रपंचकी कल्पना करनेवाला है। जैसे और संपूर्ण जगत्की तिसने कल्पना की है, तैसे सर्वज्ञत्वादि धर्मोंवाले ईश्वरकी कल्पना भी

तिसी जीवने ही करी है अर्थात् ईश्वर भी जीव करके ही कल्पित है जैसे स्वप्नमें जीव सर्वज्ञत्वादिक गुणों करके विशिष्ट ईश्वरकी कल्पना करके तिसकी उपासनाको कर्ता है और कल्पित उपासनाके कल्पित फलको भी प्राप्त होता है, तैसे जाग्रत्‌में भी जीव ईश्वरकी कल्पना करके तिसकी उपासना करके कल्पित फलको प्राप्त होता है। वास्तवसे जीवत्व ईश्वरत्व दोनों धर्म चेतनमें कल्पित हैं। एक चेतनमें धर्मही सत्य है ॥ ६ ॥

अब एक जीववाद और अनेक जीववादोंको दिखाते हैं:—

एक जीववादी कहता है एक ही शरीर सजीव है, बाकीके सब शरीर स्वप्नके शरीरोंकी तरह निर्जीव हैं; इसलिये जीव एकही है नाना जीव नहीं हैं।

प्रश्न—जैसे एक शरीरमें हिताहित प्राप्ति परिहारार्थ चेष्टा प्रतीत होती है तैसे संपूर्ण शरीरोंमें भी हिताऽहित प्राप्ति परिहारार्थ चेष्टा प्रतीत होती है; इसवास्ते ऐसा कथन नहीं बनता ह जो एक ही शरीर सजीव है और बाकीके शरीर सब निर्जीव हैं।

उत्तर--जैसे स्वप्नकालमें स्वप्नके द्रष्टाकी दृष्टिसे स्वप्नके कल्पेहुए जीव सब चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवसे वह सब निर्जीव हैं तैसे जाग्रत्‌के द्रष्टा करके कल्पेहुए जीवभी सब चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवसे वह सब निर्जीव हैं। जसे स्वप्नका कल्पक निद्रा है तैसे जाग्रत्‌का कल्पक अज्ञान है। जैसे जबतक निद्रा नाश नहीं होती है तबतक स्वप्नका सर्व व्यवहार होता है तैसे जबतक आत्मज्ञान करके अज्ञानका नाश नहीं होता है, तबतक जाग्रत्‌का भी सर्व व्यवहार होता है। जैसे स्वप्नसे जागा हुआ पुरुष स्वप्नरूप भ्रांतिसिद्ध अपर पुरुषकी मुक्तिको दूसरेके प्रति कथन करता है, तैसे जीवकी भ्रांतिसिद्ध शुकादिकोंकी मुक्तिको तिसके प्रति शास्त्रबोधन करता है, जेसे स्वप्नमें स्वप्नका द्रष्टा गुरु और ईश्वरकी कल्पना करके उनकी उपासनाको करता है और उनसे विद्या आदिक फलको प्राप्त होता है तैसे जाग्रत्‌का द्रष्टा भी जाग्रत्‌में गुरु ईश्वरकी कल्पनाको करके उनसे आत्मविद्याको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

अब एक जीववादमें दूसरेके मतको दिखाते हैं:–

पूर्व जो एक जीववादीने कहा है, एक शरीर सजीव है अपर शरीर सब निर्जीव हैं ऐसा तिसका कथन ठीक नहीं है क्योंकि वह एक जीव एकही शरीरमें रहता है और शरीरोंमें नहीं रहता है। इस अर्थको सिद्ध करनेवाली कोई भी प्रवल युक्ति नहीं मिलती है और श्रुतियोंमें जीवसे भिन्न ईश्वरको सिद्ध किया है और तिसी ईश्वरको ही जगत्का कर्ता भी कहा है जीवको जगत्का कर्ता नहीं कहा है। किन्तु ब्रह्मका प्रतिबिम्बरूप हिरण्यगर्भ ही मुख्य एक जीव है और विम्बरूप ब्रह्मको ईश्वर कहा है, सो जीवसे भिन्न करके माना है, वही हिरण्यगर्भ भौतिक प्रपञ्चका कर्ता माना है उसीको कारणोपाधि भी कहा है। तिसी हिरण्यगर्भ मुख्य एक जीवके अपर जीव सब प्रतिविम्ब रूप भी हैं और जैसे पटपर लिखेहुए चित्रमें मनुष्योंके जो शरीर हैं, तिनपर दिये हुए जो पटाभास हैं उनके समान यह सब जीव भी जीवाभास रूप हैं और वह सब जीवाभास रूपही संसारी जीव हैं। जैसे हिरण्यगर्भका शरीर मुख्य जीव होनेसे सजीव है, तैसे अपर शरीर भी जीवाभास होनेसे सजीव हैं ॥ २ ॥

तीसरे एक जीववादीके मतको दिखाते हैं:–

पूर्व मतमें कहा है, कि, बिम्बरूप ईश्वर है, तिसका प्रतिविम्बरूप हिरण्यगर्भ ही एक जीव है, अपर जीव सब तिसके प्रतिविम्ब रूप हैं। प्रथम तो प्रतिबिम्बका प्रतिबिम्ब नहीं होसक्ता है, दूसरा हिरण्यगर्भका कल्प २ में भेद है, इससे यह वार्ता नहीं सिद्ध होती है जो किस हिरण्यगर्भका शरीर सजीव है और वही मुख्य जीव है और इसमें कोई निश्चित प्रमाण भी नहीं मिलता है। जो हिरण्यगर्भका शरीर मुख्य जीवसे सजीव है और अपर शरीर जीवाभासरूप जीवाभासोंसे सब सजीव हैं ये क्लिष्ट कल्पना है, किन्तु अविद्यामें जो कि चेतनब्रह्मका प्रतिविम्ब है सोई जीव है। अविद्याके एक होनेसे वह जीव भी एक ही है वह एकही जीव भोगके लिये संपूर्ण शरीरोंको आश्रयण करता है, तिसी एक एक जीवके प्रतिबिम्बरूप ही अपर सब जीव हैं। उन्हीं प्रतिबिंबाभासरूप जीवोंसे अपर शरीर सब जीवाभासरूप हैं और एक जीवात्माको मुख्य अनु-

स्वरूप करके जीवपनेकी कल्पना करनी असंगत है। जैसे देवदत्तको अपने एकही शरीरके अवयवरूपी शिरमें सुख भान होता है और पादमें दुःख भान होता है, तैसे एक ही जीवको सर्वशरीरोंमें अंगीकार करनेसे देवदत्तके शरीरमें हमको सुख है यज्ञदत्तके शरीरमें हमको दुःख है इस प्रकार सर्व शरीरोंमें तिस एकही जीवको सुख दुःखका अनुभव होना चाहिये किन्तु होता नहीं है। तथापि शरीरका भेद सुख दुःखके अनुसन्धानका साधक है। जसे प्रथम शरीरमें और उत्तर शरीरमें जीव एक है, तब भी प्रथम शरीरका याने पूर्व जन्मवाले शरीरके सुख दुःखका अनुसन्धान होता नहीं तिसके अनुसन्धानका साधक शरीरका भेद है, तैसे ही सब शरीरोंमें जो सुख दुःखका अनुसन्धान है, तिसका साधक भी शरीरका भेद है।

इस मतमें अनेक शरीरोंमें एक ही जीव अंगीकार किया है:—

एक जीववादमें तीन मतोंको दिखादिया है, अब अनेक जीववादमें मतभेदको दिखाते हैं:—

अनेक जीववादके प्रथम मतको दिखाते हैं:—

तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् ॥ १ ॥

देवतोंमेंसे जिस २ ने ब्रह्मको जाना सो २ ब्रह्मरूप ही होगया। इत्यादि श्रुतियोंने जीवके भेदसे बद्ध और मुक्तकी व्यवस्था कही है। सो इस रीतिसे एकजीववादमें बद्ध मुक्तकी व्यवस्था बनती नहीं है; क्योंकि श्रुति कहती है देवतोंमेंसे जिसने ब्रह्मका साक्षात्कार किया है वही ब्रह्मरूप हुआ है व जिसने नहीं किया वह ब्रह्मरूप नहीं हुआ। इस श्रुतिने ज्ञानीको मोक्ष और अज्ञानीको बंध कहा है। यदि एकही जीव माना जावैगा तब यह बंधमोक्षकी व्यवस्था नहीं बनेगी। इस लिये अनेक जीववाद मानना चाहिये। जिस हेतुसे अन्तःकरण अनेक हैं इसी हेतुसे अन्तःकरण उपाधिवाले जीव भी अनेक हैं और अन्तःकरणोंका उपादान कारण जो मूल अज्ञान है वह एक है। वह अज्ञान शुद्ध ब्रह्मके ही आश्रित है और तिसको विषय करता है। तिस अज्ञानकी निवृत्तिका नाम ही मोक्ष है और वह मूल अज्ञान सांश है, अर्थात् अंशोंवाला

है निरंश नहीं है। और फिर वह अज्ञान अनिर्वचनीय है तिसके अंश भी अनिर्वचनीय हैं। अन्तःकरणरूपी तिस अज्ञानके अंश हैं। जिस अन्तःकरण-रूपी अज्ञानके अंशमें ज्ञान उत्पन्न होता है उसी अंशकी निवृत्ति होती है, इतर अंशोंकी नहीं होती है ॥ १ ॥

अनेकजीववादमें अब दूसरे मतको दिखाते हैं:-

जीव चेतनका जो कि, अज्ञानसे संबन्ध है सोई बंध है और अज्ञानके सम्बन्धके नाशका नाम ही मुक्ति है। अज्ञानकी निवृत्तिका नाम मुक्ति नहीं है। केवल अज्ञानके सम्बन्धाभाव मात्रसे ही बन्धकी निवृत्ति होसक्ती है। यदि ऐसा नहीं मानोगे तब मूल अज्ञानका विरोधि जो ज्ञान तिसके उदय होनेसे, जैसे अग्निके सम्बन्धसे तूलका पिंड समग्र जलजाता है तैसे ज्ञानके सम्बन्धसे समग्र अज्ञान भी भस्म होजावैगा तब फिर बंध मोक्षकी व्यवस्था भी नहीं बनैगी। इन पूर्वोक्त युक्तियोंसे जीव नहीं सिद्ध होते हैं, जीव एक नहीं है॥२॥

अनेकजीववादमें अब तीसरे मतको दिखाते हैं:-

और कोई कहता है "अहमज्ञः ब्रह्म न जानामि" मैं अज्ञ हूँ ब्रह्मको मैं नहीं जानता हूँ। इस अनुभवसे यह सिद्ध होता है कि, जीव ही अज्ञानका आश्रय है, विषय नहीं है। और शुद्ध ब्रह्म अज्ञानका विषय है, आश्रय नहीं है, और अज्ञानके अंशरूप अन्तःकरण अनंत हैं, इसलिये तिनमें प्रतिबिम्बरूप जीव भी अनेक हैं। जैसे एक ही जाति अनेक व्यक्तियोंमें रहती है, तैसे एक ही अज्ञान अनेक जीवोंमें रहता है। जिस अन्तःकरणमें ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानकरके तिसी अन्तःकरणकी निवृत्ति होती है। अन्तःकरणकी निवृत्ति होने-पर प्रतिबिंबकी भी निवृत्ति होजाती है, अर्थात् अपने बिम्बमें प्रतिबिंब लय होजाता है। प्रतिबिंबके निवृत्त होनेके समकालमें ही अज्ञान भी तिस उपा-धिको त्याग देता है वही मोक्ष है। "जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" यह श्रुति भी इसमें प्रमाण है, इस पक्षमें अज्ञानका संबन्ध ही बंध है, तिसकी निवृत्ति मोक्ष है ॥ ३ ॥

अनेकजीववादमें अब चतुर्थ मतको दिखाते हैं:-

अविद्या अनेक हैं, तदुपाधिक जीव भी अनेक हैं जिस जीवकी आत्मविचारकरके अविद्या निवृत्त होजाती है, वही मुक्त होजाता है । जिसकी अविद्या निवृत्त नहीं होती है तिसको बन्ध बनाही रहता है और अविद्याका नाश होनेपर तिसके नाशके संस्कार बाकी बने रहते हैं:। इसलिये जीवन्मुक्ति भी बनजाती है । विदेहमुक्तिमें वह संस्कार भी नाश होजाते हैं । इस मतमें अज्ञानकी निवृत्तिका नामही मोक्ष है अज्ञानके असंबन्धका नाम मोक्ष नहीं है, और ज्ञानके अनेक होनेमें प्रत्यक्ष ही प्रमाण है । क्योंकि प्रत्येक जीवको 'अज्ञोहं' ऐसा होता है और सबमें अज्ञानके अनेक अंश हैं । अज्ञान एक है, इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देखते हैं, इसलिये अज्ञान एकही है ॥ ४ ॥

प्रश्न—अनेक जीववादमें हम पूंछते हैं, एक जीवकी अविद्यासे यह प्रपंच रचा गया है, या संपूर्ण जीवोंकी अविद्यासे यह प्रपंच रचा गया है ?

उत्तर—कोई तो ऐसा कहते हैं, जैसे अनेक तन्तुओंसे एक पट रचित है. तैसे सब जीवोंकी संपूर्ण अविद्याका परिणाम प्रपंच है । अथवा संपूर्ण अविद्याका विषय जो ब्रह्म है तिसका विवर्त प्रपंच है । जैसे एक तंतुके नाश होजानेसे पटका नाश नहीं होता है, तैसे एकके मुक्त होजानेसे तिसकी अविद्याका नाश होनेपर भी तत्साधारण प्रपंचका भी नाश नहीं होता है । एक तंतुके नाशकालमें विद्यमान अपर तंतुओंसे अपर पटकी तरह अपर सर्व जीवोंकी सर्व अविद्यासे साधारण प्रपंच बना रहता है । इस मतमें संपूर्ण जीवोंकी सर्व अविद्याका प्रपंच एक माना है ॥ १ ॥

अब इसी विषयमें दूसरे मतको दिखाते हैं:—

संपूर्ण अविद्याओंका कार्य्य जो प्रपंच है, सो अविद्याके भेदसे प्रत्येक जीवके प्रति प्रपंच भिन्न २ है और स्व स्व अविद्याकृत गगनादि प्रपंच भी जीव २ का भिन्न २ है यद्यपि जहांपर एक कालमें बहुतसे पुरुषोंको शुक्तिमें रजतका भ्रम हुआ वहांपर सर्व पुरुषोंके सर्व अज्ञानोंसे एक २ जनकी उत्पत्ति बनती है । इससे तो यह साबित हुआ कि जीव २ के अज्ञानके भेदसे अज्ञानकृत रजतका भेद भी कहना बनता है । तथापि तहांपर दैवयोगसे एक पुरुषको शुक्तिके

ज्ञान सहित अज्ञान उपादान रजतका नाश होनेपर भी अपर पुरुषको रजत भ्रम बनाही रहता है। इस हेतुसे वहांपर रजतका भेद अवश्यही मानना पड़ेगा। जैसे शुक्तिके अज्ञानसे शुक्ति रजतका भेद है अर्थात् अपनी २रजत भिन्न २ शुक्तिके अज्ञानसे जैसे रची हुई है तैसे जीव २ का प्रपंच भी अपना २ भिन्न २ ही रचा हुआ है, किंतु एक नहीं है। और एक पुरुषसे दूसरा पुरुष वहांपर कहता है कि, शुक्ति रजतमें जो रजत तुमने देखा है वही रजत हमने भी देखा है यह प्रतीति भी भ्रममात्र है। तैसे जो घट तुमने देखा है सोई घट हमने भी देखा है यह प्रतीति भी भ्रममात्र है। इस मतमैं संपूर्ण अविद्याओंका कार्य्य प्रपंचको मान करके भी भिन्न २ ही प्रपंचको माना है ॥२॥

अब इसी विषयमें तीसरे मतको दिखाते हैं:—

गगनादि प्रपंच जीवकी अविद्याका परिणाम नहीं है, किंतु जीवाश्रित जो अविद्या तिस अविद्याके समूहसे भिन्न जो माया सो सर्व जीवोंके साधारण प्रपंचका परिणामी उपादान है, सो माया ईश्वरके आश्रित है और तिस मायाका कार्य्य प्रपंच भी एक ही है इसीसे एकत्व प्रतीति सबकी भ्रमरूप एकही है "माया च अविद्या च मायिनं तु महेश्वरम्" इस श्रुतिसे अविद्यासे भिन्न ईश्वराश्रित माया प्रतीत होती है और जीवोंकी अविद्याका आवरण-मात्रमें और शुक्ति रजतादिक प्रातिभासिक विक्षेपमें उपयोग है। इस मतमें गगनादि प्रपंचको ईश्वराश्रित मायाका कार्य्य मानकर सर्व जीवोंका साधारण प्रपंच माना है ॥ ३ ॥

जीवन्मुक्तिका विचार:—

अविद्यामें आवरण विक्षेप दो शक्तियें हैं। ब्रह्मज्ञान करके आवरण शक्तिका नाश होता है, विक्षेपशक्तिमान् मूल अज्ञानका नाश नहीं होता है। प्रारब्ध कर्मरूप प्रतिबंधकके नाश होनेसे आवरण रहित चेतनसे विक्षेपशक्तिमान् अविद्याका नाश होता है। इस मतसे विक्षेपशक्तिमान् अविद्याको ही अवि-द्याका लेश माना है। तिस लेशकी निवृत्ति वृत्तिके संस्कारोंके सहित चेतनसे मानी है ॥ १ ॥

और कोई कहता है कि, जसे लशुनके वासनके धोनेसे भी तिसमें लशुनकी वास रहजाती है तैसे तत्त्वबोधसे अंतःकरणका उपादानकारण जो अविद्या तिसकी निवृत्ति होनेपर भी अविद्याजन्य देहादिकोंकी स्थितिका कारण कोई वासना विशेष रहजाती है उसीका नाम लेश अविद्या है। तिसी लेश अविद्या करके देहादिकोंकी प्रतीति जीवन्मुक्तकी बनी रहती है ॥ २ ॥

और कोई कहता है, जैसे दग्धपटमें स्वकार्य्य करनेकी सामर्थ्य नहीं रहती है तैसे तत्त्वज्ञान करके बाधित दृढकार्य्य करनेमें असमर्थ जो मूल अविद्या सोई लेश कहलाती है ॥ ३ ॥

और कोई कहता है कि, विरोधी साक्षात्कारके उदय होनेसे लेश अविद्या भी नहीं रहती है, ब्रह्म साक्षात्कारके उदय मात्रसे कार्य्यसहित वासनासहित अविद्याकी निवृत्ति होजाती है। जीवन्मुक्तिका बोधक जो शास्त्र सो श्रवणविधिका अर्थवादमात्र है। जीवन्मुक्तिमें तिसका तात्पर्य नहीं है किन्तु श्रवणकी प्रवृत्तिमें तिसका तात्पर्य है ॥ ४ ॥

प्रश्न—ज्ञानके उदय कालमें और उपाधिके लयकालमें जीवत्वभावसे रहित जो आत्मा है तिसका ईश्वरसे अभेद होता है, अथवा शुद्ध ब्रह्मसे अभेद होता है ?

उत्तर—एक जीववादीका तो इसमें यह मत है कि, एकही जीव है और मूल अज्ञान भी एकही है तिस जीवको जिस किसी अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय होनेसे कार्यसहित अज्ञानका तिसी क्षणमें बाध होता है, अज्ञानके बाध होनेपर निर्विशेष चैतन्यरूपसे अवस्थानका नाम ही मुक्ति है इस मतमें शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्तिका नाम ही मुक्ति है ॥ १ ॥

और जो प्रतिबिंबकोही जीव ईश्वररूप करके मानता है तिसका यह मत है। अनेक उपाधियोंमें एकका प्रतिबिम्ब होनेपर जिस उपाधिका नाश होताहै तिसका प्रतिबिम्ब अपने बिम्बरूपसे स्थित होजाता है दूसरे प्रतिबिम्बसे तिसका अभेद होता नहीं किंतु अपने बिम्बसेही तिसका अभेद होता है। इस मतमें भी मुक्तपुरुषका शुद्ध ब्रह्मसेही अभेद होता है ॥ २ ॥

अब जीवप्रतिबिम्बवादीके मतसे कहते हैं:—

जैसे अनेक दर्पणोंमें एक मुखका प्रतिबिंब होनेपर भी जब कि; एक दर्पण नष्ट होजाता है तब तिसका प्रतिबिंब बिंबरूपसे स्थिर होजाता है। मुखमात्र रूपसे स्थित नहीं होता है, किन्तु तिस कालमें अपर दर्पणोंकी समीपतासे मुखके प्रतिबिंबत्वका अभाव होता नहीं है, तैसे एक ब्रह्म चेतनका अनेक उपाधियोंमें प्रतिबिंब होनेपर भी एक उपाधिमें आत्मज्ञानके उदयकालमें तिस उपाधिका बाध होनेसे तिसके प्रतिबिंबका सर्वज्ञ सर्वकर्ता सर्वेश्वर सत्यकामादि गुणोंवाले बिंबरूपसे तिसका अभेद होजाता है। यद्यपि अविद्याके अभाव होनेसे सत्यकामादि गुणविशिष्टकी प्राप्ति संभव भी नहीं है और ईश्वरका ईश्वरत्व और सत्यकामादि गुणविशिष्टत्व स्वअविद्याकृत नहीं है, किन्तु बद्ध पुरुषकी अविद्याकृत है इसलिये सत्यकामादि गुणोंका कथन भी बन जाता है ॥ ३ ॥

चित्तवृत्ति कहती है:—हे विवेकाश्रम ! एक वेदांतमें आपने बहुतसे मत कहे हैं और हरएक मतवालोंने जीव ईश्वरका स्वरूप भिन्न २ तरहका माना है और मुक्तिमें भी कुछ फरक माना है, तब किसका मत ठीक है और किसका ठीक नहीं है और किसके मतमें विश्वास करनेसे कल्याण होता है? विवेकाश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ते ! सबके ही मत ठीक हैं, क्योंकि सबका तात्पर्य आत्मबोधमें है। अपनेको ब्रह्मरूप निश्चय करनेसे पुरुषका कल्याण होता है। सो सबका तात्पर्य जीवको ही ब्रह्मरूप कथन करनेमें है। किसी मतसे तुम अपनेको ब्रह्मरूप निश्चय करलेओ सो कहा भी है:—

यया यया भवेत्पुसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रिया साध्वी ज्ञेया सर्वात्मना बुधैः ॥ १ ॥

जिस रीतिसे पुरुषोंको प्रत्यगात्माका बोध हो वही साध्वी प्रक्रिया तिसके लिये बुद्धिमानोंको जानने योग्य है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पूर्वोक्त सर्वमतोंका तात्पर्य अद्वैत आत्माके बोधमें है, वह बोध किसी रीतिसे हो वही रीति उत्तम है। विना अद्वैत बोधके कदापि मुक्ति नहीं होती है। और जितने भेदवादी मत हैं, यह सब बन्धनमें फँसानेवाले हैं, छुडानेवाले नहीं हैं। इसलिये भेदवादियोंका संग भी मोक्षका विरोधी है।

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ १ ॥

किसी देशमें मोक्षका वास नहीं है न किसी ग्रामके भीतर मोक्षका वास है किंतु हृदयमें जो अज्ञानकी ग्रन्थि है तिसके नाशका नामही मोक्ष है ॥ १ ॥

अनात्मभूते देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनाम् ।
साऽविद्या तत्कृतो बंधस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ॥ २ ॥

अनात्मरूप जो देहादिक हैं उनमें जो जीवोंकी आत्मबुद्धि है उसीका नाम अविद्या है तिस अविद्याकृत ही बन्ध है, तिसके नाशका नाम मोक्ष है ॥२॥

कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्तितः ।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥ ३ ॥

कामनाओंका जो हृदयमें निवास है तिसका नाम संसार है । उन कामनाओंका जो सर्वरूपसे नाश होजाना है, तिसीका नाम मोक्ष है ॥ ३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! और सब मतोंवालोंकी मुक्ति अनित्य है, क्योंकि वह सब मोक्षावस्थामें भी भेद मानते हैं और लोकांतरकी प्राप्तिको वह मोक्ष मानते हैं । इसीसे उनकी मुक्ति वेदविरुद्ध भी है और अनित्य भी है और वेदमें कहीं भी मुक्तका पुनरागमन नहीं लिखा है सो दिखाते हैं । व्याससूत्रम्:-

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ १ ॥

श्रुतिमें मुक्तकी अनावृत्ति कही है "नच पुनरावर्तते नच पुनरावर्तते" मुक्तहुआ पुरुष फिर हटकरके संसारमें नहीं आता है, फिर हटकरके संसारमें नहीं आता है ॥ १ ॥ गीतायामपि-

यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ।

जिस पदको प्राप्त होकर फिर लौटकर नहीं आता है, वही मेरा परम स्वरूप हैं । सांख्यसूत्रम्:-

न मुक्तस्य पुनर्बंधयोगोपि अनावृत्तिश्रुतेः ।

मुक्त पुरुषको फिर बंधका सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि श्रुतियोंमें अनावृत्ति शब्द श्रवण किया है ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥ १ ॥

जिस कालमें विद्वान्के हृदयकी ग्रंथियां सब भेदन होजाती हैं, इससे अनंतर वह अमृत अर्थात् मोक्ष होजाता है, यही वेदका अनुशासन है ॥ १ ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः ।
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ॥ १ ॥

परब्रह्मको जानकर संपूर्ण पाशोंसे छूट जाताहै, अविद्या आदिक क्लेशोंके नाश होनेसे जन्म मरणसे छूट जाता है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मुक्त पुरुषका पुनरागमन किसी प्रकारसे भी नहीं होता है, क्योंकि अनेक श्रुतियें इसमें प्रमाण हैं । उनमेंसे कुछ पीछे दिखाईं और अब युक्तिसे भी दिखाते हैं:—मुक्त होजानेपर कोई कर्मोंका संस्कार बाकी रहता है या नहीं रहता है ? यदि कहो रहता है, तब मुक्त न हुवा, क्योंकि मुक्त नाम कर्मबन्धनसे छूटजानेका है; जिसके ज्ञानरूपी अग्नि करके संपूर्ण कर्मोंका नाश होजाय वही मुक्त कहाता है । जिसका कोई एक कर्म शेष रहजाय वह मुक्त नहीं कहाता है, क्योंकि जन्मका हेतु तो कर्म है, वह तो तिसका शेष बैठा है तब मुक्त कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है । यदि कहो मुक्त पुरुषका कोई कर्म शेष नहीं रहता है, अर्थात् कोई भी कर्मोंका संस्कार नहीं रहता है, तब फिर तिसका पुनरागमन नहीं बनता है । क्योंकि जन्मका हेतु जो कर्मोंका संस्कार वह तो तिसके बैठे हैं; फिर मुक्त कैसे होसक्ता है किंतु कदापि नहीं होसक्ता है ।

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने पीछे आत्माको प्रकाशरूप कहा है और अज्ञानको तमरूप करके कहा है । जैसे प्रकाशरूप सूर्य्यमें तमरूप अंधकार किसी प्रकारसे भी नहीं रहसक्ता है, तैसे प्रकाशरूप चेतनमें

भी अज्ञान नहीं रहसक्ता है तब फिर चेतनके आश्रित होकर कैसे अज्ञान रहता है मेरे इस संशयको तुम दूर करो। वैराग्याश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! यह शंका भेदवादियोंकी है, जो भेदवादी ऐसी शंकाको करते हैं, उनसे हम पूछते हैं ईश्वरको तो वह भी प्रकाशस्वरूप मानते हैं और जगत्को तमरूप करके मानते हैं। प्रकाशस्वरूप ईश्वरमें तमरूप जगत् कैसे रहसक्ता है? फिर प्रकृतिको वह जड मानते हैं, जो जड होता है वही तमरूप भी होता है, वह प्रकृति तिस व्यापक चेतनमें कैसे उनके मतमें रहती है? फिर शुद्ध ईश्वरमें वह इच्छादिक गुणोंको मानते हैं, शुद्धमें वह इच्छा आदिक गुण कैसे रहते हैं?यदि रहेंगे तब तिसकी शुद्धता न रहेगी और जीवके साथ गुणों करके तुल्यता भी होजायगी। क्योंकि जीवभी इच्छा आदिक गुणोंवाला है फिर व्यापक प्रकाशस्वरूप चेतनमें अंधकाररूपी रात्रि कैसे रहती है? यदि कहो तिस ईश्वरमें प्रकृति और जगत् तथा रात्रि नहीं रहती है तब ईश्वर व्यापक सिद्ध नहीं होगा फिर उन भेदवादियोंका आत्मा भी चेतन है, शुद्ध है क्योंकि जो चेतन होता है वह शुद्धभी होता है तब फिर जिस कालमें तिसमें एक वस्तुका ज्ञान रहता है तिसकालमें इतर वस्तुओंका अज्ञानभी रहता है और ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ति करोडों पदार्थोंका अज्ञान सदैवकालमें तिसमें बना रहता है और यह तो आप कहही नहीं सक्ते हैं जो उसमें संपूर्ण पदार्थोंका ज्ञानही बना रहता है यदि ऐसे कहोगे तब तुमको सर्वज्ञ होना चाहिये, सो तो नहीं है इसीसे सिद्ध होता है कि तुम्हारे आत्मामें अनंत पदार्थोंका अज्ञान बैठा है, वह फिर कैसे रहता है? और यदि कहो वह अज्ञान इस बाहरके तमकी तरह नहीं है तब हमारा अज्ञान भी बाहरी तमकी तरह नहीं है! इससे विलक्षण है। जैसे तुम्हारा अज्ञान तुम्हारे चेतनमें रहता है तैसे हमारा अज्ञानभी चेतनके ही आश्रित रहता है। यदि कहो हमारा आत्मा शुद्ध नहीं, तब हम पूछते हैं कि, तुम्हारे आत्माको अशुद्ध किसने किया है। एक पदार्थ जो शुद्ध होता है सो दूसरे पदार्थके सम्बन्धसे अशुद्ध होजाता है; जैसे शुद्ध जल मलके सम्बन्धसे या किसी और दुर्गंधिवाले पदार्थके सम्बन्धसे अशुद्ध होसकता है क्योंकि वह दोनों सावयव पदार्थ हैं। आत्मा निरवयव निराकार तिसके साथ दूसरे मलिन पदार्थका सम्बन्धही किसी प्रकारसे नहीं बनता है। तब वह अशुद्ध कैसे,

होगया ? सावयवका निरवयवके साथ संयोग या समवाय कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है, क्योंकि संयोगसंबंध सावयव पदार्थोंकाही होता है सावयव निरवयवका संयोगसम्बन्ध किसी प्रकारसे भी नहीं होता है। फिर कार्यकारणका समवायसम्बन्ध होता है, सो चेतन किसी भी जडकार्य्यका उपादानकारण नहीं है और जड चेतनका कोई सम्बन्ध भी माना नहीं है, तब कैसे तुम्हारा आत्मा अशुद्ध होगया यदि कहो कर्मोंके संस्कार तिसमें रहते हैं इसीसे वह अशुद्ध होगया है, सोभी नहीं। क्योंकि विना शरीरके केवल आत्मा कर्म कर्ताही नहीं है और लोकमें भी शरीरकोही कर्म करते सब कोई देखता है, आत्माको किसीने नहीं देखा और शरीरके किये हुए कर्म आत्माको लग भी नहीं सक्ते हैं। क्योंकि ऐसा नियम है। यज्ञदत्तका कर्म देवदत्तको नहीं लगसक्ता है। यदि कहो शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध होनेसे शरीरकरके करे हुए कर्म आत्मामें चलेजाते हैं, सोभी नहीं क्योंकि शरीरके साथ संयोगादि सम्बन्ध निरवयव चेतनके बनतेही नहीं हैं। यदि कहो कल्पित सम्बन्ध मानेंगे तब तुम्हारा मतही जाता रहेगा और फिर जैसे कल्पित सम्बन्ध शरीरका आत्माके साथ मानते हो ऐसेही तुमको कल्पित सम्बन्ध अज्ञानकाभी मानना पडैगा। यदि कहो आत्मा अशुद्ध नहीं है, भ्रांति करके अपनेको अशुद्ध मानता है तब उसी भ्रांतिको हम अज्ञान कहते हैं, फिर शुद्धको भ्रांति कैसे होगई और तिस भ्रांतिका स्वरूप क्या है ? यदि कहो वह भ्रांति अनादि है और कुछ कही नहीं जाती है, तब फिर उसीको अनादि अनिर्वचनीय अज्ञान क्यों नहीं तुम मान लेते हो ? यदि प्रकाशस्वरूप आत्मा अज्ञानका विरोधी होता तब तुम्हारे आत्मामें अनेक पदार्थोंका अज्ञान और भ्रांति कैसे रहती ? और रहती है इसीसे सिद्ध होता है आत्मा अज्ञानका विरोधी नहीं हैं। जैसे जीवात्मा अज्ञानका विरोधी नहीं है, तैसे ईश्वरात्माभी अज्ञानका विरोधी नहीं है। क्योंकि समसत्ताक पदार्थ परस्पर विरोधी होते हैं, विषमसत्ताक पदार्थ परस्पर विरोधी नहीं होते हैं। जैसे एक अधिकरणमें समसत्तावाले अर्थात् व्यावहारिक सत्तावाले घट पट दो पदार्थ नहीं रहसक्ते हैं, जिस जगह पर घट रक्खा

रहेगा, उसी जगहमें पट नहीं रक्खा जाता है; किंतु उस जगहसे दूसरी जगहमें पट रक्खा जावैगा । परन्तु विषमसत्तावाले दो पदार्थ एकही जगहमें रह जाते हैं जैसे व्यावहारिक शुक्तिमें प्रातिभासिक रजत रहती है । शुक्तिकी व्यावहारिक सत्ता है, रजतकी प्रातिभासिक सत्ता है । फिर जैसे व्यावहारिक अन्तःकरणमें प्रातिभासिक स्वप्नके पदार्थ रहते हैं तैसेही पारमार्थिक सत्ता चेतनकी है। प्रातिभासिक सत्ता अज्ञानकी है,वह अज्ञान भी चेतनमें रहसक्ता है। क्योंकि चेतन अज्ञानका साधक है, बाधक नहीं है । जैसे सामान्य अग्नि सब काष्ठोंमें रहती है, परन्तु काष्ठका विरोधी नहीं है, अर्थात् काष्ठको जलाती नहीं है, किन्तु विशेष अग्नि जो कि प्रज्वलित हो रही है वही काष्ठोंकी विरोधी है, तथा काष्ठोंको जला देती है । तैसे सामान्य चेतन भी किसीका विरोधी नहीं है, किन्तु वृत्ति प्रतिबिंबित जो विशेष चेतन है, वही अज्ञानका विरोधी है अर्थात् अज्ञानका नाशक है । हे चित्तवृत्ते ! इस रीतिसे चेतनमें अज्ञान रहता है वह अज्ञान भी कल्पित ही है केवल चेतन ही नित्य है । और सदैवकाल एक रस अपनी महिमामें ज्योंका त्यों स्थित रहता है । चित्तवृत्ति कहती है-हे भ्रातः ! तुम्हारी कृपादृष्टिसे और तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंको सुनकर मैं कृतार्थ होगई हूं । अब मेरेको कुछ भी संदेह नहीं रहा है मैंने आपकी दयादृष्टिसे अपने आत्माको जान लिया है । ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

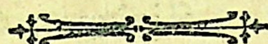
दोहा ।

सँवत एक अरु नव पुनि, पञ्चहि नव पुनि आन ।
सिंह मास एकादशी, पूर्ण ग्रन्थ यह जान ॥ १ ॥

इति श्रीस्वामिहंसदासशिष्येण स्वामिपरमानन्दसमाख्याधरेण विरचिते ज्ञानवैराग्यप्रकाशनामकग्रन्थे ज्ञाननिरूपणं नाम द्वितीयः किरणः ॥ २ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

विक्रय्यपुस्तकें (वेदान्तग्रन्थ–भाषा)



नाम. क्रि. रु. आ.

अनुभवप्रकाश–(वेदांत) योगेश्वर श्री १०८ वनानाथजीकृत मारवाडी भाषा इसमें–गुरुकी महिमा, योगीकी प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनकी चेतावनी, वेदान्तके पद, तत्त्वमस्यादि वाक्योंका सार, आसावरी, सोरठ, वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें वर्णन किया है. ०–१०

अभिलाखसागर–भाषामें स्वामी अभिलाखदास उदासी कृत । इसमें वन्दनविचार, ग्रन्थविचार, मार्गविचार, भजनविचार, जडब्रह्मविचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकारब्रह्मविचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमान ब्रह्मविचारादि विषय अच्छी रीतिसे वर्णित हैं १–८

अध्यात्मप्रकाश–श्रीशुकदेवजीप्रणीत–कवित्त, दोहे, सोरठे, छन्द, चौपाई इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है ०–३

अमृतधारा–वेदान्त भाषाछन्दोंमें भगवानदास निरंजनीकृत वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखीगई है ०–१०

आत्मपुराण–भाषामें दशोपनिषद्का भावार्थ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य चिद्घनानंद स्वामीकृत १२–०

आनंदामृतवर्षिणी–आनंदगिरि स्वामीकृत–गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन अर्थात् यह वेदांतका मूल है. ०–१२

एकादशस्कन्ध–भाषामें चतुर्दासजी कृत भागवतके एकादशस्कंधकी वेदांत रसमय कथा सुगम रीतिसे वर्णित है ०–१२

गर्भगीताभाषा–श्रीकृष्णार्जुनसंवाद अत्यंत स्पष्टरीतिसे लिखा गया है ०–१

गुप्तनादभाषा–मिसेस एनीबिसेन्टकृत–फ्रिमेशन थियोसोफी भैरवी इत्यादिका सार .... ०–१॥

नाम.	की. रु. आ.
चन्द्रावलीज्ञानोपमहासिंधु–इस ग्रन्थमें वेदवेदान्तका सार मुमुक्षुओंके ज्ञानार्थ–राग रागिनियोंमें अच्छीप्रकार वर्णित है....	०–६
जीवब्रह्मशतसागर–भाषा–इसमें ज्ञानकी अत्यन्त रोचक अनेक बातें हैं	०–३
तत्त्वानुसन्धान–भाषामें स्वामी चिद्घनानंदकृत अर्थात् "अद्वैतचिन्ता-कौस्तुभ" यह ग्रंथ आदिसे अन्ततक देखनेसे भलीप्रकार वेदान्तके छोटे बडे ग्रंथ आपही आप विचार सक्ते हैं	२–८
दशोपनिषद्–भाषामें । स्वामी अच्युतानंदगिरिकृत दशोपनिषद्का सरल भाषामें मूल २ का उल्था किया गया है, मुमुक्षुओंको पढनेसे शीघ्र अध्यात्मबोध होता है	२–०
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश–(कामलीवाले बाबाजी कृत) इसमें चारवेद, षट्शास्त्रोंका सार और अठारहों पुराणोंकी कथा आदिका अध्यात्म विद्यापर अर्थ लिखागयाहै । आत्मज्ञानियोंको अत्यन्त उपयोगी है.	२–१२
प्रबोधचन्द्रोदयनाटक–(वेदांत) भाषा गुलाबसिंहकृत–अतीव रोचक है.	१–०
प्रत्येकानुभवशतक–भाषा–यह छोटासा ग्रंथ पढनेसे वेदान्तमें अच्छा अनुभव सिद्ध होता है	०–४
ब्रह्मज्ञानदर्पण–(अर्थात् ज्ञानकी आरसी.)	०–२

सम्पूर्ण पुस्तकोंका बडा सूचीपत्र अलग है मँगाकर देखियें ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

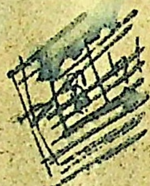
खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.

کس سنگ کیجے میترتا۔ سب جگ دشمن ہا
نشچل کیول ہے پربھو | دس مے کرو چیتا

چوروں سے مت کھو۔ مت بھوکھ۔ دیش بوکنگ
واکیا

४७॥७२॥ ४३॥ ४२॥
२९॥
३४॥ ४२॥ ४७॥३०॥२८॥
२७॥२०॥ ५६॥२०॥ ३७॥
२४ २८॥७८॥

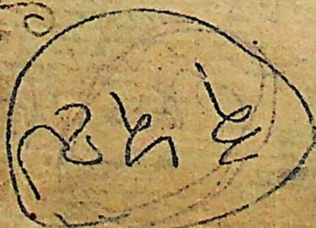


کس سنگ لگیے میرتا۔ سب جگ ڈولن ہار ||
نشچل کیول ہے پربھو / اس سے کرو پیار ||

چیونت ہے سب تمو۔ سب جھوٹھ ۔ برت جوگ
وانی







स्वर्गकी प्राप्तिके लिये भी लिख दिये हैं । यदि यज्ञमें पशु मारनेसे स्वर्ग होता तब यजमान अपने पिताको क्यों नहीं यज्ञमें होम करता ? तिसको भी तो स्वर्ग कामना बनी है । फिर जितने यज्ञादिक कर्मोंके करनेवाले मरे हैं, किसीने भी आजतक आकरके नहीं कहा कि हमारेको स्वर्ग हुआ है या नहीं हुआ है । इसलिये सब अपने खाने और द्रव्यके वंचन करनेके लिये बना दिये हैं और जो कि मरोंके पीछे पिंड और अन्नको देते हैं यदि उनको मिलता है, तब जो पुरुष विदेशमें जाता है, घरमें भी तिसके पीछे देनेसे उसको मिलना चाहिये,ऐसा तो नहीं देखते हैं । इस वास्ते ये भी सब जीविकाके लियेही बनाया गया है,वास्तवमें मरेको कुछभी नहीं मिलता है ॥

न स्वर्गो वाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रिया च फलदायिका ॥ १ ॥

वास्तवमें न स्वर्ग है और न कोई मोक्ष है और न कोई परलोकमें गमन करनेवाला आत्माही है और वर्णाश्रमोंकी कोई क्रिया भी पारलौकिक फलको देनेवाली नहीं है ॥ १ ॥

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ २ ॥

यावत्पर्यंत पुरुष संसारमें जीता रहे सुखपूर्वकही जीवनको व्यतीत करे, यदि कहो घृतादिकोंके पान करनेके विना कैसे सुखपूर्वक जीवन होसकता है । तब हम कहते हैं ऋणको लेकर घृतको पान करै । यदि कहो ऋण फिर कहांसे दिया जायगा ? तब कहते हैं ऋण देना किसको है देहके भस्मीभूत होनेपर फिर तो कोई देनेवाला रहैगा नहीं इसलिये देनेका भी भय नहीं है ॥ २ ॥ चित्तवृत्ति कहती है--हे विवेकाश्रम ! इस कुरूपताका त्याग करके तुम सुरूपताको धारण करके संसारके भोगोंको भोगो व्यर्थ अपनी आयुको खराब मत करो । विवेकाश्रम कहते--हैं हे चित्तवृत्ते ! ऐसा मत भाषण कर । विधाताने त्रिदण्ड और संन्यासको आत्मज्ञानकी प्राप्तिका साधन बनाया है तुमने उलटा समझ लिया है इसलिये इस विपरीत बुद्धिको तू त्याग करके आत्मविषयिणी

बुद्धिको आश्रयण कर । चित्तवृत्ति कहती है हे विषेकाश्रम ! जो वस्तु पहले प्राप्त न हो और यत्न करके पश्चात् प्राप्त हो उसकी प्राप्तिके लिये कोई साधन बनसक्ता है और जो वस्तु कि प्रत्यक्ष नेत्रोंसे दिखाती है और अपनेको प्राप्त भी है तिसकी प्राप्तिके लिये कोई भी साधन नहीं बन सक्ता है । हे मूढ ! यह जो स्थूल शरीर है, दो हाथ, दो पांव, दो कान, दो आंखवाला यही तो आत्मा है । इससे भिन्न और कौन आत्मा है और इस शरीरसे जो कि, भोग भोगे जाते हैं उनसे जो आनन्द प्राप्त होताहै यही तो आत्मानंद है, इससे भिन्न दूसरा और कौनसा आत्मानंद है ? संसारमें सब लोग तो शरीरको ही आत्मा मानते हैं और इन्द्रिय विषयके सम्बन्धसे जो सुख होताहै उसीको आत्मानन्द मानतेहैं । तुम्हारी तरह लोग मूर्ख नहीं हैं जो प्रत्यक्ष आत्माको छोडकर अप्रत्यक्षके पीछे खराब होते फिरें । हे विवेकाश्रम ! अब भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगडा है, इस बनावटी वेषका त्याग करके अपने असली वेषको धारण करके तुम भोगोंको भोगो । मूर्ख मत बनो । इस मूर्खतासे तुमको सुख कदापि नहीं होगा । विवेकाश्रम अपने मनमें कहते हैं, यह दुष्टा तो अपनेको बडी पंडिता मानकर बोल रही है, इस मूर्खाको यदि हम सूक्ष्म विचारसे समझावैंगे तब तो यह नहीं समझेगी क्योंकि एक तो स्त्री, दूसरे बडी चपल, तीसरे विषयोंके सम्मुख यह दौडनेवाली है । इसलिये इसको स्थूल दृष्टांतों करके समझाना चाहिये । क्योंकि जैसा बुद्धिवाला पुरुष हो उसको उसी रीतिसे समझाना ठीक है । फिर महात्माका स्वभाव भी उपकारी होता है और परोपकारके लिये महात्माओंका शरीर उत्पन्न होता है और मूर्खोंको सच्चे रस्तेपर लगानाही भारी उपकार है । इसलिये इस मूर्खाको अब हम स्थूल दृष्टान्तोंको देकर समझाते हैं । विवेकाश्रम कहतेहैं, हे चित्तवृत्ते ! जैसे विष्ठाका कृमि मिश्रीके स्वादको नहीं जानता है, नीमका कीट ऊखके स्वादको नहीं जानता है, मद्यपान करनेवाला अमृतके स्वादको नहीं जानता है, असत्यवादी सत्य भाषणके फलको नहीं जानता है, व्यभिचारिणी स्त्री पतिव्रताके प्रभावको नहीं जानती है तैसे तू भी हे चित्तवृत्ते ! आत्मानंदके स्वादको नहीं जानतीहै । जबतक तू विषयानंदकी तरफ दौडती है तबतक तेरेको आत्मानन्दका कणमात्रभी नहीं मिला है, जिस

कालमें तिसका एक लवमात्र भी तुझको प्राप्त होजावेगा फिर कभी तू विषयानन्दकी इच्छाको नहीं करैगी। हे चित्तवृत्ते! इसमें तुमको हम एक दृष्टान्तको सुनाते हैं।

एक चींटी निमकके पर्वतपर रहती थी, दूसरी एक चींटी मिश्रीके पर्वत पर रहती थी, एक दिन वह निमकके पर्वतवाली चींटी मिश्रीके पर्वतवाली चींटीके पास गई और तिसको हृष्टपुष्ट प्रसन्नमुख देखकर पूँछने लगी, बहिन! तुम्हारा मुख बडा प्रसन्न दिखता है। और तुम्हारा शरीर भी बडा हृष्ट पुष्ट तैयार है, तुमको ऐसा कौनसा पदार्थ खानेको मिलता है जिसके सेवन करनेसे तुम सदैवकाल आनंदित रहती हो। उसने कहा मैं मिश्रीके पर्वत पर रहती हूँ मनमानी मिश्रीको खाती हूँ, तिसीके खानेसे मेरा मुख प्रसन्न रहता है और शरीर भी मेरा रोगसे रहित तैयार रहता है। तब तिस निमकके पर्वतवाली चींटीने तिससे कहा—हमको भी तू मिश्रीके पर्वतको बतादे जो मैं भी तिसको खाकर तुम्हारी तरह होजाऊं। मैंने तो कभी भी मिश्रीको नहीं खाया है और न कभी मैंने तिसका नामही सुना है आज तुम्हारे मुखसे मिश्रीके महत्त्वको श्रवण करके हमारा भी मन तिसके खानेके लिये चला गया है, इस वास्ते अब तू जल्दी हमको मिश्रीके पर्वतको बतादे। तिस चींटीने उसको भी मिश्रीके पर्वतको बतादिया वह तिस पर्वतपर घूमकर आकरके तिस चींटीसे कहने लगी बहन! यह निमकका पर्वत है इसमें मिश्रीका तो कहीं नाम निशान भी नहीं है। तब तिस मिश्रीके पर्वत वाली चींटीने अपने मनमें विचार किया क्या कारण है, जो कि मिश्रीके पर्वत पर घूमनेसेभी इसको मिश्री नहीं मिली। फिर जब कि तिसके मुखकी तरफ तिस चींटीने देखा तब तिसके मुखमें एक नमककी डली छोटीसी पडी थी तिसको देखकर उसने जान लिया यही मिश्रीके न मिलनेका कारण है। उस चींटीने निमककी डलीवाली चींटीसे कहा बहन! तेरे मुखमें तो निमककी डली पडी है। जबतक तू इस डलीका त्याग नहीं करैगी तबतक तेरेको मिश्री नहीं मिलेगी। उसने तुरन्तही निमककी डलीको फेंक दिया और फिर तिस मिश्रीके पर्वत पर हैगई तब फिर मिश्रीके मिलनेमें कौन देरी थी? जाते ही तिसको

मिश्री मिल गई। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टांतमें इसको सुनो। अंतःकरणरूपी मिश्रीका पर्वत है, क्योंकि तिसके भीतर आत्मारूपी मिश्री भरी है। विषयानन्दरूपी नमककी डलीको तू मुखसे पकडकर तिस मिश्रीके पर्वतपर रात्रिदिन फिरती रहती है। इसीसे तेरेको वह आत्मानन्द-रूपी मिश्री नहीं मिलती है। जब तूभी तिस नमकवाली चींटीकी तरह अपने मुखसे तिस विषयानन्दरूपी डलीको फेंककर मिश्रीके पर्वतपर मिश्रीकी तला-शमें फिरैगी तब तेरेको भी तुरन्त आत्मानन्दरूपी मिश्री मिल जावैगी। हे चित्तवृत्ते ! जितने कि संसारमें स्त्री, पुत्र धनादिक विषय हैं ये सब देखने मात्र करके सुन्दर प्रतीत होते हैं। वास्तवमें यह सब सुन्दर नहीं हैं क्योंकि जिनको प्राप्त हैं वहभी सब दुःखी हैं और जिनको नहीं प्राप्त हैं, वहभी सब दुःखी हैं, विचार करनेसे तो इनमें सुखका लेशमात्र भी नहीं है। यदि इनमें सुख होता तब विवेकी पुरुष इनका त्याग कभी भी न करते और बहुतसे राजा महाराजोंनेभी इनका त्याग किया है, इसीसे जानाजाता है, स्त्री आदिक सब विषय दुःखरूप हैं इसी वार्त्ताको हे चित्तवृत्ते ! हम तुमको अनेक दृष्टांतों करके दिखाते हैं ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक नगरमें एक बनियां बडा गरीब रहता था एक तिसकी स्त्री थी और एकही तिसका लडका था। जब कि वह लडका पांच बरसका हुआ तब बनियां और तिसकी स्त्री दोनों मरगये तब वह लडका अनाथ हो-गया कोईभी तिसकी सहायता करनेवाला जब न रहा तब एक महात्मा दया करके तिस लडकेको ले गये और अपना चेला बनाकर तिसकी पालना करने लगे और तिसको विद्यादि गुणों करके सुशिक्षित करने लगे। जब कि, लडका पढ लिखकर सुशिक्षित होगया और बीस बरसकी तिसकी आयुभी होगई तब एकदिन लडकेने अपने गुरुसे कहा महाराज ! मेरेको तीर्थयात्रा करनेके लिये आज्ञा दीजिये। गुरुने प्रसन्न होकर कहा जावो, तुम तीर्थ कर आवो। जब कि, वह तीर्थयात्राको चला तब एक दिन रास्तेमें वह जाता था कि, एक बरात तिसको मिली। उसको देखकर तिस लडकेने पूछा यह क्या है ? क्योंकि उसको बरात और विवाहके संस्कार नहीं थे, लोकोंने कहा यह बरात

है। उसने कहा बरात क्या होती है ? और ये पालकीमें बैठा हुआ सुन्दर वस्त्रोंको पहरे हुए कौन है ? लोकोंने कहा यह दूल्ह है इसकी शादी एक लडकीके साथ कीजावेगी । इस दूल्हको लेकर ये सब लोग लडकीवालेके घरमें जायँगे वहाँपर गाना बजाना नाच रङ्ग होगा फिर दूल्हका तिस लडकीके साथ पाणिग्रहण होगा । फिर लडकीको लेकर अपने घरमें आकर दूल्ह और दुल्हन दोनों रात्रिमें एक पलंगपर शयन करेंगे और विषयानन्दको भोगेंगे । उन लोकोंसे सुनकर उस साधुके अंतःकरणमें भी विवाह करनेके और स्त्रीके साथ सोनेके सब संस्कार बैठ गये, जब कि एक ग्रामके समीप पहुँचा तब वहाँपर एक बडा सुन्दर पक्का कूप था उस कूपपर उसने आसन लगा दिया । जब रात्रि पडी तब कूपके किनारे पर वह सोगया नींदमें उसको विवाहके संस्कार सब उद्भूत होगये तब उसने स्वप्नमें देखा कि, मेरा विवाह हुआ है और स्त्री घरमें आई है हम उसके साथ एक पलंगपर सोये हैं, जब कि सोये हुए थोडीसी देर बीती तब स्त्रीने कहा थोडासा पीछे हटो ज्योंही वह पीछेको हटा त्योंही तडाकसे कूवेमें गिरपडा । तिसके गिरनेकी आवाजको सुनकर इधर उधरसे लोगोंने जमा होकर तिसको कूवेमेंसे निकाला और तिससे पूँछा तुमको किसने कूवेमें गिराया है ? उसने कहा हमको स्वप्नकी स्त्रीने कूवेमें गिरा दिया है । बडे आश्चर्य्यकी वार्त्ता है जो कि स्वप्नकी मिथ्या स्त्रीके साथ सोया वह तो कूवेमें गिरा जो कि जाग्रत्की स्त्रीके साथ सोते हैं वह तो अवश्यही महान् नरकरूपी कूवेमें गिरते होंगे इसमें संदेह नहीं है । हे चित्तवृत्ते ! स्त्रीके सम्बन्धसे बडे २ देवतोंकोभी फजीती हुई है । इसलिये स्त्रीही संसाररूपी बन्धनका कारण है. चित्तवृत्ति कहती है–हे भ्राता ! स्त्रीके संगसे जिस २ देवता और ऋषि तथा मनुष्यकी फजीती हुई है तिस २ देवता और ऋषि तथा मनुष्योंकी कथाओंकोभी संक्षेपसे मेरे प्रति कहो ॥ २ ॥

विवेकाश्रम कहते हैं हे चित्तवृत्ते ! एक समयमें ब्रह्माजीने अपने अंगोंसे अहल्या नामवाली कन्याको उत्पन्न किया और सब देवता तथा ऋषियोंके सन्मुख गौतमजीके साथ तिसका विवाह कर दिया । तिस सुन्दर रूपवाली और श्रेष्ठ अंगोंवाली अहल्याको देखकर इन्द्र मोहित होगया । उसी कालसे

इन्द्रके मनमें यह संकल्प हुआ कि किसी प्रकारसे इसके साथ भोग करना चाहिये। इन्द्र इसी फिकरमें रहने लगा जब कि इन्द्रको अहल्या पर घात लगाये कुछ काल बीत गया तब एक दिन गौतमजी पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेको गये पीछेसे अहल्या उनके पूजाके वर्तनोंको साफ करने लगी। इतनेमें गौतमका रूप धारण करके इन्द्र गौतमके गृहमें घुसा, अहल्या उसको पति जानकर खडी होगई तब इन्द्रने कहा हे प्रिये! आज मैं बड़ा कामातुर हुआ हूँ तुम जल्दी मेरे पास आवो। अहल्याने कहा हे स्वामिन्! यह तो आपकी पूजाका समय है भोगका समय नहीं है आप पूजा करिये मैंने पूजाकी सब सामग्री तैयार करदी है। इन्द्रने कहा हे प्रिये! आज मैंने मानसी पूजा करली है तुम जल्दीसे हमारे पास आवो हमको काम जलाये देता है। इतना कहकर इन्द्रने अहल्याको पकडकर अपनी मनमानी प्रसन्नता करली। जब कि इन्द्र अहल्यासे भोग कर चुका इतनेमें गौतमजी आगये तब इन्द्र बिलारका रूप धारण करके भागने लगा। गौतमजीने कहा तू कौन है? जो बिलारके रूपको धारण करके भागा जाता है गौतमजीके क्रोधसे इन्द्रको इतना भय हुआ जो तुरन्तही बिलारके रूपको त्याग करके अपने इन्द्ररूपसे कांपता हुआ हाथ जोडकर तिनके सम्मुख खडा होगया। इन्द्रको देखतेही गौतमने शाप दिया हे दुष्ट! जिस एक भगके लिये यहांपर पाप कर्म करनेके लिये आया था तेरे शरीरमें एक हजार भग होजायँगे। और अहल्याको भी शाप दिया मांससे रहित पाषाणवत् तेरा शरीर होजायगा। हे चित्तवृत्ते! स्त्रीके संगसे ऐसी इन्द्रकी फजीती हुई ॥ ३ ॥

अब ब्रह्माकी फजीतीको तुम्हारे प्रति सुनाते हैं—पद्मपुराण स्वर्गखण्ड अ० ६ में यह कथा है, हे चित्तवृत्ते! शांतनु नाम करके एक ऋषि था, तिसकी स्त्रीका नाम। अमोघा था, एक दिन ब्रह्माजी किसी कार्यके लिये तिस ऋषिके घरमें गये। आगे वह ऋषि घरमें न था तिसकी स्त्री घरमें थी, उसने पाद्य अर्घादिकों करके ब्रह्माजीका बडा सत्कार किया और एक आसन उनके बैठनेको दिया जब कि ब्रह्माजी आसनपर बैठे तब तिस पतिव्रताने ब्रह्माजीसे कहा भगवन्!

आपका आना किस निमित्तको लेकरके हुआ है? ब्रह्माजीने कहा ऋषिको मिलनेके लिये आये थे, उसने कहा ऋषि तो किसी कार्य्यके लिये कहीं गये हैं । ब्रह्माजी तिसके सुन्दर रूपको देखकर मोहित होगये । कामदेवने ब्रह्माजीको ऐसा व्याकुल किया जो ब्रह्माजीका वीर्य उसी आसनपर निकल गया तब ब्रह्माजी लज्जित होकर अपने स्थानको चले आये । उधरसे जब ऋषि घरमें आये तब तिस वीर्यको देखकर स्त्रीसे पूँछा वह क्या है ? स्त्रीने ब्रह्माजीका सब हाल कह सुनाया ऋषिने कहा वह कामका महत्त्वहै जिसने ब्रह्माजीकोभी मोहित कर लिया है । हे चित्तवृत्ते ! स्त्रीका संग ऐसा ही बुरा है जिसके दर्शनसे देवता भी धैर्यको नहीं धर सकते हैं तब इतर जीवोंकी क्या कथा है ? इसी वास्ते विवेकी पुरुष इसके समीप भी स्थित नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें महादेव और विष्णुकी कथायें भी लिखी हैं उन कथाओंको भी तुम सुनो ॥

एक कालमें महादेवजी अपने स्थानमें समाधिमें स्थित थे और मर्त्यलोकमें मनुष्योंकी बहुतसी स्त्रियें सुन्दररूप और युवावस्थावाली वनमें क्रीडा कर रहीं थीं, उनके रूप और यौवनको देखकर महादेवजी काम करके बडे व्याकुल होगये और महादेवजीका मन उनके साथ भोग विलास करनेको तैयार होगया तब महादेवजीने अपने मन्त्रके बलसे उन सब स्त्रियोंको आकाशमें खैंच लिया और आप भी आकाशमें स्थिर होकर उनके साथ भोग विलास करने लगे और बहुत कालतक उनको आलिंगन करते रहे और विषयानन्दमें मग्न होगये । इधर पार्वतीकी जो समाधि खुली तब तिनने देखा कि महादेवजी अपने आसनपर स्थित नहीं हैं और आकाशमें मनुष्योंकी स्त्रियोंके साथ भोग विलास कर रहे हैं । तब पार्वतीजीको बडा क्रोध हुआ और आकाशमें जाकर तिनने उन सब स्त्रियोंको भूमिपर गिरा दिया और महादेवजीको लाकर समाधिमें फिर स्थिर किया । हे चित्तवृत्ते ! सुन्दर स्त्रियोंको देखकर महादेवजीभी भूलगये और उनकी समाधिमें भी विघ्न हुआ तब इतर तुच्छ बुद्धिवाले जीवोंकी कौन कथा है ॥ ५ ॥

एक कालमें देवता और दैत्योंका युद्ध होने लगा । दैत्योंका राजा जलंधर था, तिसकी स्त्रीका नाम वृन्दा था, वह बडी पतिव्रता थी, तिसके पातिव्रत्यके प्रभावसे वह जलंधर दैत्य देवतोंसे जीता नहीं जाता था, तब देवतोंने विष्णुसे जलंधरके जीतनेके लिये कई उपाय किये । विष्णु जलंधरका रूप धारण करके तिसकी स्त्रीके पास गये और उससे भोग किया । जब कि, भोग करके पतिव्रतधर्म नष्ट करचुके तब वृन्दाको माल्रम होगया कि यह विष्णु हैं हमारे पति नहीं हैं, तब तिसने विष्णुको शाप देदिया, जावो तुम पाषाण होजावो । तिसके शापसे विष्णुको पाषाण होना पडा । हे चित्तवृत्ते ! यह स्त्रीरूपी विषय मुक्तिमार्गका विरोधी है इसीलिये विवेकी पुरुष इससे दूर भागते हैं ॥ ६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें एक वृद्ध ब्राह्मणकी कथा लिखी है, जिसका स्त्रीके दर्शनसे मृत्यु ही होगया था, तिसकी कथाको भी तुम सुनो ।

गंगाजीके किनारेपर एक बडा तपस्वी वृद्ध ब्राह्मण रहता था और लोकोंको सदैवकाल धर्मकाही उपदेश करता था और विप्रोंमें बडा उत्तम अपने नित्य नैमित्तिक कर्ममें भी बडा तत्पर था और अकेलाही एक मंदिरमें रहता था । एक दिन वह अपने मंदिरके द्वारपर बैठा हुवा था कि इतनेमें एक स्त्री बडी रूपवती युवावस्थावाली अपने पतिके गृहको जाती हुई तिस मंदिरके आगेसे निकली । तिस स्त्रीके रूपको देखकर वह ब्राह्मण मोहित होगया और काम-करके बडा पीडित हुआ । वह स्त्री अपने गृहके भीतर चली गई तब वह देरतक उसके द्वारकी तरफ देखता रहा, जो फिर भीतरसे बाहरको निकले तब मैं उससे कुछ बातचीत करूं, जब कि वह फिर बाहरको न निकली तब ब्राह्मण देवता तिसके द्वारपर जाकर पुकारने लगे, हे प्रिये ! जलदी किवाडोंको खोलो, मैं तुम्हारा पति हूँ । तिसके शब्दको सुनकर तिस स्त्रीने किवाडोंको खोल दिया और देखा तो एक वृद्ध ब्राह्मण खडे हैं । स्त्रीने कहा तुम कौन हो? और क्यों हमारे द्वारपर आये हो ? उस ब्राह्मणने कहा मैं ब्राह्मण हूँ, तुम्हारे सुन्दर रूपको देखकर हमारा मन काम करके व्याकुल होगया है, हम भोग करनेकी इच्छा करके तुम्हारे द्वारपर आये हैं, तुम हमसे भोग करो । तिस

स्त्रीने कहा मैं पतिव्रता हूँ, फिर हमसे ऐसा शब्द मत कहना । ब्राह्मणने कहा मेरे पास बहुतसा द्रव्य है । वह सब द्रव्य हम तुमको देदेवेंगे, तुम हमसे सम्बंध करो, हम काम करके वडे पीडित होरहे हैं, तुम्हारे आगे हाथ जोडते हैं, तुम्हारे पांव भी पडते हैं, स्त्रीने कहा तुम हमारे धर्मके सम्बन्धसे पिता लगते हो, हमारे साथ भोग करनेका संकल्प मत करो । जब कि किसी रीतिसे भी स्त्रीने तिस ब्राह्मणका कहा नहीं माना तब वह जबरदस्ती भीतर जानेको तैयार हुआ, और प्रथम उसने अपना शिर द्वारके भीतर जब किया तब स्त्रीने जोरसे दोनों किवाडोंको बन्द कर दिया । उन दोनों किवाडोंके लगनेसे तिसका शिर कटगया और वह मरगया । लोगोंने तिस स्त्रीसे तिस ब्राह्मणके मरनेका समाचार पूंछा, तब तिस स्त्रीने सब कथा सुनाई । लोगोंने कहा यह कामदेवका महत्त्व है । तिसके मुरदेको लेजाकर लोगोंने फूक दिया । हे चित्तवृत्ते ! यह स्त्रीरूपी विषय वडा बली है, तुरन्त पुरुषोंके चित्तको व्याकुल करदेता है, जब कि वृद्धावस्थावाले विचारशील षट्कार्मियोंकी इसके संगसे ऐसी बुरी दशा होती है, तब युवावस्थावालोंकी कौन गिनती है ॥ ७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! सुन्दर रूपवती अप्सराको देखकर विश्वामित्र तप करना भूल गये थे और उसीके साथ भोग विलासमें मग्न होगये थे । पराशरजी मल्लाहकी कन्याके रूपको देखकर मोहित होगये थे । नदीका रेता और दिनकी रात्रि तो सब उन्होंने कर दिया था, परन्तु कामको नहीं रोक सके थे । इसीपर कहा भी है—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुंजते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरे ॥ १ ॥

विश्वामित्र और पराशरसे लेकर जो कि मुनि पत्तोंको भक्षण करते थे वह भी सुन्दर कमलके तुल्य स्त्रीके मुखको देखकर शीघ्रही मोहको प्राप्त होगये । शालि, दधि, घृत करके संयुक्त भोजनको जो पुरुष खाते हैं उनके इन्द्रिय

यदि अपने वशीभूत होजाय तब तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तरने लग जायगा ॥ १ ॥

तात्पर्य यह है, जैसे विन्ध्याचल पर्वतका तैरना असंभव है, तैसे इंद्रियोंका रोकना भी असंभव है। उसीके इंद्रिय रुके रहते हैं जो कि स्त्रीका संसर्ग नहीं करता है, संसर्गके होनेपर रुकना कठिन है। आत्मपुराणमें कामकी प्रबलता दिखाई है:—

कामक्रोधौ महाशत्रू देहिनां सहजावुभौ।
तौ विहाय परं शत्रुं यो जयेत्स तु मंदधीः ॥ १ ॥

जीवोंके काम और क्रोध स्वाभाविक ही बडेभारी शत्रु हैं, तिनको छोडकर जो दूसरे शत्रुओंको जीतता है वह मन्दबुद्धि है ॥ १ ॥

पितापुत्रौ महावीर्यौ कामक्रोधौ दुरासदौ ॥
विजित्य सकलं विश्वं वर्त्तेते जयकाशिनौ ॥ २ ॥

काम और क्रोध ये पिता और पुत्र हैं, और बडे बली हैं, सारे विश्वको जीत करके जयशाली होकर संसारमें दोनों विराजमान हैं ॥ २ ॥

कामेन विजितो ब्रह्मा कामेन विजितो हरिः ॥
कामेन विजितः शम्भुः शक्रः कामेन निर्जितः ॥ ३ ॥

ब्रह्माको कामने जय करलिया, विष्णुको कामने जय कर लिया, महादेवको कामने जय कर लिया, इन्द्रको कामने जय कर लिया ॥ ३ ॥

संसारमें कामने बिना विवेकी पुरुषोंको सबको जीत लिया है। हे चित्त-वृत्ते! वही पुरुष संसारमें आत्मानन्दको प्राप्त होता है जो कि कामको अपने वशीभूत करलेता है। हे चित्तवृत्ते! स्त्रीके संसर्गसे जिन पुरुषोंकी दुर्गति हुई है उनके और दो एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं ॥ ८ ॥

एक राजाने किसी विलायतपर चढाई की, तिस विलायतको जीतकर राजा तिसी देशमें कुछ कालतक रहगये, पीछे राजाकी रानी राजाके बिना बडी काम करके व्याकुल होगई, तब वह अपने मंदिरकी खिडकीमेंसे इधर उधर देखने लगी, एक साहूकारका लडका बडा सुन्दर अपने मकानपर खडा था, उसको देखकर रानीका मन मोहित होगया क्योंकि, एक तो वह

युवा अवस्थावाला था, दूसरे उसका रूप भी अति सुन्दर था, रानीने अपन लौंडीको उसको बुलानेके लिये भेजा, लौंडीने उससे जाकर कहा-रानीसा हिबा आपको बुलाती हैं, रानीको कुछ जवाहिरात खरीदनी है, वह लडक सुन्दर वस्त्र और भूषणोंको पहनकर रानीके पास गया और रानी तिससे बातचीत प्रेमसे करने लगीं, इतनेमें लौंडीने आकर रानीसे कहा राजा साहि बाहर आगये हैं अभी थोडी देरमें भीतर आवेंगे, रानीसे तिस लडकेने कह हमको जल्दी छिपावो, नहीं तो हम मारे जायँगे। रानीने तिसको पाखानेके नीचेके नलमें अन्धेरेमें खडा करदिया, थोडी देरमें राजा भीतर आगये औ रानीसे उन्होंने कहा हमारे पेटमें कुछ कसर होगई है हम पाखाने जायँगे लौंडी पानी ले आई राजा साहिब पाखाने गये, राजाने जब पाखाना फिर तब वह सब मल तिस लडकेके शिरपर और कपडोंपर गिरा, सब कपडे तिसके मैलेसे भर गये, जब राजा पाखाना होकर चले गये तब रानीने भी तिसको निकाल दिया। उस लडकेको बडी घृणा हुई और नगरके बाहर नदीपर जाके सब कपडोंको धोकर साफ करके घरमें जाकर दूसरे कपडे बदल कर वह अपने काममें लगा। दूसरे दिन फिर रानीने लौंडीको तिसके बुलानेके लिये भेजा और लौंडीने जाकर तिससे कहा रानीसाहिबा आपको बुलाती हैं। तिस लडकेने कहा एक दिन मैं रानीके पास गया और उससे केवल बातचीत ही की थी तिसका फल यह हुआ जो दो घंटा मेरेको पाखानेकी मोरीमें खडा होना पडा और अपने शिरपर दूसरेको हगाना पडा, जो लोग परस्त्रीके साथ भोग विलास करते हैं न मालूम उनको कितने कालतक विष्ठाके नलमें खडा होना पडता होगा और कितने लोकोंको शिरपर हगाना पडता होगा, मेरेको तो वह दो घण्टोंका नरकभोग नहीं भुलाता है, इसलिये मैं तो फिर कभी भी रानीके पास नहीं जाऊँगा, ऐसा जवाब लेकर वह लौंडी लौट गई। हे चित्तवृत्ते ! परस्त्रीके संगसे तो और अधिक क्लेश लोकोंको भोगने पडते हैं। हे चित्तवृत्ते ! पराई स्त्री तो क्लेशोंका हेतु है इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु अपनी स्त्री भी अपने ही सुखके लिये भर्तासे प्रेम करती है, भर्ताके सुखके लिये वह प्रेम नहीं

करती है, यदि भर्ताके सुखके लिये स्त्री प्रेम करती है तब रोगी, ऋणी, नपुंसक, निर्धन भर्तासे भी प्रेम करै । ऐसा तो संसारमें कहीं भी नहीं देखते हैं । और आत्मपुराणमें ऐसा लिखा भी है—

दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि ॥
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वच्च कृमिदूषितम् ॥ १ ॥

यदि स्त्री काम करके आतुर भी हो तब भी अपने दरिद्री भर्ताको स्पर्श करनेकी इच्छा नहीं करती है, जैसे कृमियों करके दूषित मुरदेको कोई स्पर्शकी इच्छा नहीं करता है ॥ १ ॥

ब्राह्मादिभ्यो विवाहेभ्यः प्राप्ता नारी पतिव्रता ॥
भर्तुर्दरिद्रस्य मृतिं वांछति क्षुधयार्दिता ॥ २ ॥

ब्राह्मादिक जो धर्मशास्त्रमें विवाह लिखे हैं उन विवाहोंकरके यदि पतिव्रता स्त्री भी किसीको प्राप्त हुई हो वह क्षुधा करके पीडित हुई दरिद्री भर्ताके मरनेकी ही इच्छा करती है ॥ २ ॥ संसारमें स्त्री आदिक सब अपने ही सुखके लिये एक दूसरेसे प्रीतिको करते हैं इसीमें तुमको हम एक और दृष्टांत सुनाते हैं ॥ ९ ॥

एक साहूकारका लडका नित्यही सत्संगके लिये एक महात्माके पास जाता था, तिसके माता पिताको यह शोच हुआ कि, हमारा लडका वैराग्यकी बातोंको सुनकर कहीं भाग न जाय इसलिये जल्दी इसकी शादी कर देनी चाहिये, ऐसा विचार करके उन्होंने एक सुन्दर रूपवती कन्याके साथ तिसका विवाह करदिया । तब भी लडका नित्यही सत्संगके लिये उन महात्माके पास अपने वक्तपर बराबरही जायाकरे । विवाह होजानेपर भी वह नहीं हटा, तब तिसके माता पिताने तिसकी स्त्रीसे कहा तू ऐसी इसकी सेवा कर जो लडका हमारा महात्माके पास जानेसे हट जाय । वह सेवा करने लगी और लडकेको तिसने अपने वशीभूत करलिया, तब लडका धीरे धीरे जानेसे हटने लगा । पहले तो नित्य जाता था फिर दूसरे तीसरे दिन जाने लगा । एक दिन स्त्रीने कहा तुम जब कि, रात्रिको चलेजाते हो, तब

मैं अकेली रह जाती हूँ और स्त्रीका अकेला रहना अच्छा नहीं है और मेरेव अकेले रहते डर भी लगती है, स्त्रीकी वार्ताको सुनकर लडकेने बिलकु वहांपर जाना छोड दिया । जब कि, बहुत दिन बीत गये तब एक दि महात्मा कहीं जाते थे, लडका उनको रास्तेमें मिलगया, उन्होंने लडकेसे आनेका सबब पूछा तब लडकेने कहा महाराज ! स्त्रीने सेवा करके मेरेव अपने वशमें करलिया है, वह मेरेको बडा सुख देती है और मेरे विना रात्रिव दो घण्टातक भी वह अकेली नहीं रहसक्ती है । वह कहती है मैं तुम्ह वियोगको एक क्षणमात्र भी नहीं सहसक्ती हूँ, और मैं भी जानगया हूँ ज यह हमारे सुखके लिये सब बातें करती है, इसलिये मेरा अब आना छूट गय है । महात्माने कहा वह अपने सुखके लिये तुमसे प्रीति करती है तुम्हारे सुखवे लिये वह प्रीतिको नहीं करती है, यदि तुमको हमारी बातपर विश्वास न ह तब तुम एक दिन उसकी परीक्षा करो । महात्माने श्वासोंके रोकनेकी एव युक्ति तिस लडकेको बताकर कहा, एक दिन तुम स्त्रीसे कहना आज हम तस और चूरी दोनों खायँगे । जब कि, भोजन तैयार होजाय तब तुम हमा बताई हुई युक्तिसे श्वासोंको रोककरके लम्बे पडजाना । वह जानेगी यह त मरगया है तब तुमको पूरी पूरी परीक्षा तिसके प्रेमकी होजायगी । लडके घरमें आकर स्त्रीसे कहा कल हम तस्मै खायँगे तस्मै बनाना और थोडीस चूरीभी बनाना, स्त्रीने कहा बहुत अच्छा । दूसरे दिन सवेरे उठकर स्त्रीने तस बनाई और चूरी भी बनाई । जब रसोई तैयार होगई तब लडका जहांपर बैठ था वहांपर दो थंभ आपसमें सटेहुए छतके नीचे लगे थे । लडका उन दोनों थम्भोंके बीचमें पांवको फँसाकर स्त्रीसे कहने लगा हमारे पेटमें कुछ दर्द है, ऐसा कहकर उसने श्वासोंको रोक लिया और लम्बा पड गया । स्त्रीने जब कि, चौकासे उठकरके तिसको देखा तब तिसके श्वास बन्द थे । स्त्रीने जाना यह तो मर गया है यदि मैं अभीसे रोना पीटना शुरू करती हूँ तब तो मैं दिन रात भूखी मरूंगी और तस्मै भी खराब होजायगी, इसवास्ते तस्मैको खा लेऊं और चूरीको ऊपर छीकके रख छोडूं । ऐसा विचार करके स्त्रीने तस्मैको खा लिया और चूरीको धरकर रोना पीटना शुरू किया । इतनेमें अडोस

पडोसके लोक सब आगये और उन्होंने पूँछा कैसे मर गया ? तब स्त्रीने कहा इसके पेटमें दर्द पडी थी उसीसे मर गया है। लोकोंने कहा अब देर मत करो जल्दी इसको श्मशानमें ले चलो। जब कि, तिसको उठाने लगे तब तिसका एक पांव दोनों थम्भोंके बीचमें फँसा हुआ न निकला, तब लोकोंने कहा एक थंभको काटकर पांवको निकाल लीजिये। स्त्रीने कहा ऐसा मत करो, थम्भ कटजायगा तब कौन फिर मेरेको बनवा देगा ? इसलिये थम्भको मत काटिये, पांवकोही काट दीजिये, क्योंकि पांवको तो जलाना ही है। जब कि, पांवको काटने लगे तुरन्त वह उठकर बैठगया और कहने लगा हमारे पेटका दर्द अब जातारहा। लोक सब अपने अपने घरोंको चले गये। लडकेने सब हाल आकर महात्माको सुनाया। महात्माने कहा हम जो कहते थे वही सत्य हुआ ? अब तो तेरेको इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं ? लडकेने कहा महाराज ! अब तो मेरेको कुछभी सन्देह नहीं है। आपका कहना ठीक है। अपनेही सुखके लिये स्त्री पतिसे प्रेम करती है पतिके सुखके लिये स्त्री पतिसे प्रेमको नहीं करती है। हे चित्तवृत्ते ! उसी दिनसे उस लडकेने स्त्रीका त्याग करदिया और परम वैराग्यको प्राप्त होकर महात्माके पासही रहने लग गया ॥ ९ ॥

इसी वार्ताको याज्ञवल्क्यजीने भी मैत्रेयीके प्रति वृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है। जिसकालमें जीवन्मुक्तिके सुखके लिये याज्ञवल्क्यजी गृहस्थाश्रमको छोड कर संन्यासाश्रमको जाने लगे तब तिस कालमें उन्होंने अपनी दोनों भार्याओंसे कहा कि, हम अब इस आश्रमको छोडना चाहते हैं, जितना कि हमारे पास द्रव्य है उसको तुम दोनों आपसमें आधा आधा बांट लेवो, उन दोनों भार्याओंमेंसे एकका नाम कात्यायनी था, दूसरीका नाम मैत्रेयी था। कात्यायनीने तो अपना धनका हिस्सा लेलिया, मैत्रेयीने कहा भगवन्! इस धनको लेकर मैं संसारसे मुक्त होजाऊंगी ? याज्ञवल्क्यने कहा जैसे और धनवान्, जीवनको व्यतीत करते हैं तैसे तू भी जीवनको व्यतीत करेगी। धनकरके तो मोक्षकी संभावनामात्र भी नहीं होती है. तब मैत्रेयीने कहा जिस वस्तुके पानेसे मैं मुक्त होजाऊं उसको मेरे प्रति दीजिये। मैं धनकी इच्छा नहीं करती हूं। याज्ञवल्क्यजी मैत्रेयीके प्रति उपदेश करते हैं।

न वारे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति ।
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ॥ १ ॥

अरे मैत्रेयि ! पतिकी कामना करके पति स्त्रीको प्यारा नहीं होता है, किन्तु अपनी कामनाके लिये पति स्त्रीको प्यारा होता है । यदि पतिकी कामना करके स्त्रीको पति प्यारा हो तब नपुंसक, रोगी, निर्धन होनेसे भी पति स्त्रीको प्यारा होना चाहिये, ऐसा तो नहीं देखते हैं; इसलिये पतिकी कामनाके लिये पति प्यारा नहीं होता है ॥ १ ॥

न वारे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति ।
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥ २ ॥

अरे मैत्रेयि ! जायाकी कामनाके लिये पतिको जाया प्यारी नहीं होती है। किंतु अपनी कामनाके लिये जाया पतिको प्यारी होती है । यदि जायाकी कामनाके लिये पतिका जायामें प्रेम हो तब लडकी कुपित व्यभिचारिणी रोगिणीमें भी प्रेम हो, ऐसा तो नहीं है । इसीसे सिद्ध होता है कि अपने सुखके लिये पतिका जायामें प्रेम होता है ॥ २ ॥

न वारे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवंत्या-
त्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवंति ॥ ३ ॥

अरे मैत्रेयि ! पुत्रोंकी कामनाके लिये माता पिताका पुत्रोंमें प्रेम नहीं होता है, किंतु अपने सुखके लिये पुत्रोंमें प्रेम होता है। यदि पुत्रकी कामनाके लिये प्रेम हो तब कुपात्र पुत्रमें भी प्रेम होना चाहिये। ऐसा तो नहीं देखते हैं। इस लिये पुत्रकी कामनाके लिये माता पिताका पुत्रमें प्रेम नहीं होता ॥ ३ ॥ हे मैत्रेयि ! संसारके जिस जिस पदार्थमें पुरुषोंका प्रेम होता है वह अपने आत्माके सुखके लिये होता है, इसीसे सिद्ध होता है। सबसे अतिप्रिय अपना आत्मा ही है और सुखरूप भी आत्माही है, आत्माके सुखके लिये पुरुष स्त्री पुत्रादिक विषयोंमें प्रेम करता है, वास्तवसे उनमें सुख नहीं है, वह दुःखरूप है, सुखरूप आत्मा ही हैं। इसप्रकार याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको उपदेश करके तिसको भी जीवन्मुक्त कर दिया ॥ १० ॥

हे चित्तवृत्ते ! शुकदेवजीने भी स्त्रीरूपी विषयकी निंदा की है, यह कथा देवीभागवतमें आती है । जिस कालमें व्यास भगवान्ने शुकदेवजीको विवाह करनेके लिये कहा है उस कालमें शुकदेवजीने स्त्रीके संगसे जो दोष होते हैं उनको दिखाया है । उनको भी सुनो—

कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियंत्रितः ॥
पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥ १ ॥

लोह काष्ठादिकी बेडी जिसके पांवमें पडजातीहै उससे कदाचित् वह पुरुष किसी कालमें छूट भी सक्ता है, परन्तु स्त्री पुत्रादिकोंके मोहरूपी बेडीसे पुरुष कभी भी छूट नहीं सक्ता है ॥ १ ॥

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये ॥
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्मा श्वाश्वसूकरैः ॥ २ ॥

जो पुरुष वेद और शास्त्रोंका अध्ययन करके फिर भी स्त्रीपुत्रादिरूप संसारमें रागवान् हैं, उनसे बढकर और कोई भी मूर्ख नहीं है क्योंकि स्त्रीपुत्रादिरूप संसारमें रागवान् तो कूकर घोडा सूकर आदिक भी हैं तिनको वेद शास्त्रका क्या फल हुआ किन्तु कुछ भी नहीं ॥ २ ॥

गृह्णाति पुरुषं यस्माद् गृहं तेन प्रकीर्तितम् ॥
क्व सुखं बंधनागारे तेन भीतोस्म्यहं पितः ॥ ३ ॥

शुकदेवजी कहते हैं, हे पिता ! जिस हेतुसे गृहस्थाश्रम पुरुषको ग्रहण करलेता है इसी हेतुसे इसका नाम गृह रक्खा है इस गृहस्थाश्रमरूपी कैदखानेमें सुख कहां है ? जिस हेतुसे इसमें सुख नहीं है इसीसे मैं भयभीत हुआ हूँ ॥ ३ ॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च ॥
बध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः ॥ ४ ॥

दुर्लभ मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर और वेदशास्त्रका अध्ययन करके फिर भी यदि संसारमें बंधायमान हो जाय तब फिर संसार बन्धनसे छूटेगा कौन ? ॥ ४ ॥

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृग्भिक्षुस्तु निःस्पृहः ॥
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति ॥ ९ ॥

शुकदेवजी कहते हैं कि, जैसा निःस्पृह भिक्षुक सुखी है वैसा इन्द्र भी सुखी नहीं है, त्रिलोकीके विभव होनेपर जब इन्द्र भी निःस्पृह भिक्षुकके तुल्य सुखी नहीं है तब दूसरा कौन सुखी होसक्ता है ? किन्तु कोई भी नहीं होसक्ता है ॥ ९ ॥ ऐसे वाक्योंको कहकरके शुकदेवजी वनको चले गये । विवेकाश्रम कहते हैं । हे चित्तवृत्ते ! यदि स्त्रीभोगमें सुख होता तब शुकदेवजी तिसका त्याग क्यों करते ? जिस हेतुसे शुकदेवजीने विवाह ही नहीं किया था इसीसे सिद्ध होता है कि, स्त्रीके साथ भोगमें सुख नहीं है ॥ ११ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें एक और लौकिक दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं. एक ग्रामके बाहर एक महात्मा रहते थे। वहांपर उनके पास बहुतसे लोग सत्संग करनेके लिये जाते थे, एक महाजनका लडका भी उनके पास नित्यही जाता था । एक दिन लडका कुछ देरसें महात्माके पास गया तब महात्माने कहा आज तुम देर करके कैसे आये हो ? लडकेने कहा आज हमारी सगाई हुई है, ससुरालसे तिलक चढानेको आया था इसलिये देर होगई है, महात्माने कहा आजसे तुम हमारे कामसे गये, फिर कुछ कालके पीछे लडका चार पांच दिन नागा करके महात्माके पास गया तब उन्होंने पूछा कि, चार पांच दिन क्यों नहीं आया । तब लडकेने कहा हमारी शादी हुई है उसी काममें हम बँधे रहे और इसीसे मेरा आना नहीं हुआ है । महात्माने कहा आजसे तू माता पिताके कामसे भी गया, फिर एक दिन लडका कुछ देर करके उनके पास गया, फिर उन्होंने देर करके आनेका कारण पूँछा, तब लडकेने कहा आज हमारे घरमें लडका उत्पन्न हुआ है इसीसे आनेमें देर होगई है, तब महात्माने कहा आजसे तुम अपने कामसे भी गये । लडकेने कहा महाराज ! पहले जब कि, आपने मेरी सगाई होनेका हाल सुना था तब आपने कहा था तुम आजसे हमारे कामसे गये, फिर विवाहको सुनकर कहा था माता पिताके कामसे गये, आज लडकेकी उत्पत्तिको

सुनकर आपने कहा अब तुम अपने कामसे भी गये, इसका मतलब मैंने कुछ नहीं समझा। इसका मतलब मेरेको समझा दीजिये । महात्माने कहा जबतक तुम्हारी सगाई नहीं हुई थी तबतक तुमको कोई चिंता न थी क्योंकि, तुम तिस कालमें गृहस्थी नहीं कहलाते थे और जो कुछ तुम कमाते थे उसमें कुछ हमारी सेवा भी करते थे, कुछ माता पिताकी सेवा भी करते थे। सगाईके होनेपर विवाहकी चिंता पडी, तब तुम जो कुछ कमाते सो विवाहके लिये जमा करते, कुछ माता पिताकी भी कभी २ सेवा करदेते थे, जब कि विवाह होगया तब फिर जो तुम कमाते सो स्त्रीके अर्पण करते, तब माता पिताके कामसे गये, जबतक लडका नहीं हुवा था तबतक जो तुम कमाते थे उसको स्त्रीके साथ मिलकर आप भोगते थे, अब जो तुम कमावोगे सो सब लडकोंके लालनपालनमें खर्च होगा, इसलिये अब तुम अपने कामसे भी गये और पूरे गृहस्थ होगये याने प्रसे गये और कैदमें पडगये ॥ १२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! स्त्री बन्धनका हेतु है, इसी स्त्रीके पीछे सुन्द और उपसुन्द दोनों परस्पर लडकर मर गये। नहुष राजाको स्त्री भोगके पीछे स्वर्गसे गिरना पडा। एक स्त्रीके पीछे वाली मारा गया और रावणका भी सारा घर स्त्रीके पीछे ही चौपट होगया। शिशुपालका वध भी स्त्रीके पीछे हुआ और स्त्रीके पीछे महाभारत हुवा, जिसमें कि बडे २ शूर वीर भीष्म और कर्णादिक सब स्वाहा होगयें और हजारों राजा स्वयंवरोंमें परस्पर कटकर मर गये हे, अर्थात् महान् अनर्थोंका कारण स्त्री है। सांप जब काटता है तब पुरुष मरता है, परन्तु स्त्रीके रूपका चिन्तन करनेसे ही पुरुष मर जाता है, विष खानेसे एकही जन्ममें पुरुष मरता है स्त्रीरूपी विषके सम्बन्धसे अनेक जन्मोंमें जन्मता मरताही रहता है, इसलिये स्त्रीही बंधनका हेतु है। जिस पुरुषने इसका त्याग कर दिया है. व स्वप्नमें भी जो इसका स्मरण नहीं करता है, उसने मानो संसारका ही त्याग करदिया है. वही आत्मानन्दको प्राप्त होता है। हे चित्तवृत्ते ! जैसे स्त्री दुःखका कारण है, तैसे पुत्र भी दुःखका कारण है, अब दूसरे विषयमें तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक बनियां बडा धनी था परन्तु तिसके घरमें पुत्र नहीं था, पुत्रकी उत्पत्तिके लिये तिसने बहुतसे यत्न किये तव भी तिसके घरमें पुत्र उत्पन्न नहीं हुवा । एक दिन रात्रिके समय वह स्त्रीके साथ पलगपर सोया था इतनेमें तिसकी स्त्रीने कहा यदि परमेश्वर हमको एक लडका देदे तव तिसको हम कहांपर सुलावेंगी ? बनियांने कहा तिसको हम बीचमें सुलावेंगे, ऐसा कहकर थोडासा पीछे हटा, फिर स्त्रीने कहा यदि परमेश्वर एक और लडका देदें तब तिसको कहां सुलावेंगे? ज्योंही बनियां पीछेको हटने लगा त्योंही तडाकसे नीचेको गिरा और तिसकी टँगडी टूटगई । तब तो बनियां रोने लगा और इधर उधरसे लोकभी पहुँच गये । लोकोंने बनियांसे पूँछा किसने तुम्हारी टँगडी तोड दी, बनियांने कहा बिना हुए लडकेने हमारी टँगडी तोड दी, यदि सच्चा उत्पन्न होता तब न मालूम क्या उपद्रव करता । हे चित्तवृत्ते ! पुत्र भी दोनों प्रकारसे दुःखका ही कारण है । जिनके पुत्र नहीं हैं. वह तो पुत्रोंवालोंको देख करके इसीमें दुःखी रहते हैं, जो हमारा द्रव्य क्या जाने कौन लेगा, हम बडे अभागे हैं, जो हमारे पुत्र नहीं हैं, और ये बडे भाग्यशाली हैं, क्योंकि इनके पुत्र हैं । गरीबोंसे धनवानोंको पुत्रके न होनेका बडाभारी सन्ताप होता है और वह उसी सन्तापमें रात्रि दिन जलते रहते हैं, और जो कदाचित् उनके पुत्र होकर मरजाता है तब साथही उसके उनका भी मरणही होजाता है, और जिनके पुत्र तो हैं परन्तु कुपात्र हैं उनको न होनेवालोंसे भी अधिक सन्ताप होता है, जिसके सुपात्र पुत्र है उसको तिसके न जीनेकी ही चिंता रात्रि दिन लगी रहती है, फिर तिसके विवाहकी चिंता रहती है, तिसकी सन्ततिकी चिंता रहती है और हजारों चिंता पुत्रवालोंको भी बनी रहती हैं, फिर जिनके पुत्र हो हो करके मृत होजाते हैं उनको बडी चिन्ता रहती है, जिनके विवाहे हुए पुत्र मरजाते हैं उनको तो जन्मभर पुत्रके शोकमें रोनाही पडता है । हे चित्तवृत्ते ! इसीलिये पुत्र भी महान् दुःखोंकी खान है ॥ १३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इस लोकमेंही पुत्र दुःखसे नहीं छुडा सक्ते हैं तब मरे पीछे

क्या छुडावेंगे, केवल धनके लेनेके वास्ते ही उत्पन्न होते हैं, इसमें तुमको एक और दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक नगरमें एक बडा भारी कोई साहूकार रहता था तिसके पांच पुत्र थे, जब कि, वह साहूकार बूढा होगया तब तिसके सब द्रव्यको पुत्रोंने अपने कब्जेमें करलिया और पितासे कहदिया आप डेवढीमें बैठे रहा करिये और भोजन चौकेमें जाकर कर आया करिये और किसी कामसे सरोकार न रखिये और किसी गैर आदमीको मकानके भीतर न आने दीजिये इतनाही काम आपके जिम्मे रहेगा। पिताने लडकोंकी बातको मानलिया। कुछ दिन जब बीते तब तिसके पुत्रोंकी स्त्रियोंने अपने पतियोंसे कहा तुम्हारे पिताके डेवढीमें बैठे रहनेसे हमको भीतर बाहर जानेसे बडी दिक्कत होती है और रास्ता भी सब थूक करके बिगाडे देतेहैं और जब कि, चौकामें रोटी खानेको आते हैं तब थूक २ के चौकेको भी भ्रष्ट करदेते हैं और अभी इनके मरनेका भी कुछ ठिकाना नहीं लगता है, क्या जानै यह कब मरेंगे ? हमको तो इनने बडा तंग किया हैं अब आप ऐसा करिये अपने पिताको कोठेके ऊपरवाला जो कमरा है उसमें रखिये वहांपर पाखाना और पेशाबकी जगह भी पास है और थूकनेका भी आराम होगा. जहां चाहे वहां थूका करें और एक घण्टी इनके पास धर दीजिये जब कि इनको भूख प्यास लगे तब उस घण्टीको यह हिला दिया करैं उसी जगहमें हम अन्न पानी इनको पहुँचादेंगी। लडकोंने विचारा यह तो अच्छी सलाह है इसमें पिताजीको बडा आराम रहेगा और घरके लोकोंको भी आराम रहेगा। लडकोंने बापको समझा बुझाकर सबसे ऊपरके कमरेमें उनका डेरा लगा दिया, अब वह बूढे उसी जगहमें रहने लगे। जब कि भूख लगती या प्यास लगती तब घण्टीको हिला देते अन्न और जल उनको उसी जगहमें पहुँच जाता, जब कि उनको ऊपर रहते कुछ दिन बीते, तब एक दिन उनका छोटासा पोता ऊपर उनके पास चला गया और उस घण्टीसे वह खेलने लगा। वह भी तिससे लाड प्यार करनेलगे। थोडी देरके बाद वह लडका घण्टीको लिये हुए नीचे उतर आया। पीछे जब उनको भूख प्यास लगी तब देखे तो घंटी नदारद है, आवाज निकलती नहीं। नीचे

उतरनेकी शरीरमें ताकत नहीं । अब वह क्या करें अब सिवार्य शोकके और क्या होसक्ता है ? तब अपने मनमें वार २ कहते हैं हमने व्यर्थ आयु खो दी । जिन पुत्रोंको बडे कष्टसे पाला, वह तो सब धनको लेकर अलग होगये हैं अब कोई जलभी नहीं देता है, अब कोई उपाय भी नहीं बनता, बस ऐसा सोच करते २ थोडी देरमें वह यमपुरमें पहुंच गये । रात्रिको जब लडके घरमें आये तब उन्होंने स्त्रियोंसे पूछा लालाको खाना दाना ऊपर पहुंच गया है ? उन्होंने कहा आज तो घंटीकी आवाज सुनाई नहीं पडी । माल्रूम होता है उनको आज भूख प्यास नहीं लगी है । लडकोंने जब ऊपर जाकर देखा तो काम तमाम था । फिर लाला २ करके रोने लगे और तुरन्त श्मशानमें ले जाकर फूंकफाक दिया. हे चित्तवृत्ते ! जो पिता अनेक कष्टोंको उठाकर पुत्रकी पालना करता है वही वृद्धावस्थामें पुत्रोंको ग्रहरूप करके प्रतीत होने लगता है और पुत्र पौत्र सब तिसके मरणका ही चिंतन करते हैं, न तो कोई प्रीतिसे सेवा करता है और न कोई कष्टमें सहायक होता है, केवल द्रव्यको लेनाही जानते हैं, तब भी मूर्ख लोक पुत्रोंमें मोहका त्याग नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको सुनो—एक बूढेको तिसके पोतेने किसी वार्तापर दो तीन लात मारी और घरसे बाहर करदिया. तब वह बूढा अपने द्वारपर बैठकर रोता भी जाय और पोतेको गाली भी देता जाय । इतनेमें एक महात्मा उस रास्तेसे आ निकले, उन्होंने बूढेसे पूछा बावा ! क्यों रोते हो क्या कोई तुमको दुःख है ? बूढेने कहा हमारे पुत्र पौत्र सब बडे नालायक हैं, हमारे सब धनको अपने काबूमें करके अब हमको अच्छा खाने-को भी नहीं देते हैं, मैं बोलता हूँ तब दौडकर मारने लगते हैं, आज हमको पोतेने लातोंसे मारा है, इसीवास्ते मैं अब दुःखी होकर रोता हूँ और गाली भी देता हूँ, सिवाय इसके ओर मेरेसे कुछ बन नहीं पडता है । महात्माने कहा बावा ! ये पुत्र पौत्र तो सब अपने २ सुखके यार हैं, जबतक तू इनको सुख देता रहा तबतक ये सब तेरी खातिर करते रहे, अब तुम इनको सुख देने लायक नहीं रहे, अब ये सब तुम्हारा निरादर करते हैं, संसारमें सब कोई

अपने सुखके लिये एक दूसरेसे प्रीति करते हैं । जिस कालमें जिसको जिससे सुख नहीं मिलता उस कालमें तिसका वह त्याग कर देताहै या तिसका तिरस्कार करदेता है । बाबा ! इन सबका त्याग करके अब तुम हमारे साथ चलो और बाकी आयुको परमेश्वरके भजनमें व्यतीत करो, जो तुम्हारा परलोक भी बनजाय, इस मोह मायाका त्याग करके जल्दी उठो, अब देर करनेका समय नहीं है । बूढेने कहा आपको किसने चौधरी बनाया है, जो हमसे घरको और सम्बन्धियोंके छोडनेका उपदेश करने लगे हैं, वह हमारा पोता हम उसके दादे, तुम कौन हो ? जो उपदेश करनेको खडे होगये हो, पोता हमारा जीता रहे हमको पडा मारे । बालक मारते भी हैं, तब क्या कोई उनके मारनेके पीछे अपना घर छोड देता है, जो आप हमको घर छोडनेका उपदेश करते हैं । महात्मा कहने लगे देखो मोहकी महिमा ! ऐसी दुर्दशा होनेपर भी मूर्खोंको सम्बन्धियोंसे और गृहसे वैराग्य नहीं होता है महात्मा ऐसे कहकर चले गये ॥ १९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पुत्रकेही विषयमें एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

एक नगरमें एक साहूकार बडा धनी था, तिसके चार लडके थे ! जब कि, वह चारों लडके दूकानका काम सँभालने लायक होगये तब साहूकारने थोडा २ धन उनको देकर अलग दुकानें करादीं और बाकी धनको जिस कमरेमें वह रहता था उसकी दीवारोंके भीतर धरकर ऊपरसे चुनवाकर गच करवा दिया, दैवगतिसे थोडे दिनके पीछे वह बीमार होगया और एकदमसे तिसकी जबान बंद होगई । तब बिरादरीके लोक और यार मित्र तिसको देखने आये और तिसकी बुरी हालतको देखकर लोकोंने तिससे कहा अब अंतका समय है कुछ दान पुण्य करिये । तब बनियेंने कमरेकी दीवारोंकी तरफ हाथ किया उसका मतलब यह था जो इनमें धन गडा है निकालकर दान पुण्य करावो, लडके तिसके तात्पर्यको समझ गये जो इसने हमसे छिपाकर इन दीवारोंमें धनको गाडा है, तब लडके कहने लगे लाला कहता है जो कुछ कि मेरे पास था वह सब तो मैंने दीवारों

पर लगा दिया अब दान कहांसे करूँ । लोकोंने कहा ठीक कहता है तब बनिया माथेपर हाथ धरकर रोने लगा, लडकोंने कहा लाला रोओ मत, हम तुम्हारे पीछे सब काम अच्छी तरहसे चलावेंगे । इतनेमें बनियाके प्राण परलोकमें पहुँच गये । उठाकर लडकोंने फूकफांक दिया, मनकी मनमें ही रहगई । हे चित्तवृत्ते ! जिन पुत्रोंके लिये सैकडों अनर्थोंको करके धनको कमाते हैं और लाखों रुपयोंका धन उनको देजाते हैं उन पुत्रोंका यह हाल है । फिर भी मूर्खलोक पुत्रोंमें मोहको नहीं त्यागते हैं इसीसे बार बार जन्मते मरते हैं ॥ १६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! और भी एक दृष्टान्तको सुनो-एक कालमें नारदजी अपने शिष्य तुम्बुरुको साथ लेकर पृथ्वीपर पर्यटन करने लगे । एक नगरमें जाकर नारदजी, बाजारमें एक पीपलका वृक्ष था तिसके थडेपर बैठ गये, साथ उनका शिष्य तुम्बुरु भी बैठ गया, जहांपर नारदजी बैठे थे इनके सामनेही एक बनियेकी दूकान थी, उस दूकानके आगेसे एक कसाई बहुतसे बकरोंको लेकर अपने रास्तेसे चला जाता था । उन बकरोंमेंसे एक बकरा कूदकर बनियांकी दूकानके भीतर चला गया और अनाजके ढेर-मेंसे उसने एक मुह मारा । बनियांने उस बकरेके मुखसे दाने निकास लिये और तिसको गर्दनसे पकडकर कसाईके हवाले किया और कसाईसे कहा जब कि इसको हलाल करोगे तब इसकी गर्दनका मांस मेरेको देना. कसाई बकरेको लेकर जब चला तब नारदजी इस वृत्तांतको देखकर हंसे । तब तुम्बुरुने नारद-जीसे पूँछा महाराज हँसनेका कारण क्या है ? नारदजीने कहा जिस बकरेने इस बनियांकी दूकानमें घुसकर अनाजसे मुख भरा था वह बकरा पूर्वजन्ममें इस बनियेका पिता था । इस दूकानमें जाने आनेका तिसका अभ्यास पडा था इसीसे वह कूदकर इसी दूकानमें गया और एक मुट्ठी अनाजकी उसने अपने मुखमें ली । उसको भी तिसके बेटेने खाने न दिया, किन्तु तिसके मुखसे निकास लिया और यह भी कसाईसे कह दिया जब इसको मारोगे तब इसकी गर्दनका मांस मेरेको खानेके लिये देना । जिस बनियेने बडी २ देवतोंके आगे मानत मानकर

जिस पुत्रको पायाथा, उस पुत्रने एक मुट्ठी अन्नकी भी तिसको खानेको न दी इसी वार्त्ताको देखकर हम हँसे थे. नारदजी कहते हैं–जिन पुत्रोंसे किसीको सुखका लेशमात्र भी प्राप्त नहीं होता है मूर्खलोक उन्हींकी उपासना करते हैं। अपने कल्याणके लिये एक क्षणभर भी निष्काम होकर ईश्वरकी आराधना नहीं करतेहैं। यदि कोई घडी दोघडी ईश्वरका स्मरण करताभी है तब भी वह पुत्रोंके सुखके लिये ही करताहै जो मेरे पुत्रादिक सब बने रहें। अपने कल्याणके लिये नहीं करता है। इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा ? ॥ १७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जिन धनियोंके पुत्र नहीं होते हैं वह किसी दूसरेके पुत्रको गोदमें लेकर सब धन उसको दे देते हैं, अपने उद्धारके लिये कुछ भी नहीं खर्च करते हैं, या जन्मभर इसी दुःखमें संतप्त रहते हैं। एक महात्मा अपने शिष्योंको साथ लेकर भिक्षाके लिये एक सेठकी दूकानपर गये और तिस सेठसे भिक्षा करनेको कहा और वह सेठ बडे भारी गदलेपर बैठा था। सोने चांदी और हीरे पन्नोंका ढेर तिसके आगे लगाथा। सेठने नौकरसे कहा इनको भीतर लेजाकर भिक्षा करा देवो। वह महात्मा भीतर जाकर जब भिक्षा करने लगे तब एक शिष्यने गुरुसे कहा, महाराज ! आप कहते हैं कि, संसारमें सुखी कोई नहीं है, देखो ! यह सेठ कैसा सुखी है, लक्ष्मी इसकी नृत्तकारी कर रही है। गुरुने कहा चलती दफा इससे सुखकी वार्त्ता पूँछकर तुमको बतावेंगे, जब भोजन करके महात्मा बाहरको आये तब सेठसे पूँछाःतुम तो बडे सुखी प्रतीत होते हो, सेठ रोकर कहने लगा मेरे बराबर संसारमें कोई भी दुःखी नहीं है, परमेश्वरने मेरेको बहुतसा धन दिया है परन्तु पुत्रके विना सब धन व्यर्थ है। मेरेको यही बडा भारी दाह होरहा है, जो मेरे पीछे इस धनको कौन खायगा। गुरुने चेलेसे कहा तुम कहते थे यह बडा सुखी है। यह तो सबसे दुःखी निकला। अब चलो यहांसे, ऐसे कहकर महात्मा चले गये। हे चित्तवृत्ते ! पुत्र न हुआ, हुआ भी तो दुःखको ही देता है ॥ १८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पुत्र सम्बन्धी वासना भी परम दुःखकाही कारण है इसलिये विवेकी पुरुषको उचित है जो इन मलिन वासनाओंका भी त्याग ही करदेवे। हे

चित्तवृत्ते ! यह जो परिवारका मोह है, यह बडा दुःखदाई है, विवेकी पुरुष मोहके हटानेके लिये स्त्री पुत्रादि परिवारका त्याग कर देते हैं, अब इसी विषयमें तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं–

एक नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था । तिसकी स्त्री नवयौवना बडी रूपवती थी, दैवयोगसे तिसकी स्त्री किसी रोगसे बहुत बीमार होगई अर्थात् उसके बचनेकी कुछ भी उम्मेद न रही, तब वह बनियां स्त्रीके समीप बैठकर बडा रोदन करने लगा । स्त्रीने कहा तुम क्यों रोदन करते हो ? मेरे मरनेके पीछे तुम तो अपना और दूसरा विवाह भी करलेवोगे, दुःख तो मेरेको है जैसे मैं बिनाही संसारिक सुखके देखें मर जाऊँगी । बनियांने कहा मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा, स्त्रीने कहा इस बातको मैं नहीं मान सक्ती, जो धनी होकर फिरभी दूसरा विवाह न करे । बनियांने मोहके वशमें होकर अपनी इन्द्रीको काटडाला और कहा अब तो तू मानेगी ? स्त्री चुप होगयी । दैवयोगसे वह धीरे २ अच्छी होगयी बनियांको फिर बडा भारी दुःख हुआ, क्योंकि स्त्री पुरुषकी इच्छा करै और बनियांके पास अब वह बात न रही जिससे कि तिसको प्रसन्न करै; तब तिसकी स्त्री परपुरुषोंके साथ खराब होनेलगी, बनियां रात्रि दिन इसी संतापसे जलता रहे, एक दिन दैवयोगसे गुरु नानकजी और भाई मरदाना तिस नगरमें आ निकले, तिस सेठकी विभूतिको देखकर भाई मरदानाने कहा गुरुजी ! यह सेठ तो बडा सुखी दिखता है । गुरुजीने कहा ऊपरसे सुखी दिखता है परन्तु भीतर कुछ न कुछ इसको भी जरूर दुःख होगा, देखो तुम्हारे सामने हम इससे पूछते हैं, गुरुजीने जब उस सेठसे सुख पूछा तब उसने अपने दुःखका सब हाल कह सुनाया । गुरुजीने भाई मरदानासे कहा इस गृहस्थाश्रममें रहकर कोई भी सुखी नहीं है अज्ञानी पुरुषोंको तो विषय अप्राप्ति कालमें भी दुःखदाई होते हैं, और विवेकी पुरुषोंको प्राप्ति कालमें भी दुःखदाई ही दिखाई पडते हैं, यह मोहही पुरुषोंको दुःख देता है इसका त्यागही सुखका हेतु है ॥ १९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! यह द्रव्यभी अनर्थोंकाही कारण है और अनर्थोंकरके ही संग्रह भी होता है और संग्रह हुआ भी दुःखको ही देता है, क्योंकि एक तो इसकी रक्षा करनेमें बडा कष्ट होता है, फिर धनके लोभसे चोर मार भी डालते हैं. यदि चोरोंने धनको लेकर जीताभी छोड दिया तब तिस धनके चले जानेके रञ्जसे आपही मर जाता है, फिर धनी लोकोंका परस्पर विरोध भी अधिक रहता है, विवेकी पुरुष इसको दुःखका कारण जानकर इससे अलगही रहते हैं। हे चित्तवृत्ते ! चार पुरुष रास्तामें चले जातेथे। आगे रास्तामें एक अशरफियोंकी थैली पडीथी चारोंने मिलकर उठा ली। एक बगीचामें जाकर उन्होंने आपसमें बांटनेकी सलाह की, तब एकने कहा भूख लगी है दो आदमी ग्राममें जाकर दो रुपयेकी मिठाई लेआवो उस मिठाईको खाकर बांटेंगे और सगुनभी होजावेगा। दो आदमी मिठाई लेनेको जब गये तब उन्होंने आपसमें सलाह की कि, मिठाईमें विषको डालकर ले चलो जिससे कि वह खातेही मरजांय और सब धनको हमहीं दोनोंजने आधा २ बांट लेवैं। इधर तो यह विष डालकर मिठाई ले चले और उधर उन्होंने यह सलाह की कि, जब वह मिठाई लेकर आवें दूरसे आये हुवोंको गोलियोंसे मारकर सब धन हमहीं दोनों आपसमें बांट लेवैंगे, ज्यों ही वह दोनों मिठाई लिये हुए आते उनको दिखाई पडे त्योंही उन्होंने गोलियोंको दागा, वह दोनों मरगये तब उन्होंने कहा मिठाईको खाकर बांटेंगे। ज्योंही उन दोनोंने मिठाईको खाया त्योंही वह दोनोंभी मरगये और वह मोहरोंकी थैली उसी जगहमें पडी रही। हे चित्तवृत्ते ! हजारों लाखों इस धनके ऊपर मरगये, धन किसीका भी न हुआ ॥ २० ॥

हे चित्तवृत्ते ! यह राज्य भी महान् अनर्थोंका कारण है, और दुःखका हेतु है। प्रथम तो राजाको नित्यही शत्रुओंसे भय बना रहता है, दूसरा चोरोंसे भय रहता है, तीसरा सम्बन्धियोंसे भी भय बना रहता है जो राज्यके लोभसे कोई धोखा देकर मार न डाले, फिर अपने पुत्र और भाइयोंसे भी भय बना रहता है, क्योंकि राज्यके लोभसे पुत्र और भाई भी राजाको विष देकर मार डालते हैं। दुर्योधनने विष दिया था और भी बहुतोंने विष देकर राजको मार

डाला है इन्हीं दुःखोंसे राजाओंको रात्रिमें निद्रा भी ठीक नहीं आती है और न वह रात्रिभर एक ही पर्यंकपर सोते हैं । कैकेयीने पुत्रके राज्यके लोभसे रामजीको वनवास करादिया था, सुग्रीवने वालिको मरवा दिया था, कंसने देवकीके पुत्रोंकी हत्या करडाली, दुर्योधनने राज्यके लोभसे अपने वंशका ही उच्छेदन करदिया और राजमद भी सैकड़ों अनर्थोंको कराता है जिसका फल फिर अन्तमें राजाको नरक भोगना पडता है । इसीवास्ते शास्त्रोंमें राजाका अन्न खाना भी मना लिखा है । मनुस्मृतिमें लिखा है, दश कसाईके अन्न खानेमें जितना दोष होता है उतनाही दोष एक कुँभारके अन्न खानेमें होता है और दश कुँभारके अन्न खानेमें जितना दोष होता है उतनाही दोष शरावको जो वेचता है उसके अन्न खानेमें होता है और कलवारोंके याने शरावके बेचनेवालोंके अन्न खानेमें जितना दोष होता है, उतनाही दोष एक वेश्याके अन्न खानेमें होता है और दश वेश्याके अन्न खानेमें जितना दोष होता है उतना ही दोष एक राजाके अन्न खानेमें होता है, क्योंकि राजाका द्रव्य अनेक प्रकारके अधर्मोंसे मिश्रित होता है इसीसे राज्यभी अनेक अनर्थोंका कारण है । यदि राज्य अनेक अनर्थोंका कारण न होता तो वडे वडे राजा इसका त्याग क्यों करदेते? और त्याग उन्होंने किया है इसीसे सावित होता है जो राज्य भी अनेक अनर्थोंका हेतु है । जिन्होंने इसको दुःखरूप जानकर स्वीकार ही नहीं किया है और जिन्होंने स्वीकार करके फिर पश्चात् इसका त्याग करदिया है उनकी भी दो चार कथाओंको तुम्हारे प्रति सुनाते हैं ।

हे चित्तवृत्ते ! प्रथम तुम महात्मा प्रियव्रतकी कथाको सुनो । प्रियव्रत चक्रवर्ती राजा हुआ है और वहुत कालतक इसने राज्य किया है । एक दिन राजाके चित्तमें विचार उपजा तब राजा कहने लगा अहो! वडा कष्ट है, दुःखरूप जो राज्य है इसमें सुख मानकर मैंने अपना जन्म व्यर्थ ही खो दिया और इन्द्रियोंके वशवर्ती होकर अविद्यारूपी कूपमें अपनेको गिरा दिया और कामके वशमें होकर मैं अपनी स्त्रीका दास बना रहा । जैसे वनका मृग वालकोंकी क्रीडाके लिये होता है, तैसे मैंभी अपनी स्त्रीकी क्रीडाके लिये मृग बना । धिक्कार है मेरेको ! जो मैंने राज्यके भोगोंमें अपनी आयुको व्यर्थ खो

दिया, मेरे तुल्य संसारमें वैसा कौन मूर्ख होगा जो ऐसे उत्तम शरीरको पाकर फिर मिथ्या भोगोंमें अपनी आयुको व्यतीत करेगा । अब मैं इस राज्यका त्याग करके आत्मसुखके लिये एकान्त देशमें निवास करके आत्मविचार करूंगा । ऐसा विचार करके राजाने पृथिवीका विभाग करके अर्थात् एक २ खण्ड एक २ पुत्रको दे दिया, आप वनमें जाकर एकान्त देशमें बैठकर आत्मविचार करने लगा । हे चित्तवृत्ते ! यदि राज्यमें अधिक सुख होता तब प्रियव्रत राजा चक्रवर्ती राज्यका क्यों त्याग कर देता ? और त्याग तिसने किया है इसीसे जाना जाता है राज्य भी दुःखरूप है ।

हे चित्तवृत्ते ! कृतवीर्य नाम करके एक राजा बडा प्रतापी और धर्मात्मा हुआ है । बहुत कालतक वह पृथिवीका राज्य करता रहा है । जब कि तिसका देहांत हुआ तब मंत्रियोंने और पुरोहितोंने और प्रजाने मिलकर कृतवीर्यके पुत्र अर्जुनको राजसिंहासन पर बैठनेके लिये कहा, तब अर्जुनने कहा हम राजसिंहासन पर नहीं बैठेंगे, क्योंकि अन्तमें इसका फल नरक होता है, राजाके लिये जो धर्म लिखे हैं उनका निर्वाह होना कठिन है, राजाके लिये जो कर लेना प्रजासे लिखा है उसी द्रव्यसे दीन प्रजाकी पालना करनी और चोरोंसे तिसकी रक्षा करनी कही है । अपने आरामके लिये प्रजासे द्रव्य लेना नहीं लिखा है और न अधिक लेना लिखा है, तब भी कहीं २ अधिक लिया जाता है । क्योंकि भृत्यलोक भी अपने लोभके लिये प्रजाको सताते हैं, अकेला राज कहांतक सब प्रजाको देख सकता है और तिसका हाल जान सकता है । और जो प्रजा अधर्म करती है तिसका पाप भी राजाको लगता है और राज्यके विघातक राग द्वेषादिक शत्रु भी राजाके सिरपर सदैवकाल गरजते रहते हैं, महान् अनर्थोंका कारण राज्य है इसलिये मैं राज्यका ग्रहण नहीं करूँगा ऐसा कहकर वह उपराम होगया । हे चित्तवृत्ते ! यदि राज्यमें सुख होता तब कृतवीर्यका पुत्र अर्जुननामक तिसका त्याग क्यों करता ? ॥ २१ ॥

वैराग्याश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ते ! इक्ष्वाकु वंशमें एक बृहद्रथ नाम करके बडा प्रतापी राजा हुआ है, जब कि राज्यसम्बन्धी भोगोंको भोगते २ तिसको बहुतसा काल बीत गया तब तिसके मनमें एक दिन बडा भारी वैराग्य उत्पन्न

हुआ, जिस दिन तिसको वैराग्य हुआ उसी दिन उसने पुत्रको राजसिंहासन दे दिया और आप वनमें जाकर तप करने लगा। जब कि राजाको तप करते २ बहुतसा काल व्यतीत हो गया तब एक दिन शाकायनमुनि तिसके समीप आकर कहने लगे, हे वत्स ! हम तुम्हारे ऊपर बड़े प्रसन्न हुए हैं, आप अब हमसे मनो वांछित वर मांगो। राजा मुनिको दंडवत् प्रणाम करके कहने लगा यदि आप मेरे पर प्रसन्न हुए हैं, तब आप मेरेको आत्मज्ञानका उपदेश करें, यही वर मैं आपसे चाहता हूँ। मुनिने कहा " हे राजन् ! यह वर बडा दुष्प्राप्य है और किसी वरको मांगो जो पदार्थ कि आपको न प्राप्त हो उसको मांगो" राजाने कहा भगवन् ! संसारके किसी पदार्थको भी मैं स्थिर नहीं देखता हूँ क्योंकि सब पदार्थ नश्वर हैं, काल पाकर प्रलयकी अग्निसे सब समुद्र भी सूख जाते हैं और पर्वत भी सब प्रलयकालकी अग्निसे भस्म हो जाते हैं और जितने कि ध्रुवसे आदि लेकर तारागण हैं वे भी सब टूट जाते हैं अर्थात् नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। इसी तरह वृक्षादिक भी सब काल पाकर नष्ट हो जाते हैं, और पृथिवी आदिक पांच भूत भी सब नाशको प्राप्त होजाते हैं। कारणका नाश होनेसे कार्य्यका नाश स्वयं ही हो जाता है, और जितने कि इन्द्रादिक देवता हैं, ये भी सब अपने अपने पदसे प्रच्युत होजाते हैं। हे मुने ! संसारमें कोई भी पदार्थ मेरेको स्थिर नहीं दीखता है तब मैं किस पदार्थको आपसे मांगूँ। हे मुनि ! जैसे अन्ध मेंडक तालमें निराश्रय होकर दुःखको प्राप्त होता है; तैसे मैं भी निराश्रय होकर इस संसाररूपी तालमें दुःखको प्राप्त होता हूँ। हे मुने ! मेरेको इस महान् दुःखसे छुडानेके लिये आप ही समर्थ हैं, मैं आपकी शरणको प्राप्त हुआ हूँ, आप मेरा उद्धार करिये। हे मुने ! यह जो स्थूल शरीर है, सो भी पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, इसी हेतुसे यह शरीर अति अपवित्र है, जिसका कारण ही अपवित्र होवे, तिसका कार्य कैसे पवित्र हो सक्ता है। फिर यह शरीर अस्थियोंका एक कोट है और ऊपर इसके चर्म मढा है, भीतर इसके मलमूत्र भरा है, ऐसे महान् अपवित्र शरीरमें बैठकर अज्ञानी मूर्ख इसका अभिमान करते हैं. ज्ञानवान् नहीं करते हैं। हे मुने ! यह शरीरही नरक है, आपके विना कौन मेरेको इस नरकसे छुडानेवाला है। इस

प्रकारके वैराग्य करके युक्त राजाके वचनोंको सुनकर ऋषि बोले—"हे राजन्! हम तुम्हारे पर बडे प्रसन्न हैं, क्योंकि तुम्हारेमें पूर्ण वैराग्य है, इक्ष्वाकुवंशमें तुम पताका हो, तुमने अपना जन्म सफल कर लिया है, अब तुम भय मत करो, तुम कृतकृत्य हो"।

ऋषि कहते हैं हे राजन्! शब्द स्पर्शादिक जितने विषय हैं, यह सब अनर्थको ही करनेवाले हैं, और नाशी हैं और मनसे लेकर जितने इन्द्रिय हैं ये भी सब अनर्थकारी हैं, अर्थकारी नहीं हैं। क्योंकि सदैवकाल पुरुषको विषयोंकी तरफ ही ये सब लेजाते हैं और उत्पत्ति नाशवाले भी हैं और जो आत्मा है सो इन सबसे परे है और सबका साक्षी है, तिस आत्माकी प्राप्ति सत्यको आश्रय करनेसेही होती है। क्योंकि ऐसा नियम है। जिसने सत्यका आश्रय करलिया है. उसने आत्माका ही आश्रय करलिया है, और सत्यका आश्रय करनेसेही मनका निरोध भी होता है, मनके निरोध होनेके अनन्तर हृदयमें आत्माका प्रकाश भी स्पष्ट प्रतीत होता है, शुद्ध मनमें ही आत्माका प्रकाश होता है, अशुद्ध मनमें नहीं होता है, अशुद्ध मन बंधनका हेतु है, शुद्ध मन मुक्तिका हेतु है, मनके शुद्ध होजानेसे शुभ अशुभ कर्मोंका भी नाश होजाता है, कर्मोंके नाश होजानेसे ही पुरुष जीवन्मुक्तिको प्राप्त होता है।

हे राजन्! जैसे लकडियोंसे रहित अग्नि अपने कारणमें लय होजाती है, तैसे वृत्तियोंसे रहित हुआ मन भी अपने कारणमें लय होजाता है और तिसी कालमें आत्माका भी साक्षात्कार होजाता है। सो कहा भी है:—

समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे ॥
यद्येवं ब्रह्मणि स्याद्वै को न मुच्येत बंधनात् ॥ १ ॥

हे राजन्! जैसे जीवोंका चित्त विषयोंमें आसक्त होरहा है तैसेही यदि ब्रह्ममें आसक्त होजावे तब कौन पुरुष है जो संसाररूपी बंधनसे न छूटे ॥ १ ॥

वर्णाश्रमाचारयुता विमूढाः कर्मानुसारेण फलं लभन्ते ॥
वर्णादिधर्मं हि परित्यजन्तः स्वानन्दतृप्ताः पुरुषा भवन्ति २॥

हे राजन् ! जो पुरुष वर्णाश्रमके आचारमें अतिशय करके प्रीति रखते हैं, आत्मविचारमें प्रीतिको नहीं रखते हैं, वह मूढ कर्मोंके अनुसार फलको प्राप्त होते हैं । जो पुरुष वर्णाश्रमोंके अभिमानसे रहित होकर आत्मविचारमें प्रीति-वाले हैं, वह पुरुष आत्मानंद करके तृप्त होते हैं ॥ २ ॥

हृत्पुण्डरीकमध्ये तु भावयेत्परमेश्वरम् ॥
साक्षिणं बुद्धिनृत्यस्य परमप्रेमगोचरम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! अपने हृदयरूपी कमलमें परमेश्वरका ध्यान करे, जो बुद्धिकी नृत्यकारीका भी साक्षी है और जो परम प्रेमका विषय है ॥ ३ ॥

हे राजन् ! एक कालमें मैत्रेय ऋषिने कैलास सपर्वतपर जाकर महादेवजीसे कहा हमको आत्मतत्त्वका उपदेश कीजिये । महादेवजीने जो तिसको उपदेश किया है, उसको भी तुम सुनो—

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः ॥
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥ ४ ॥

यह जो देह है यही देवमंदिर है, जो कि इस देहमें चेतन जीव है वही केवल शिव है, अज्ञानरूपी शिवनिर्माल्यका त्याग करके 'सोहंभाव' करके तिसका पूजन करो ॥ ४ ॥

अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः ॥
स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ ५ ॥

आत्माको सबमें एकरूप करके जो देखना है इसीका नाम ज्ञान है और मनका विषयोंसे रहित होजाना ही ध्यान है, मनके मलका त्याग करनेका ही नाम स्नान है, इन्द्रियोंके निग्रह करनेका ही नाम शौच है ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! ऋषिने राजाको इसप्रकार उपदेश करके कृतार्थ कर दिया । हे चित्तवृत्ते ! यदि राज्यमें सुख होता तब बृहद्रथ राजा राज्यको त्याग करके बनको क्यों जाते ? इसीसे सिद्ध होता है कि राज्यमें सुख किंचित् भी नहीं है ॥ २२ ॥

हे चित्तवृते ! सत्ययुगमें ऋभु मुनिका पुत्र निदाघ नाम करके मुनियोंमें उत्तम बडा वैराग्यवान् एक मुनि हुआ है, तिस मुनिने बाल्यावस्थामें ही सम्पूर्ण विद्याओंका अध्ययन करके अपने पितासे तीर्थयात्रा करनेके लिये कहा, पिताने तिसको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा देदिया, तब वह तीर्थोंमें जाकर बहुत कालपर्यंत भ्रमण करतारहा और साढे तीन करोड तीर्थोंमें तिसने स्नान आदिक कर्मोंको भी किया और अनेक प्रकारके जप दानादिकोंको भी तीर्थोंमें किया। इतना बडा परिश्रम करनेपर भी तिसका मन शान्तिको प्राप्त न हुआ। फिर वह अपने गृहमें लौट आया और अपने पितासे सब तीर्थयात्राका वृत्तांत कहा और फिर पितासे कहा, इतने तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी मेरा चित्त शांतिको नहीं प्राप्त हुआ है। विना चित्तकी शांतिके पुरुषको सुख नहीं होता है और पुरुष जन्म मरणरूपी संसारसे भी नहीं छूटता है। जो जन्मता है वह अवश्यही मरता है.जो मरता है वह फिर अवश्यही जन्मता है घटीयन्त्रकी तरह यह चक्र अनादिकालका चलाही जाता है। हे पिता ! इस जन्म मरणरूपी चक्रसे छूटनेका कोई उपाय कहिये। और जितने कि व्रतादिक और जपादिक विधान किये हैं उन सबको तो मैं कर चुकाहूँ, ये सब तो भ्रमजालमें डालनेवाले हैं, छुडानेवाले नहीं हैं। हे पिता ! संसारमें वही पुरुष जीता है जिसका मन विषयोंकी तरफ नहीं जाता है, जिसका मन विषयोंकी तरफ जाता है वह पुरुष जीता नहीं है किन्तु मरा ही है। हे पिता ! जैसे विषयोंमें रागी पुरुषोंको आत्मज्ञान एक भार जान पडता है तैसेही विवेकी पुरुषोंको शास्त्रका अध्ययन और पठन पाठन भी एक भार ही जान पडता है और जिन पुरुषोंका मन तृष्णा करके व्याकुल हो रहा है, वह सदैवकाल इतस्ततः भ्रमतेही रहते हैं। हे पिता ! जितने कि, सांसारिक दुःख हैं उन सबका मूलकारण एक तृष्णा ही है, यह तृष्णा कैसी है ? कभी तो स्वल्प पदार्थको पाकर अलं होजाती है और कभी इन्द्रादिकोंके भोगको प्राप्त होकरके भी अलं नहीं होती है। हे पिता ! यह जो स्थूल शरीर है सो मल मूत्रका एक भाजन है, इसीसे अत्यन्तही अपवित्र है और कृतघ्न भी है, नित्यही क्षीण भी होता रहता है, इस शरीररूपी भाजनमें स्थित जो कामदेवरूपी पिशाच है, वह पुरुषका नित्यही

तिरस्कार करता रहता है, तिस कामदेवरूपी पिशाचके वशीभूत होकर यह जीव युवावस्थामें उन्मत्त होकर स्त्रियोंके पीछे दौडता है फिर जब वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है तब स्त्री पुत्रादिक और दासी दास भी इसका तिरस्कार करते हैं और हँसी करते हैं। हे पिता! संसारके जितने पदार्थ हैं सब नाशी हैं, कोईभी स्थिर नहीं हैं और जो कि ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि देवता हैं, ये भी सब कालके वशको प्राप्त होकर नाशको प्राप्त होजाते हैं, एक क्षणमें जीवका जन्म होता है फिर किसी दूसरे क्षणमें इसका नाश होजाता है यानी मरण होता है। हे पिता! सांसारिक जितने पदार्थ हैं, वह सब अनित्य हैं। जो कि नाशसे रहित पदार्थ है उसीका मेरेको उपदेश करिये। ऋभु मुनि, पुत्रके वैराग्यको श्रवण करके अब आत्मतत्त्वका तिसको उपदेश करते हैं। हे निदाघ! जैसे इच्छासे रहित स्थित रत्नोंकी विलक्षण शक्तिसे लोक चेष्टा करने लगते हैं और जैसे सुन्दर रूपकी विलक्षण शक्तिसे लोक मोहको प्राप्त होजाते हैं और जैसे चुम्बक पत्थरकी विलक्षण शक्तिसे लोहा चेष्टा करने लगता है, तैसे ब्रह्मचेतनकी विलक्षण शक्तिसे वह जगत् भी चेष्टा करता है। यह जगत् सब जड है, नाशी है और दुःखरूप है, यह ब्रह्म चेतन है, नित्य है, सुखरूप है और वास्तविक इच्छासे रहित होनेसे यह अकर्ता है और व्यापक होनेसे सबके साथ सन्निधिमात्र होनेसे यह कर्ता है और एकही चेतन उपाधियोंके भेदसे नानारूप हो रहा है फिर एकका एक ही है, जैसे एक ही आकाश घट मठादि उपाधियों करिके घटाकाश मठाकाश कहा जाता है और उपाधियोंसे रहित महाकाश कहा जाता है, तैसे ही जीव ईश्वरका भी भेद जान लेना। अन्तःकरणरूपी उपाधियोंके अन्तर्गत चेतन जीव कहा जाता है, अन्तःकरणरूपी उपाधियोंसे रहित ईश्वर कहा जाता है, वास्तवमें जीव ईश्वरका भेद नहीं है क्योंकि चेतन निरवयव निराकार है, निरवयवका भेद विना उपाधिके कदापि नहीं होसक्ता है इसमें कोईभी दृष्टान्त नहीं मिलताहै अतएव जीवही ब्रह्मरूप है, जैसे ब्रह्म चेतन अकर्ता अभोक्ता है, तैसे जीव चेतन भी अकर्ता अभोक्ता है। जैसे ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध है, तैसे जीव भी नित्यही शुद्ध बुद्ध है। हे निदाघ! ऐसा निश्चय करनेसे पुरुष मुक्त होजाता है सो तुम भी ऐसा निश्चय करो इसी निश्चयका

नाम आत्मज्ञान है और ऐसेही निश्चयवालेका नाम आत्मज्ञानी है. जो ऐसे निश्चयसे रहित है वही अज्ञानी है। हे चित्तवृत्ते! पिताके उपदेशसे निदाघको अपने स्वरूपका बोध हुआ। हे चित्तवृत्ते! आत्मज्ञानकी प्राप्तिका मुख्य साधन वैराग्य है सो तुम भी प्रथम वैराग्यका आश्रयण करो॥ २३॥

चित्तवृत्ति विवेकाश्रमसे कहती है हे भ्राता! मेरेको अब आप कुछ और भी वैराग्यवानोंकी कथाओंको सुनाओ जिनकी कथाओंको सुनकर मेरा भी चित्त वैराग्यवाला होजावे॥

विवेकाश्रम कहते हैं हे चित्तवृत्ते। किसी नगरमें एक राजाने नवीन चालका एक वडा भारी मकान बनवाया जब कि, वह मकान बन कर तैयार होगया, तब राजाने तिस मकानमें एक दिन सभा की और सब नगरनिवासियोंको निमन्त्रण दिया, सब लोक जिस कालमें तिस मकानके अन्दर आने लगे तिसी कालमें एक विरक्त महात्मा भी किसी रास्तासे पर्यटन करते हुए आ निकले और लोकोंको मकानके अन्दर आते देखकर वह भी लोकोंके साथ तिसी मकानमें चले आये, जब कि सब लोक आकर बैठगये तब राजाने कहा "मैंने यह मकान नया बनवाया है और आप लोकोंको इस वास्ते बुलाया है जो आप लोक इस मकानके गुण दोषोंको देखकर हमको बतावैं। यदि किसी तरहकी इस मकानमें कसर रहगई हो तब आप उसको मेरेको बता दीजिये तिस कसरको मैं हटा देऊंगा"। राजाकी वार्ताको सुनकर सब लोकोंने कहा यह मकान बहुतही उत्तम बना है किसी प्रकारकी भी कसर बाकी नहीं है। राजाकी और लोकोंकी वार्ताको सुनकर वह महात्मा रोने लगे। राजाने उनसे पूँछा आप रुदन क्यों करते हैं? महात्माने कहा इस मकानमें दो कसरें बड़ीभारी रहगई हैं और वह किसी प्रकारसे भी हट नहीं सक्ती हैं, इसवास्ते रुदन करता हूँ। राजाने कहा आप बता दीजिये उन कसरोंको जहांतक बनैगा हम उनके हटानेकी कोशिश करेंगे। महात्माने कहा एक कसर तो यह है कि जो एक ऐसा दिन आवैगा जिस दिन यह मकान सब नष्ट भ्रष्ट होजावेगा, दूसरी कसर यह है कि एक दिन वह होगा जिस दिन मकानका

बनवानेवाला भी नहीं रहेगा, येही दो कसरें हटनी मुश्किल हैं, इसी वास्ते हम रुदन करते हैं, जो आप वृथाही मकानका अहंकार कर रहे हैं । महात्माकी वार्ताको सुनकर राजाके मनमें भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और तिसी दिनसे राजा वैराग्यवान् महात्माओंकी संगति करने लग गया ॥ २४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी प्रकारका एक और भी दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं । हे चित्तवृत्ते ! एक महात्मा रास्तामें चले जाते थे, चलते चलते जब थक गये, तब उन्होंने दो घडी विश्राम करनेके लिये स्थानको इधर उधर देखा तब सडकके किनारेपर एक अति रमणीय मंदिर उनको दिखाई पडा, महात्मा तिसके भीतर चले गये, वहांपर पलंगके ऊपर राजा बैठे थे और सिपाही लोग आगे तिसके हाथ बांधकर खडे थे, महात्मा भी जाकर वहांपर राजाके सामने खडे होगये, तब एक सिपाहीने महात्माको डाट करके कहा तुम यहांपर क्यों आये हो ? महात्माने कहा हम इस मकानको धर्मशाला जानकर दो घडी आराम करनेके लिये यहांपर आये हैं, सिपाहीने फिर डाटकर कहा अरे साधु! तू कैसा बोलता है, महाराजके मकानको धर्मशाला बनाता है ? महात्माने कहा इस वर्तमान महाराजसे पहले इस मकानमें कौन रहता था ? राजाके सिपाहीने कहा इन महाराजसे पहले इस मकानमें महाराजके पिता रहते थे । तब कहा उनसे पहले कौन रहते थे ? सिपाहीने कहा उनके पिता रहते थे । फिर कहा उनसे पहले कौन रहते थे ? सिपाहीने कहा उनके पिता रहते थे । महात्माने कहा जिस मकानमें मुसाफिर हमेशा ही आते जाते रहे वह धर्मशाला नहीं तो क्या है ? इस राजाके पूर्वज कितने ही इस मकानमें रह गये हैं, और आगे भी कितने ही रहेंगे फिर यह मकान् भी धर्मशाला नहीं तो क्या है ? हमने इसमें क्या बेजा कहा है जो तुम हमपर नाराज हुए हो ? महात्माकी वार्ताको सुनकर राजाको बडा वैराग्य हुआ और राजाने अपनी भूलको महात्मासे बखशाया । हे चित्तवृत्ते ! जितनेक संसारमें लोकोंके गृह हैं, ये सब धर्मशालाही हैं, जीवरूपी पथिक तिसमें निवास करते चले जाते हैं, अज्ञानी उनमें ममताको करते हैं, ज्ञानी ममतासे रहित होकर निवासको करते हैं ॥ २५ ॥

विवेकाश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ति ! एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं ।. पांचाल देशके किसी नगरके एक मन्दिरमें एक महात्मा रहते थे, वह महात्मा बडे अभ्यासी थे, अभ्यास करते २ उनकी अवस्था चढ गई थी, योगवासिष्ठमें जो जीवन्मुक्त ज्ञानीकी पांचवीं भूमिका लिखी है, वह तिस पांचवीं भूमिकामें प्राप्त होगये थे, सदैवकाल हँसते रहते थे, किसीसे भी न बोलते थे न चालते थे । एकदिन दोपहरके वक्त तिस मन्दिरमें खेलनेके लिये चार पांच लडके छोटे २ जा निकले । एक लडकेने दूसरे लडकेसे कहा महात्माकी जांघें बडी मोटी २ हैं । इनकी एक जांघपर चौपड बनाकर खेलो । लडके तो मूर्ख होते हैं, तुरन्त दूसरा लडका अपने घरसे चक्कूको ले आया और चक्कूसे उनकी जांघके ऊपर लकीर खैंचकर चौपड बनाने लगा । महात्मा न तो बोलते थे और न अपने आप कोई चेष्टाही करते थे महात्मा उनको मना कैसे करैं. उनके आगे जांघको धर दिया, जब कि लडकोंने दो चार चक्कू जांघ पर चलाये तब रुधिरकी धारैं बहने लगीं लडके तो सब रुधिरको देखकर भाग गये । अब रुधिर वह रहा है और महात्मा हँस रहे हैं । इतनेमें कोई सयाना आदमी मंदिरमें आ निकला, तिसने देखा तो महात्माकी जांघसे रुधिर बह रहाहै, महात्मा हँस रहेहैं, तिसने जाकर औरोंको खबर की और भी दश बीस आदमी इकट्ठे होगये, उन्होंने इधर उधरसे दर्यापत किया तब माळूम हुवा जो यहांपर लडके खेलते थे, एक लडकेसे पूँछा तब तिसने सब हाल कह सुनाया । फिर लोकोंने सलाह की, किसी जर्राहको बुलाकर जखम सिलाकर मलहम पट्टी करनी चाहिये । एक आदमी उनमेंसे जाकर एक जर्राहको बुला लाया । जब कि, जर्राह टांगको पकड कर सीने लगा तब महात्माने उसके हाथको हटा दिया, कितनाही लोकोंने टांगके जखमको सीनेके लिये यत्न किया परन्तु महात्माने जखमको सीने न दिया उसी तरह तीन चार दिन रुधिर बहता रहा । यहांपर किसी और मंदिरमें एक महात्मा रहते थे, उनको जब कि यह हाल मिला तब उन्होंने एक आदमीसे कहला भेजा कि जिस मकानमें पुरुष रहै, मुनासिब है तिस मकानकी सफाई रखनी । आप इस शरीररूपी मकानमें रहते हैं, आपको उचित है,

कि इसकी दवाई करनी । तब उस महात्माने उस सन्देशा लानेवालेसे कहा- महात्मासे कह देना तुम जब कि तीर्थोंमें गये थे तो रास्तामें बीसो धर्मशालाओंमें एक २ रात्रि रहे थे अब वह धर्मशालायें सब गिरती जाती हैं, उनकी मरम्मत आप जाकर क्यों नहीं करते हैं । जिस तरह आप रात्रिभर रहनेके वास्ते उनकी सफाई और मरम्मतको नहीं करते हैं, इसी तरह हमें भी इस शरीर-रूपी धर्मशालामें आयुरूपी रात्रि भर रहना है, वह रात्रि भी व्यतीत होचली है हम अब इसकी सफाई क्या करें ? इतनाही बोलकर फिर चुप होगये पांच सात दिनके व्यतीत होनेपर उन्होंने शरीरका त्याग कर दिया । हे चित्तवृत्ते ! जो कि पूर्ण वैराग्यवान् पुरुष हैं, वह इस शरीरको धर्मशाला जानकर इसमें ममताको नहीं करते हैं ॥ २६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! तुमको एक और लौकिक दृष्टांत सुनाते हैं ।

एक नगरके बाहर नदीके किनारेपर एक वैराग्यवान् महात्मा कुटी बनाकर रहते थे और निष्काम होनेसे किसी राजा बाबूके पास नहीं जाते थे किन्तु हमेशा आत्मविचारमें ही रहते थे । उनके त्याग और वैराग्यकी नगरमें बडी चर्चा फैली थी । एक दिन राजाके दरबारमें भी किसी वार्तापर एक आदमी उनकी स्तुति करने लगा, तब राजाको भी उनके दर्शनकी लालसा हुई । राजाने अपने वजीरको उनके बुलानेके लिये भेजा, वजीरने जाकर नम्रता-पूर्वक कहा राजाको आपके दर्शनकी लालसा हुई है और कृपा करके मेरे साथ चलकर राजाको दर्शन दीजिये । महात्माने विचार किया यदि हम अब वजीरके साथ राजाके पास नहीं जाते हैं तब राजा अपना निरादर समझकर हमसे कोई बुराई करदेगा क्योंकि एक तो राजमद करके राजालोक प्रमादी होते हैं दूसरे हम उसके राज्यमें रहते हैं और यदि हम जाते हैं तब महात्माओंकी सभामें और परमेश्वरके समीप हमारा मुँह काला होगा क्योंकि महात्मा वैराग्यवान् कहेंगे, देखो निष्काम होकर फिर राजाके द्वारपर गये और परमेश्वर कहेगा हमारे पर भरोसा न रख कर राजाके द्वारपर गये, वह पीछे हमारा मुँह काला करेंगे । इस लिये

प्रथमसेही अपना मुँह काला करके राजाके पास चलना चाहिये ऐसा विचार करके महात्माने स्याहीसे अपना मुँह काला कर मन्त्रीके साथ राजाके पास चल दिया । जब राजाके दर्बारमें गये तब राजाने इनका बडा सत्कार किया और अपने सिंहासनपर बैठाकर मुँह काला करनेका वृत्तांत पूछा, तब महात्माने अपना सब विचार कह दिया । राजाने कहा सब सत्य है थोडी देर बैठकर महात्मा अपने आसनपर चले आये । तात्पर्य यह है जो कि पूर्ण वैराग्यवान् निष्काम महात्मा हैं वह किसी भी राजा और धनीके द्वारपर अपने शरीरके निर्वाहके लिये नहीं जाते हैं। जो सकामी हैं वैराग्यसे शून्य हैं, वही राजा बाबुओंके द्वारोंपर मारे २ घूमते हैं ॥ २७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक राजाने सम्पूर्ण पृथिवीको जय करके अपना नाम सर्वजीत रखाया तब सब लोग तिसको सर्वजीत करके पुकारने लगे । जब घरमें आता तब राजाकी जो माता थी वह तिसको सर्वजीत नाम करके न पुकारती किन्तु पूर्ववाले नामसेही पुकारती थी । एक दिन राजाने अपनी मातासे कहा माताजी ! सब लोक तो मेरेको सर्वजीत नाम करकेही पुकारते हैं परन्तु आप तिस नामसे नहीं पुकारती हैं इसमें क्या कारण है ? माता राजाकी बडी विचारशीला थी । माताने कहा बाहरकी विलायतोंके जीतनेसे पुरुष सर्वजीत नहीं हो सक्ता है किन्तु अन्दरकी विलायतके जीतनेसे और शरीररूपी विलायतके जीतनेसे पुरुष सर्वजीत होसक्ता है, बाहरके शत्रुओंके जीतनेसे पुरुष शत्रुजीत नहीं होसक्ता है किन्तु मन और इन्द्रियरूपी शत्रुओंके जीतनेसे पुरुष शत्रुजीत हो सक्ता है । तुम कहते हो सारी पृथिवी मेरी आज्ञामें है प्रथम तो तुम्हारा शरीरही तुम्हारी आज्ञामें नहीं है, प्रतिदिन यह क्षीण होता जाता है, एक दिन ऐसा होगा जो यह शरीर नाशको प्राप्त होजावैगा, इन्द्रिय और तुम्हारा मन भी तुम्हारे वशमें नहीं है, नित्यही यह तुमको विषयोंकी तरफ और कुकर्मोंकी तरफ भटकाते हैं । पहले तुम शरीर मन इंद्रियोंको जय करो । जब कि तुम इन सबको जय करलेवोगे तब मैंभी तुमको सर्वजीत नाम करके पुकारा करूँगी ; हे राजन् ! व्यासस्मृतिमें ऐसाही लिखा है—

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पंडितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः॥ १ ॥
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पंडितः।
हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः॥ २ ॥

रणमें जय करनेसे शूर नहीं कहा जाताहै और शास्त्र पढनेसे पंडित नहीं होसक्ता है, वाणीकी चातुर्य्यतासे वक्ता नहीं होसक्ता है, धनके दान करनेसे दाता नहीं होजाता है॥ १ ॥ किन्तु इन्द्रियोंके जय करनेसे शूर वीर कहा जाता है और धर्मका आचरण करनेवाला पंडित कहा जाता है, जो दूसरेकी हितकी कहे वही वक्ता है, जो दूसरोंका सन्मान करै वही दाता है॥ २ ॥

और नीतिमें भी कहा हैः—

यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥ ३ ॥

यौवन १, जीना २, मन ३, शरीरकी छाया ४, धन ५, स्वामिता ६ ये छही बडे चंचल हैं अर्थात् स्थिर होकर नहीं रहते हैं ऐसा जान पुरुष धर्ममें रत हो॥ ३ ॥

भर्तृहरिने कहा हैः—

यौवनं जरया ग्रस्तमारोग्यं व्याधिभिर्हतम्।
जीवितं मृत्युरभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा॥ १ ॥

यौवन जरा अवस्था करके ग्रसा है, आरोग्यता व्याधियों करके हत हो रही है, जीवित मृत्यु करके ग्रसी है, एक तृष्णाही उपद्रवसे रहित है॥ १ ॥ हे राजन्! काम और क्रोध ये दोही जीवोंके महान् शत्रु हैं। दुर्वासा ऋषि ज्ञानी भी थे तबभी क्रोधके वशमें होकर नानाप्रकारकी विपदा उनको भी भोगनी पडी और कामके वशमें होकर इंद्रादिक देवतोंको भी महान् कष्ट हुआ इसलिये तुम पहले कामक्रोधरूपी शत्रुओंको जय करो तब मैं आपको सर्वजीत कहा करूँगी। माताके वचनोंको सुनकर राजाको भी बडा वैराग्य हुआ और कामादिकोंके जय करनेमें यत्न करने लगा॥ २८ ॥

वैराग्याश्रम कहते हैं । हे चित्तवृत्ते ! एक महात्माकी वार्त्ताको सुनो:—

एक नगरके बाहर एक ठाकुरजीका मंदिर था । तिस मंदिरमें एक वैराग्यवान् महात्मा रहतेथे और रात्रिभर खडे होकर भजन करतेथे । एक आदमीने उनसे कहा, महाराज ! इस मंदिरमें किसी चोरचकारका डर नहीं है, फिर आप रात्रिभर किसके डरसे खडे होकर जागते रहते हैं ? महात्माने कहा, बाहरके चोरोंका भय तो हमैं किंचित् भी नहीं है, परन्तु अन्तरके चोर जो काम क्रोधादिक हैं उनका भय हमको सदैवकाल बना रहता है । न जाने किस समय वह आकर हमको दबालें, क्योंकि उनके आनेका कोई समय नियत नहीं है । उनसे बचनेके लिये हम रात्रिभर खडे रहते हैं ॥ २९ ॥

एक महात्मा जङ्गलमें रहते थे और रात्रि दिन भजन करते थे । एक पुरुषने उनसे कहा, महाराज ! आप भजन करनेमें बडा भारी परिश्रम करते हैं क्या जाने परमेश्वर तुम्हारे इस परिश्रमको मंजूर करे या न करे ! महात्माने कहा, हम अपना फरज अदा करते हैं, आगे परमेश्वरकी मरजी । वह अपना फरज अदा करै या न करै, क्योंकि जैसे राजाका हुक्म अपने भृत्यपर होता है, भृत्यका हुक्म राजापर नहीं होता है, तैसे परमेश्वरका हुक्म हमपर है, हमारा हुक्म तिसपर नहीं है । जब कि हम अपना फरज अदा करदेवैंगे, तब वह यह नहीं कहसकेगा जो तुमने फरज क्यों नहीं अदा किया । इसलिये हम बहुत परिश्रम करते हैं । हे चित्तवृत्ते ! इस कथाका यह तात्पर्य है, कि मनुष्यशरीरको धारण करके जो पुरुष अपने फरजको अदा नहीं करता है वह कदापि उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक लौकिक दृष्टान्तको तुम सुनो, जिसका तात्पर्य भी अलौकिक है:—

एक नगरके राजाने बहुतसा धन इकट्ठा किया, क्योंकि वह अति कृपण था । वह राजा धनका संग्रह करना ही जानता था, धनके सुखको वह नहीं जानता था । जिस हेतुसे वह बडा कदर्य था, इसी हेतुसे वह अपने पुत्रको भी धनका सुख नहीं लेने देता था और खरचेसे डरता हुवा अपनी युवावस्थाकी कन्याकी शादीको भी नहीं करता था । एक दिन एक नटिनी नाटक दिखानेके

लिये तिस राजाकी सभामें कहींसे आकर विराजमान होगई और अपने नाटक दिखानेके लिये राजासे तिसने प्रार्थना की । राजाने कहा, किसी दिन तुम्हारा तमाशा कराया जावैगा । नटिनी तिसके नगरमें रहने लगी । जब कि कुछ दिन वीते तब नटिनीने फिर एक दिन तमाशा करनेके लिये राजासे प्रार्थना की । राजाने कहा, अभी ठहरो फिर होगा । इसी तरह जब जब वह कहे तब तब राजा टालाटूली करदे । जब कि तिस नटिनीको वहांपर रहते बहुत काल बीतगया तव तिसने तंग होकर वजीरसे कहा, या तो राजासाहब हमारा तमाशा देखैं, नहीं तो हमको साफ जवाव देवैं, जो हम अन्यत्र कहीं जाकर अपनी जीविकाको खोजैं । वजीरने मिलकर राजासे कहा, आज रात्रिको इस नटिनीका तमाशा आप देखिये, आपको कुछ देना नहीं पडैगा, हम लोग आपसमें मिलकर इसको कुछ द्रव्य देदेवैंगे । अगर यह नटिनी यहांसे खाली चली गई तव आपकी बडी बदनामी होगी । राजाने कहा, अच्छा आज रात्रिको इसका तमाशा हो । सभाकी तैयारी हुई । रात्रिके समय जब कि सर्व सभासद आकरके बैठे, तब नटिनीने तमाशेका प्रारंभ किया । बहुत तरहके नटिनीने राजाको तमाशे दिखलाये और तमाशा करते करते जब कि दो घडी रात्रि बाकी रहगई और राजाने तिसको कुछभी इनाम न दिया, तब नटिनीने एक दोहेमें नटको समझाया ॥

दोहा ।

रात घडी भर रह गई, थाके पिंजर आय ॥
कह नटिनी सुन मालदेव, मधुरा ताल बजाय ॥ १ ॥

आगेके एक दोहेमें नट नटीके प्रति कहता है ।

दोहा ।

बहुत गई थोडी रही, थोडी भी अब जाय ॥
कहे नाट सुन नायका, तालमें भंग न पाय ॥ २ ॥

नटके इस दोहेको सुनकर तिसी समयमें एक तपस्वी जो कि तमाशा देखनेको आया था उसने अपना कंबल ओढनेका तिस नटको देदिया और

राजाके लडकेने अपनी जडाऊ कडोंकी जोडी तिसको देदी और राजाकी कन्याने हीरोंका हार गलेसे उतारकर तिस नटनीको देदिया। राजा देखकर बडा चकित हुआ। प्रथम राजाने तपस्वीसे कहा, तुम्हारे पास एकही कंबल था और कोई वस्त्र भी नहीं है, तिस कंवलको जो तुमने इसके प्रति देदिया है सो क्या समझकर दिया है? तपस्वीने कहा, आपके ऐश्वर्यको देखकर मेरे मनमें भोगोंकी वासना उठी थी, जब कि मैंने इस नटके दोहेको सुना तव मैंने विचार किया जो बहुतसी आयु तो तपस्यामें व्यतीत होगई है, बाकी थोडीसी रहगई है, अब इसको भोगोंकी वासनामें खराब मत करो। ऐसा मेरेको इसके दोहेसे उपदेश हुआ है, इस लिये मैंने अपना कंवल इसको दिया है, क्योंकि वही मेरे पास था और तो कुछ था नहीं। फिर राजाने अपने लडकेसे पूछा, तुमने क्या समझकर इतनी वेशकीमती कडोंकी जोडी नटको देदी? लडकेने कहा, मैं वहुत दुःखी रहता हूँ क्योंकि आप मेरेको किंचित्भी द्रव्य खर्चनेके लिये नहीं देते हैं। दुःखी होकर मैंने यह सलाह की थी, कि राजाको विष दिलवाकर मारडालें। इस नटके दोहेको सुनकर मेरेको यह उपदेश हुआ है, बहुत आयु तो राजाकी व्यतीत होगई है, अब वृद्ध होगया है, दो चार बरस अब बाकी रह गई है, सो यह भी जानेवाली है, पितृहत्याको मत लेवो। ऐसा विचार होनेसे मैंने कडोंकी जोडी इस नटको इनाम देदी है। फिर राजाने अपनी कन्यासे पूँछा, तुमने क्या समझकर हीरोंका हार नटीको देदिया? कन्याने कहा मैं चिरकालसे युवावस्थाको प्राप्त होचुकी हूँ और आप खरचेके डरसे मेरा विवाह नहीं करते हैं, कामदेव बडा बली है, कामकी प्रबलतासे मेरा विचार अब वजीरके लडकेके साथ निकलजानेका हुआ था। इस नटके दोहेको सुनकर मैंने भी विचार किया कि बहुतसी आयु तो राजाकी गुजर चुकी है, अब थोडीसी वाकी है, वह भी गुज-रनेवाली है, अब थोडे दिनोंके लिये पिताको कलंक लगाना मुनासिब नहीं है, ऐसा उपदेश नटके दोहेसे मेरेको हुआ है इसलिये मैंने नटीको हार दिया है, इस नटके दोहेने राजन्! आपकी जान और इज्जत बचाई है इसलिये आपको भी इस नटीके प्रति इनाम देना मुनासिब है। राजाने भी जानलिया, बात तो ठीक

है। राजाने भी बहुतसा द्रव्य तिस नटीको देकर बिदा करदिया। तत्पश्चात् राजाने वजीरके लडकेके साथ कन्याकी शादी करदी। फिर राजगद्दी पुत्रको देकर राजा वैराग्यवान् होकर आत्मविचारमें लगगया। हे चित्तवृत्ते! इस दृष्टांतका यह तात्पर्य है, जो कि पिछली आयु व्यतीत होगई है वह तो अब किसी प्रकारसे भी लौटकर वापस नहीं आसकती है, परन्तु जो बाकी बची है इसीको सार्थक करो, क्यों कि यदि बाकी भी व्यर्थ जायगी तब पछताना ही होगा। इसीपर एक कविने भी कहा है—

सवैया।

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बन्धन जीको।
बारहिं बार विषै फल खात, अघात न जात सुधारस फीको॥
आन औसान तजो अभिमान,कही सुन कान भजो सियपीको।
पाय परम्पद हाथसों जात, गई सो गई अब राख रहीको॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयका एक और दृष्टान्त तुम सुनोः—

किसी नदीके किनारेपर एक किसानका खेत था, जब कि तिसके खेतके पकनेके दिन आये तब वह खेतमें मंचानको बांधकर खेतकी रक्षा करने लगा। एक दिन वह नदीके किनारेपर दिशा फिरनेको जब गया तब वहांपर रात्रिको नदीका अरार जो गिरा तिसमें एक लालोंकी भरीहुई हंडिया भी निकलकर किनारेपर गिरपडी थी, यह भी उसी जगहमें तिस हंडियाके समीप बैठकर झाडे फिरने लगा। इतनेमें किसानकी नजर उन लालोंपर जा पडी। किसानने उनको पत्थर जानकर कपडेमें बांधकर लाकर अपने मंचानपर धर दिया और उन लालोंसे पक्षियोंको उडाने लगा। जब जब पक्षी तिसके खेतको खानेके लिये आकर बैठें तब तब वह एक एक लालको उठाकर उनको मारे, उससे पक्षी तो उड जायँ और लाल नदीमें जा गिरें। इसीतरह एक एक करके सब लाल तिसने नदीमें फेंक दिये। एक लाल जिससे कि तिसका लडका खेलता था, वह लडकेके पास रह गया। जब कि थोडासा दिन बाकी रहा

तब तिसकी स्त्री अपने लडकेको और तिस लालको लेकर घरमें चली गई। जब कि वह रसोई बनाने लगी तब उसने देखा जो नमक घरमें नहीं है और न कोई पास पैसा है, तब वह उसी लालको लेकर बाजारमें गई और एक बनियांसे तिसने कहा, इस पत्थरपर हमको नमक बदल कर देदे। वहांपर एक जवाहिरी खडा था उसने लालको लेलिया और बनियांसे एक पैसेका नमक तिसको दिलवा दिया और तिसके मंकानका पता पूंछकर कहा, इस पत्थरका जो दाम लगेगा सो तुम्हारे घरमें भेज दिया जावेगा। दूसरे दिन तिस जौहरीने तिस हीरेका दाम लगाकर एक लाख रुपैया तिसके घरमें भेज दिया। किसानकी स्त्रीने लेकर कुछ रुपयोंका तो एक बडा भारी आलीशान मकान बनवाया और सब चीजें आरामकी तिसमें जमा कीं और बाकीका रुपैया कहीं व्याजपर किसी महाजनके पास जमा कर दिया। और खेतमें जाकर अपने पतिसे कहा, बहुत दिन बीत गयेहैं, तुम अपने घरमें नहीं गये हो, आज घरपर चलकर भोजन करो, घरकी रचनाको देखो। किसान तिसके साथ जब घरके द्वारपर पहुँचा तब घरकी तरफ देखकर पीछेको हटा और कहने लगा, यह घर तो किसी महाजनका है इसमें मेरेको तू क्यों लेजातीहै? स्त्रीने कहा, महाजनका नहीं है यह घर तुम्हारा ही है। उसने कहा, हमारा तो एक छप्परका था, हमारा यह कैसे है? स्त्रीने कहा वह जो एक पत्थर लाल रङ्गका नदीमें फेंकनेसे बचगया था जिससे कि लडका खेलता था तिसके दामसे यह बना है। इतना सुनतेही वह बेहोश होकर गिर पडा। तिसको यह रञ्ज हुआ जो इतनी बडी कीमतवाले पत्थर हमने मुफ्तमें अपनी मूर्खतासे नदीमें फेंकदिये। तब तिसकी स्त्री तिसपर जल छिंटकर चेतन करके कहने लगी, जो फेंकदिये सो तो अब लौटकर नहीं आतेहैं, जो कि एक बचगया है इसीके आनन्दको भोगो, इसको भी अब अफसोस करके मत खोवो। स्त्रीकी वार्ताको सुनकर वह उठकर बैठ गया और अपने घरमें जाकर भोगोंको भोगने लगा। वैराग्याश्रम कहतेहैं, हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, इसको तुम दार्ष्टा-न्तमें घटावो। इस शरीररूपी हांडीमें श्वासरूपी लाल भरे हैं उनको तुमने पत्थर जानकर विषयरूपी पक्षियोंके उडानेमें अर्थात् विषयभोगोंमें जो फेंक

दिया है, वह तो अब फिर लौटकर नहीं आसक्तेहै। हां, जो कि बाकी बचे हैं इनको अब मत व्यर्थ विषयोंमें फेंको, किंतु आत्मविचारमें इनको खरच करके इन्हींका आनन्द लूटो। यही वार्ता "गुरुकौमुदी" में भी कही है:–

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणेक्षणे।
बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्त्तते॥ १॥

अरे जीव! हरिके नामको क्षण क्षणमें तूं भज। कैसा वह नाम है, कल्याणका एक मंदिर है। जब कि बाहरको श्वास निकलता है तब तिसके भीतर आनेका कौन विश्वास है आवे या न आवे (१)॥ ३१॥

हे चित्तवृत्ते! महाभारतमें एक छोटासा इतिहास कहा है उसको भी तुम सुनो:–

एक द्विज कहीं विदेशको जाता था, रास्ता भूलकर वह एक सघन बनमें जा निकला। वह सघन वन बडा भयानक अर्थात् डरावनेवाला था। क्योंकि तिस वनमें चारों तरफसे बडे भयानक शब्द होते थे, मांसाहारी सिंहादिक जीव तिसमें घूमरहे थे, बडे भारी हाथियोंके झुंडोंके झुंड तिस वनमें घूमरहे थे और चारों तरफ बडे भयानक रूपवाले सर्प भी तिस बनमें घूमरहे थे। उन भयानक जीवोंको देखकर वह द्विज भयभीत होकर इधर उधर दौडने लगा अर्थात् अपनी रक्षाके लिये स्थानको खोजने लगा। तब उसको सामनेसे आतीहुई एक पिशाचिनी देख पडी, जिसने बडी बडी पाशोंको अपने हाथमें लिया है।

फिर वह द्विज क्या देखता है, पर्वतोंके समान पांच शिरोंवाले सर्प भी तिस सघन वनमें घूमरहे हैं। उन सर्पोंसे भयभीत होकर यह द्विज जब कि एक तरफको चला, तब तिसने एक कुआँ देखा। जिसके भीतर अन्धकार भरा है और ऊपरसे वह तृणकरके आच्छादित है और तिसके भीतर अनेक प्रकारकी बेलें लटक रही हैं। द्विजने विचारा, इस कुएंके अतिरिक्त और कोई भी स्थान इस वनमें नहीं है जहां पर कि, मैं छिपकर अपनेको इन भयानक जीवोंसे बचाऊं। तब वह द्विज कुएंके ऊपर जो बेल थी तिसको पकडकर

नीचेकी तरफ अपना शिर करके तिस कुएंमें लटक रहा । थोडी देरके पीछे जब कि, नीचेकी तरफ तिसने देखा तब एक बडा भारी सर्प कुएंमें बैठा हुआ तिसको दिखाई पडा। ऊपरको जब देखा तब एक हाथी बडा बली खडा हुआ तिसको दिखाई पडा । कैसा वह हाथी है, छह हैं मुख जिसके, श्वेत और श्याम है वर्ण जिसका अर्थात् आधा शरीर तिसका श्वेत है और आधा शरीर तिसका श्याम है और जिस वेलिको वह द्विज पकडे हुए हैं तिसको वह हाथी खा रहा है, फिर वह द्विज क्या देखता है, दो बडे भारी मूसे तिस बेलिकी जडको काट रहे हैं । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं । हे चित्तवृत्ते ! यह जीवरूपी तो द्विज है और संसाररूपी सघन बन है । अपने स्वरूपसे भूलकर तिस बनमें यह घूम रहा है और कामक्रोधादि-रूप भयानक जीव तिस वनमें घूम रहे हैं और स्त्रीरूपी पिशाची भोगरूपी पाशको लेकर इसको फँसानेके लिये सम्मुख चली आती है । तिस संसार-रूपी वनमें गृहस्थाश्रमरूपी सर्प है, आयुरूपी वल्लीको पकडकर यह जीव तिसमें लटकरहा है, कालरूपी सर्प तिस कुएँमें बैठा हुआ इसकी तरफ देख रहा है और दिनरात्रिरूपी दो मूसे इसकी आयुरूपी वल्लीको काट रहे हैं और वर्षरूपी हाथी इसकी आयुरूपी वल्लीको खा रहा है । षट् ऋतु तिस वर्षरूपी हस्तीके छह मुख हैं और शुक्ल कृष्ण दो पक्ष तिसके दो वर्ण हैं । ऐसे कष्टमें प्राप्त हुआ भी यह जीव वैराग्यको प्राप्त नहीं होता है, विना वैराग्यके और किसी प्रकारसे भी इसका छुटकारा नहीं है ॥ ३२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयका एक और दृष्टान्त तुमको सुनाते हैं:—

एक नदीमें एक सर्प और एक मेडक दोनों बहे जाते थे । सर्पने मेडकको अपने मुखमें पकडलिया और तिसको खानेके लिये किनारेकी तरफ लेचला । इधर तो मेडक तिस सर्पके मुखमें पकडा हुआ भी मुखको फाडकर मच्छरोंके खानेकी इच्छा करता है ! मूर्ख यह नहीं जानता कि, मैं तो आपही दूसरेका आहार हो रहा हूं, न माद्धम घडी पलमें खायाजाऊंगा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टान्त है अब दार्ष्टान्तको सुनो—यह जीवरूपी तो मेडक है और कालरूपी सर्पके मुखमें पकडा हुआ है । यह माद्धम नहीं कि; काल इसको किस घडी

पलमें खा डालता है, तब भी यह मूर्ख विषयरूपी मच्छरोंके खानेकी इच्छा करता है अपनी तरफ नहीं देखता है, जो कि, मैं आपही दूसरेका खाद्य होरहाहूँ, किञ्चिन्मात्र भी वैराग्यको यह नहीं प्राप्त होता है । इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा ॥ ३३ ॥

वैराग्याश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! एक और वैराग्यवान्के दृष्टान्तको सुनोः—

एक राजाने दूसरी विलायतके राजापर चढाई की, दोनों राजोंका परस्पर घोर युद्ध होने लगा । जिस राजापर चढाई की गई थी वह राजा तिसी घोर युद्धमें मारा गया और उसके देशको दूसरे राजाने अपने कब्जेमें करलिया । जब कि, कुछ दिन तिस राजाको वहांपर रहते बीते, तब तिसका अपने देशको जानेका विचार हुआ । राजाने लोकोंसे पूछा कि, इस राजाके कुलमें कोई है ? लोकोंने कहा, इस राजाके वंशमें तो कोई भी नहीं है, परन्तु इसका गोतिया एक मनुष्य है । राजाने पूंछा, वह कहां पर रहता है ? लोकोंने कहा, वह संसारको त्याग करके श्मशानोंमें रहता है । राजाने तिसको बुला भेजा तो भी वह नहीं आया । जब कि, दो चार दफा बुलानेपर भी वह नहीं आया तब राजा पालकीमें सवार होकर आपही तिसके पास गये और उससे भेंट करके कहा, हमसे कुछ मांगो, जिस वस्तुकी तुमको इच्छा हो वही मांगो । यदि राज्यकी इच्छा हो तो राज्यको मांगो, हम तुमको देवैंगे । उसने कहा, हमको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है । जब कि, राजाने बहुतसा आग्रह किया कुछ मांगो कुछ मांगो तब तिसने राजासे कहा, इतनी वस्तु हमको चाहिये यदि आपके पास हो तो हमको दीजिये । एक तो वह जीना जिसके साथ मरना न हो, दूसरी वह खुशी जिसके साथ रञ्ज न हो, तीसरी वह जवानी जिसके साथ बुढापा न हो, चौथा वह सुख जिसके साथ दुःख न हो। ये चार वस्तु हमको चाहियें । राजाने कहा, इन चारोंमेंसे एकके देनेकी भी मेरी सामर्थ्य नहीं है। ये सब तो मनुष्यमात्रके पास नहीं हैं, किन्तु यह सब ईश्वरकेही पास हैं । वही देसक्ता है, दूसरा कोई भी दे नहीं सक्ता है । तब तिसने कहा, मैंने भी परमेश्वरका ही आश्रयण किया है, अनित्य पदा-

थोंको मैं नहीं चाहताहूँ। राजा लौटकर चले आये। हे चित्तवृत्ते! यह वैराग्यका फल है, जो राज्य मिलै और तिसको ग्रहण न करै। ऐसे जो कि, वैराग्यवान् महात्मा हैं वही संसारमें जीवन्मुक्त सुखी हैं॥ ३४॥

हे चित्तवृत्ते! एक और महात्माके वैराग्यका हाल सुनो—एक महात्मा देशाटन करते फिरते थे, एक दिन वह कुछ रात्रिके बीत जानेपर एक नगरके द्वारपर पहुँचे। आगे नगरका फाटक बन्द होगया था। महात्मा बाहर फाटकके पडे रहे। उस नगरका राजा मरगया था। राजाको संतति भी नहीं थी और न कोई तिसके कुलमें ही था। मंत्रियोंने आपसमें यह सलाह करी थी कि, जो पुरुष प्रातःकाल आकरके नगरके फाटकको हिलावै उसीको राजगद्दीपर बिठा देना चाहिये। इधर तो मन्त्री लोक रात्रिको तिस फाटकके भीतर मिलकर सब पडे रहे और उधर फाटकके बाहर महात्मा आकर पडे रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब महात्मा फाटकके द्वारको हिलाने लगे, क्योंकि वह पहले दिनके भूखे थे। उनको भूखने सताया था। मंत्रियोंने तुरन्त फाटकको खोल दिया और उनको भीतर लेकर स्नान कराय सुन्दर वस्त्र पहराकर राजसिंहासनपर बैठाय दिया और कहा, आप हमारे अब राजा होगये हैं, हुक्म करिये। महात्माने कहा, हमारी जो दो लँगोटी हैं उनको धोकर सुखाकर एक सन्दूकमें धरकर तिसको ताला लगा दीजिये और जितना कि राजकाज है उसको आप अपनी बुद्धिमानीसे करिये, हमसे कुछ भी न पूंछिये। घाटे बाढेके मालिक तुमको ही होना पडेगा। हम तो दो रोटी खा लेवैंगे और कुछ काम नहीं करेंगे। मन्त्रीलोक सब राजकाज करने लगे। महात्मा राजसिंहासन पर बैठे भजन करते रहे। इसी तरह जब कुछ काल व्यतीत होगया तब एक और राजाने तिस राज्यपर चढाई की। मंत्रियोंने महात्मासे कहा, एक शत्रुने राज्यपर आक्रमण किया। महात्माने कहा, उस सन्दूकको खोलो जिसमें हमारी लंगोटियें रक्खी हैं। वजीरोंने खोल दिया। महात्माने अपनी लंगोटियें बांधलीं और कहा, हमने चार दिन इस गद्दीपर बैठकर हलवा पूरी खा ली है और चार दिन दूसरा राजा खा लेवै, हम तो जाते हैं, घाटा बाढा तुम्हारा रहा। ऐसा कहकर महात्माने चल दिया। हे चित्तवृत्ते! वैराग्यवान् महात्मा किसी पदार्थमें

आसक्त नहीं होते हैं । राजसिंहासन और भिक्षाटन दोनों उसकी दृष्टिमें बराबर हैं ॥ ३९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! संसारमें तीन तरहके पुरुष हैं, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ । उत्तम पुरुषोंके लिये तो शास्त्रका एक वाक्यही सुनना बहुत है, और मध्यम पुरुषोंके लिये सब शास्त्र हैं और कनिष्ठोंके लिये सब निष्फल है । सो प्रथम हम तुमको उत्तम अधिकारीके दृष्टान्तोंको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! एक घोडेका सवार कहींको जाता था चलते चलते जब कि, वह थक गया, तब एक ग्रामके बाहर एक मंदिरके समीप वह घोडेपरसे उतरकर एक वृक्षके नीचे बैठकर सुस्ताने लगा और घोडेको तिसने वृक्षके साथ बांध दिया और इधर उधर देखने लगा । इतनेमें मंदिरकी तरफ जब कि, तिसकी दृष्टि पडी तब बहुतसे आदमी तिसको मंदिरमें बैठे हुये दिखाई पडे । एकसे तिसने पूछा मंदिरमें इतने आदमी क्यों जमा हुए हैं ? तिसने कहा मंदिरमें वेदान्तकी कथा होती है, तिस कथाको सुननेके लिये जमा हुएहैं। वह सवारभी भीतर कथा सुननेके लिये उन आदमियोंमें जाकर बैठ गया और कथाको सुनने लगा । उस दिन दैवयोगसे वैराग्यका प्रकरण चला हुआ था और वक्ताजी संसारको दुःखरूपता करके श्रोतोंके प्रति दिखला रहे थे । तिस कथाको सुनकर तिस सवारको बडा वैराग्य हुवा । जब कथा समाप्त हुई तब उस सवारने बाहर आतेही घोडा एक आदमीको देदिया और बाकीका भी सब असबाब उसने उसी जगह लोकोंको बांट करके विरक्त होकर चल दिया । बारह बरस तक वह विरक्त होकर देशान्तरमें रमण करता रहा और बारह बरसके पीछे दैवयोगसे फिर वह उसी रास्तासे आनिकला और उसी वृक्षके नीचे बैठकर सुस्ताने लगा । और मंदिरमें लोकोंकी भीडभाडको देखकर एक आदमीसे पूँछा इस मंदिरमें पुरुषोंकी भीडभाड क्यों होरही है ? तिसने कहा कथा होती है कथाके श्रोता लोकोंकी भीडभाड होरही है । सवार विरक्तने पूँछा ये श्रोतालोक कबसे तिस कथाको सुनते हैं और वह वक्ता कबसे कथाको सुनाता है ? उसने कहा वक्ता तो बीस बरससे इस मन्दिरमें कथा

कहता है और श्रोतालोगोंका कुछ ठीक नहीं है कोई दश बरसका कोई बीस बरसका कोई पांच सात बरसकाही है । विरक्तने कहा, हमने तो एकही दिन इसकी कथाको सुना था, हमारे मुँहपर शास्त्रका एकही चपेट लगा जिसके लगनेसे आजतक हमारा होश बिगडा है, धन्य ये चिरकालके श्रोतालोक हैं जो नित्यही शास्त्रकी चपेटोंको अपने मुखपर लगवाते हैं और लज्जित नहीं होते हैं । ऐसे कहकर वह चल दिया । हे चित्तवृत्ते ! वह उत्तम अधिकारी था, जिसको एक दिनकी कथा श्रवण करनेसे वैराग्य उत्पन्न होगया ॥ ३६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और उत्तम अधिकारीकी कथाको मैं तुम्हारे प्रति सुनाता हूँ. तू सावधान होकर सुन:—

एक नगरमें किसी मंदिरमें नित्यही कथा होती थी और बहुतसे श्रोता-लोकभी वहांपर कथाके समय पर जमा होते थे, एक बनियांभी नित्यही कथा सुननेके लिये तिस मंदिरमें जाता था । एक दिन इधर तो बनियां कथा सुन-नेके लिये मंदिरमें गया और उधर तिसके पीछे तिसकी दूकानपर एक ग्राहक कुछ सौदा लेनेको पहुँचा । उसने बनियांके लडकेसे पूंछा तुम्हारे पिता कहांको गये हैं ? उसने कहा कथा सुननेको गये हैं । उस खरीददारने कहा हमको कुछ सौदा लेना है, तुम जल्दी जाकर अपने पिताको बुला लावो । लडकेने मंदिरमें जाकर अपने पिताके कानमें कहा एक आदमी दूकानपर सौदा लेनेके लिये आपको बुलाता है । पिताने कहा तुम जाकरके तिससे कह देओ अभी आते हैं । लडकेने जाकरके कहदिया अभी आते हैं । जब कि, वह थोडी देर तक न आया तब तिस ग्राहकने लडकेसे कहा तुम जल्दी अपने पिताको बुला लाओ नहीं तो हम दूसरी जगहसे सौदा खरीदकर लेवैंगे । फिर लडकेने जाकरके पिताके कानमें कहा लाला ! वह उत्ताया हुआ है, वह कहता है जल्दी आकर हमको सौदा देवें, नहीं तो हम दूसरी जगहसे खरीदकर लेवैंगे । तिसके पिताने कहा रोज तो यह पंडित थोडीसी कथा कहता था मगर आज तो इसने बडा रामधाणा छोडदिया है, तुम चलो मैं आता हूँ । लडकेने आकर ग्राहकसे कहा अभी आते हैं. फिर तिसने लडकेसे कहा तुम अबकी बार जाकर

उसको कह दो यदि नहीं आना हो तो हमको जवाब देदे हम और जगहसे खरीद करलेवें। लडकेने फिर जाकर बापके कानमें कहा लाला जल्दी चलो नहीं तो वह जाता है। तिसके बापने और दो चार गाली पंडितको देकर कहा तुम चलो मैं अभी आताहूँ। लडका दो तीन मिनट वहांपर खडा होगया उस उमय ऐसी कथा होती थी कि, भगवान् उद्धवसे कह रहे थे हे उद्धव! सब प्राणियोंमें एकही आत्माको तुम जानो, सो आत्मा मैं ही हूँ मेरेसे भिन्न कोई भी जीव नहीं है, इसलिये किसी प्राणीमात्रसे भी विरोध मत करो। इतनी कथा सुनकर लडका जब दूकानमें आकर बैठा तब एक गैया आकर उसके अनाजके दौरेमेंसे अन्नको खाने लगी, लडका मनमें विचार करता है जब कि इसका और हमारा आत्मा एकही है तब हम किसको हटावें। इतनेमें तिसका बाप भी कथासे उठकर दूकानकी तरफ चला। दूरसे तिसने देखा गैया तो अनाज खारही है और लडका देख रहा है गैयाको हटाता नहीं है। तब वह दूरसेही गाली देने लगा, समीप आकर तिसने एक लाठी गैयाकी पीठ पर जोरसे मारी गैया तो भाग गई, परन्तु लडका चिल्लाकरके रोने लगा। बापने कहा मैंने तो गैयाको लाठी मारी है, तुम क्यों चिल्लाकर रो उठे हो? लडकेने कहा आज जो कथामें निकला था कि, सब प्राणियोंमें एकही आत्मा है। मैं उसका विचार कर रहा था और मेरे आत्माका गैयाके आत्माके साथ अभेद होरहाथा इसलिये वह लाठी हमको लगी है। इतना कहकर लडकेने जब कुडता उतार कर अपनी कमर बापको दिखलाई तब उसकी कमर पर लाठी लगनेका निशान पडगया था, बापने गुस्सेमें आकर कहा अरे मूर्ख! वहांकी कथा वहां परही छोडी जाती है। क्या कोई तुम्हारी तरह साथ बांध लाता है। लडकेने कहा जोहुआ सो हुआ अब हमारा रास्ता दूसरा है, तुम्हारा रास्ता दूसरा है। इतना कहकर लडका वहांसे चलदिया। हे चित्तवृत्ते! वह लडका उत्तम अधिकारी था इसीवास्ते उसको एकही वाक्य श्रवणं करनेसे पूरा बोध हो गया था और तिस कथाके सुननेवाले मध्यम अधिकारी थे क्योंकि यत्किंचित् धारण करतेथे और लडकेका बाप कनिष्ठ अधिकारी था जो कि, एक कानसे सुनता था दूसरेसे निकाल देता था। संसारमें प्राय: करके तो कनिष्ठही अधिकारी बहुत हैं, मध्यम तो

कोई एक है, उत्तम तो करोडोंमें भी मिलना दुर्लभ है. बिना उत्तम अधिकारीके दूसरेका मोक्ष नहीं होता है ॥ ३७ ॥

एक राजाने किसी वार्तासे प्रसन्न होकर अपने मन्त्रीको एक दुशाला इनाम दिया, मन्त्री दुशालेको लेकर जब कि, दरबारसे बाहर निकला तब तिसका नाक बहने लगा उस कालमें वजीरके पास कोई रूमाल नहीं थी, इसलिये वजीरने दुशालासेही नाकको पोंछ दिया। उस जगहपर एक मन्त्रीका द्रोही खडा देखता था उसने राजासे जाकर कहा आपने जो वजीरको इनाममें दुशाला दिया है तिस दुशालेको तुच्छ समझ कर वजीरने तिससे नाक पोंछ दिया है। राजाने वजीरको बुलाकर डाटा और नौकरीसे निकाल दिया। अर्थात् वजीरीसे उतार दिया। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टांतमें परमेश्वरने जो जीवको मनुष्यशरीररूपी दुशाला दिया है तिसके साथ जो विषयभोगरूपी नाकको पोंछता है तिसका आदर नहीं करता है,जो यह शरीररूपी दुशाला मोक्षकी प्राप्तिका साधन है उसको परमेश्वर मनुष्यपदसे उतार कर पशुआदिक योनियोंमें वारवार फेंकता है, क्योंकि यह शरीर वैराग्यकी प्राप्तिका साधन है भोगोंमें राग करनेका साधन नहीं है ॥ ३८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टान्तको तुम सुनो, यह दृष्टान्तभी वैराग्यका उत्पादक है:—

एक राजाके कोईभी पुत्र नहीं था, और अनेक प्रकारके यत्नोंके करनेसे भी तिसके पुत्र जब कि उत्पन्न न हुआ तब राजाने मनमें विचारा, कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे राज्यभी मेरे पीछे बना रहे और कोई एक पुरुष इसका मालकभी न होने पावै; राजाने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि पांच मन्त्री मिलकर राज्यका प्रबन्ध हमेशा किया करें। उनमें एक मन्त्री प्रधान बनाया जावे, वह सवेरे सारे नगरमें घूमकर प्रजाके हालको देखा करे और छह महीनोंके पीछे वह मन्त्री नदी पार कर दिया जाय और एक नया बनाया जावे। फिर दूसरेको पांचोंमें प्रधान बनाया जावे। अब येही प्रबन्ध राजाने जारी करदिया। जो प्रधान बनाया जावे वह छह महीनोंके पीछे नदीपार किया जावे

जब कि, वह नदी पार जंगलमें जाय वहांपर विना खानेसे दुःख पाकर मर जाय इसीतरह बहुतसे मन्त्री जब नदी पार किये गये, तब एक मन्त्री जो प्रधान बना वह बडा चतुर था और जो प्रधान बनता था उसको सब तरहके अखत्यारात मिल जाते थे। उस मन्त्रीने नदीपार बहुतसे मकान और बगीचे तथा कुएँ वगैरह बनवादिये और आरामदारीके लिये सब प्रकारके सामान वहांपर जमा करादिये। जब कि छह महीने पूरे हुए तब वह वजीर नदीके पार जाकर जैसे कि, इसपार आनन्द करता था वैसेही उसपारभी आनंद करने लगा। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाइये। यह मनुष्य जन्म छः महीनेकी वजीरी है जो कि, मूर्ख हैं, वह इसको विषयभोगोंमें लगाकर छः महीनेरूपी अपने पदको व्यतीत कर देते हैं। जो कि, विचारवान् हैं, वह परलोककी सामग्रीकोभी साथ २ जमा करते रहते हैं। नदीपार कौन है लोकान्तरमें जन्मान्तरका होना, लोकान्तरमें जन्मान्तरमें जाकर फिर वहां परभी आनन्दकोही प्राप्त होते हैं; सो विना वैराग्यके लोकान्तरके साधन जमा नहीं हो सकते हैं, इसलिये वैराग्यको आश्रयण करनाही मनुष्यजन्मका मुख्य प्रयोजन है॥ ३९॥

हे चित्तवृत्ते! वैराग्यवान् दो और महात्माओंके दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक नगरके बाहर नदीके किनारेपर एक कुटी बनाकर दो महात्मा बडे वैराग्यवान् रहते थे और किसीभी राजा बाबूके द्वारपर नहीं जाते थे। अपनी भिक्षा मांगकर निर्वाह करते थे। प्राणधारणके अतिरिक्त जिनका और कोईभी व्यवहार नहीं था। लोकोंमें उनके गुणोंकी बडी चर्चा फैली, क्योंकि वह बडे भारी त्यागी थे। राजाके दरबारमेंभी उनके त्यागकी चर्चा फैली। तब राजाके मनमेंभी उनके दर्शन करनेकी इच्छा हुई। एक दिन राजाभी पालकी पर सवार होकर उनके पास गये, आगे उसीवक्त वह महात्मा भिक्षा मांगकर लाये थे और हाथ पांव धोकर खानेको बैठे थे। राजाको आते हुए दूरसे जब उन्होंने देखा तब आपसमें विचार किया, इस राजाकी श्रद्धाको हटाना चाहिये नहीं तो राजाके संगसे वैराग्य ढील हो जायगा। ऐसा विचार

करके जब कि, राजा समीपमें आगये तब वह दोनों आपसमें एक रोटीके टुकडेपर लडने लगे । एक तो कहे तुमने रोटी अधिक खाई है, दूसरा कहे तुमने अधिक खाई है, राजा उनकी लडाईको देखकर दूरसेही लौट गया । राजाने जान लिया यह दोनों कँगले हैं, जो एक रोटीके टुकडेपर परस्पर लडते हैं । हे चित्तवृत्ते ! पूर्ण वैराग्यवान् राजोंसे भेट नहीं करते हैं । और न तिनका अन्नही खाते हैं । जो कि, दाम्भिक है, कामनासे भरे हैं वह अनेक प्रकारका झूठा त्याग दिखलाकर राजा वावुओंको अपना सेवक वनाते हैं। और वहुतसे ऐसे भी हैं, राजा वावुओंको फँसानेके लिये वीचमें दलालोंको डाल कर उनको अपना पशु बनालेते हैं वही नरकगामी होते हैं ॥ ४० ॥

हे चित्तवृत्ते ! राजोंकी संगति वैराग्यवान्के लिये वहुत ही बुरी है । जिसको दृढ़ वैराग्य है, वह राजोंसे दूर भागता है । इसमें तुमको दृष्टान्त सुनाते हैं:—

एक महात्मा वैराग्यवान् एक नगरके वाहर वनमें रहतेथे । और उसी नगरके राजाके मंदिरोंमें राजाके पास एक और महात्मा रहते थे । दैवयोगसे वह राजा और तिसके पास रहनेवाले महात्मा दोनों मरगये, कुछ दिन पीछे एक दिन उन वनवासी महात्माके समीप गरीब सत्सगी दो चार बैठेथे । इतनेमें अकस्मात्ही वह महात्मा हँसने लगे, तब उन सत्संगियोंने पूंछा महाराज ! बिना ही प्रयोजनके आप आज क्यों हंसे हैं । महात्माने कहा विना प्रयोजनके हम नहीं हंसे हैं । एक प्रयोजनको लेकरके हम हंसे हैं । राजाके पास जो महात्मा रहतेथे वह और राजा दोनों मृत्युको प्राप्त होगये हैं । राजा तो उत्तम गतिको गया है । क्योंकि, राजाका मन निन्यही महात्मामें और उनके वाक्योंमें लगा रहताथा और वह महात्मा अधोगतिको गये हैं । क्योंकि राजाका अन्न खाकर उनका मन नित्यही राजामें और राजसम्बन्धी भोगोंमें रहता था. हे चित्तवृत्ते ! राजोंकी संगतिका ऐसा अनिष्ट फल है इसीवास्ते वैराग्यवान् पुरुषके लिये राजाका अन्न और राजाकी संगतिको करना मना किया है ॥ ४१ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और महात्माके दृष्टान्तको सुनोः—

पूर्वकालमें एक विरक्त महात्मा एक लंगोटीको धारण करके कई बरसतक गंगाके तीरपर विचरते रहे. तत्पश्चात् काशीमें आकर उन्होंने निवास किया। जब कि, उनको दश पांच बरस काशीमें व्यतीत होगये तब लोक उनके पास बहुतसे जानेलगे और हरएक आदमी उनको भोजनके लिये अपने घरमें ले जाया करें । तब उन्होंने देखा लोकोंके घरोंमें जानेसे तो बहुत विक्षेप होता है, कोई ऐसी युक्ति करैं जो लोक हमको अपने घरोंमें न लेजाया करें। ऐसा विचार करके उन्होंने लंगोटियोंकोभी फेंक दिया । लंगोटियोंके फेंकनेसे उनका मान आगेसे भी सौगुणा अधिक बढगया । धीरे २ अब राजा बाबू उनके चेले होने लगे । थोडेही दिनोंमें हजारों चेले होगये और दिनरात चेलोंकी भीड लगने लगी । अब तो केवल नंगाही रहना रहगया बाकीके सब गुण जाते रहे । क्योंकि, रात दिन उनका मन राजोंकी बडाईमें और मुलाकातमें लगा रहै । एक दिन एक महात्मा उनके पास ऐसे वक्तपरही गये जिस वक्त वे अकेले पडे थे, महात्माने पूँछा क्या हालचाल है ? उन्होंने कहा बवासीरकी बीमारीसे मरते हैं, महात्माने कहा लोक तो आपको सिद्ध बताते हैं, तब उन्होंने अपने चित्तका सच्चा हाल कहा, लोक मूर्ख हैं हमको तो सैकडों वासना भरी हैं, न मालूम हम किस नीच योनिमें जन्मेंगे; हमारा तो सब वैराग्य इन धनियोंकी संगतिमें नष्ट होगया । हे चित्तवृत्ते ! निवृत्तिमार्गवालेको प्रवृत्तिमार्गवालेकी संगत खराब करदेती है ॥ ४२ ॥

चित्तवृत्ति कहती है हे विवेकाश्रम ! निवृत्तिवाला पुरुष यदि उपकार करनेके लिये धनी राजोंकी संगत करै तब तो तिसकी कुछ हानि नहीं है। विवेकाश्रम कहते हैं तब भी तिसकी बडी हानि है । इसीमें एक दृष्टान्तको दिखाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! एक राजाके दरबारमें एक भांडने तमाशा किया और अनेक प्रकारके स्वांग राजाको दिखाये, राजाने भांडसे कहा एक विरक्त अवधूत महात्माका भी स्वांग हमको दिखावो । भांडने कहा फिर कभी हम आपको

विरक्तका स्वांग दिखलावेंगे। जब छह महीना व्यतीत होगया और राजा वह बात भूल गये तब वह भांड एक दिन एक लंगोटी बांधकर और बदनमें धूली लगाकर अतीव विरक्तकी सूरत बनाकर नगरसे थोडी दूर नदीके किनारे जंगलमें आकर आंख मूँदकर बैठ गया। और जो कोई आवै उससे बातचीत भी न करे। कोई आदमी कुछ धर जाय, कोई उठा ले जाय किसीकी तरफ भी न देखै। थोडे ही दिनोंमें नगरमें तिसके महत्त्वकी बडी चर्चा उठी, अब तो हजारों आदमी तिसके दर्शनको आने लगे। राजातक उसके महत्त्वकी खबर पहुँची। राजा भी परिवारके सहित आये और आकर एक हजार अशरफियोंकी थैली तिसके आगे धर दी। तिसने राजासे कहा राजन्! इस उपाधिको उठा लीजिये, यह तो विरक्तके लिये विषके समान है, विरक्तका धर्म नष्ट करनेवाली है। राजाने कहा महाराज! किसी शुभ काममें लगा दीजिये। विरक्तने कहा राजन्! आप क्यों नहीं शुभ काममें लगा देते? हम अपने एक हाथमें थुकाकर दूसरेके मुँह पर मलते फिरैं। लेना और दिलवाना ये तो दोनों बराबर ही हैं। जो विरक्त आप नहीं लेता है दूसरेको दिलवा देता है, यह विरक्त नहीं कहा जाता है। क्योंकि, दूसरा जो देता है वह तो उस विरक्तको ही देता है तिसपर तिसकी श्रद्धा है दूसरे पर तो तिसकी श्रद्धा है नहीं, इसलिये प्रतिग्रहका लेनेवाला वह विरक्त हो जाता है। जो एकसे लेकर दूसरेको दिलवाता है वह विरक्त नहीं कहा जाता है. वह दाम्भिक कहाजाता हैं। विरक्त वही है जो न आप द्रव्यको लेता है और न दूसरेको दिलवाता है। राजाने कहा सत्य है, राजा अपनी अशरफियोंको लेकर चले आये। दूसरे दिन वह भांड भी वहांसे उठ गया और अपने घरमें जाकर भांडोवाली पगड़ी बांधकर और लम्बा अँगरखा पहनकर राजाके दर्बारमें आकर कहने लगा महाराजकी जै जैकार हो इनाम मिले। राजाने कहा कैसा इनाम? भांडने कहा कल जो आपने विरक्तका स्वांग देखा है और आप परिवारके सहित हमारे पास आये थे और एक हजार अशरफियोंकी थैली आपने मेरे आगे धरदी थीं मैंने तिसको नहीं लिया था और आपको विरक्तका स्वरूप दिखला दिया था। उसी स्वांगका मैं इनाम मांगता हूँ। राजाने कहा जबकी हमने तुम्हारे आगे

एक हजार अशरफी धर दी थीं, तब तुमने क्यों न लीं ? इतने भारी द्रव्यका त्याग करके अब थोडासा द्रव्य इनाम मांगनेको आया है, यह कौन अकलकी बात है। भांडने कहा राजन्! आप तो सत्य कहते हैं, यदि मैं उस वक्त वह द्रव्य ले लेता तब फिर आपके पास इनाम मांगनेको न आता परन्तु दो बात इसमें होजाती। एक तो दम्भ साबित होता दूसरा स्वांगको बट्टा लग जाता फिर वह विरक्तका स्वांग पूरा न उतरता, इन दो बातोंको हटानेके लिये हमने आपसे अशरफियोंकी थैलीको नहीं लिया था। इसी वास्ते वह स्वांग निर्दोष पूरा उतर गया। राजा उसकी वार्त्ताको सुनकर बडे प्रसन्न हुए और तिसको बहुतसा इनाम दिया। हे चित्तवृत्ते! स्वांगका धारण करना तो सहज है परन्तु पूरा उतारना कठिन है॥ ४३॥

हे चित्तवृत्ते! एक नगरके समीप एक जंगलमें महात्मा रहते थे, एक दिन राजा उनके पास गये और कुछ द्रव्यको राजाने उनके आगे धरकर कहा महाराज! कोई संसारसे छुडानेवाली वार्ताका मेरेको उपदेश करिये। महात्माने कहा राजन्! इस द्रव्यके तो हम अधिकारी नहीं हैं, इस द्रव्यको तो आप किसी अधिकारीके प्रति दे दीजिये। क्योंकि, हम जंगलमें रहते हैं इसके रखनेकी जगह हमारे पास नहीं है। फिर इस द्रव्यके पीछे कोई चोर हमारी जानकोही लेवैगा, हम लोगोंके लिये यह अनर्थका हेतु है। जब तुम इसको उठा लेवोगे तब हम तुमको उपदेश करेंगे। राजाने द्रव्यको जब उठा लिया तब महात्माने कहा राजन्! भारी उपदेश हमारा यही है जो हरवक्त मरनेको याद रखना। राजाने कहा मरनेको याद रखनेसे क्या होगा ? महात्माने कहा पुरुषसे जितने पाप होते हैं वह सब मरनेको भुलानेसे ही होते हैं, जिनको हरवक्त मरना याद रहता है उनसे कोई पाप नहीं होता है। वैराग्यका मूल कारण मरनेको याद रखना ही है, राजाने कहा ठीक॥ ४४॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टान्त तुमको सुनाते हैं:—

एक वैराग्यवान् महात्मा कहींको जाते थे, रास्तामें एक नदी आगई तिस नदीसे पार होनेके लिये बहुतसे लोक नावमें बैठे थे, महात्मा भी उनके साथ तिस नावमें बैठ गये, जब कि नाव किनारेसे खुलकर नदीके बीचमें

पार जानेके लिये चलने लगी तब तिस नावमें एक बद आदमी बैठा था वह उस महात्माको हँसी दिल्लगीसे मारने लगा, इस कदर उसने महात्माको मारा जो उनके खून बहने लगा। इतनेमें आकाशवाणी हुई, महात्मासे आकाशवाणीने कहा यदि आपका हुक्म हो तो इस नावको डुबो दिया जावे। महात्माने कहा हम ऐसे बुरे हैं जो हमारे सबबसे इतने आदमी नाहक डुबो दिये जायँ? फिर आकाश वाणीने कहा हुक्म हो तो इस बदमाशको डुबो दिया जाय। महात्माने कहा मैं नहीं चाहता हूँ जो कि मेरे साथका डुबोया जाय। फिर आकाशवाणीने कहा कुछ न्याय तो होना चाहिये। महात्माने कहा इसकी बुद्धि धर्ममें हो जावे यही न्याय हो, तुरन्त उसकी बुद्धि धर्ममें हो गई, वह महात्मासे अपनी भूलको बख्शाने लगा। हे चित्तवृत्ते! जो वैराग्यवान् पुरुष है वह किसीका भी बुरा नहीं चाहता है॥ ४९॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयका और भी दृष्टान्त तुमको सुनाते हैं:—

एक नदीमें एक नाव परले किनारेको जाती थी, तिसमें बहुतसे आदमी बैठे थे एक महात्मा परमहंस मुंडित शिर भी तिसमें बैठे थे और उसी नावमें एक साहूकार और एक भांड भी बैठा था। जब कि, नाव चली, तब भांड तमाशा करने लगा और लोगोंको हँसानेके लिये महात्माके शिर पर अपने जूतेको फेरने लगा। बल्कि दो चार जूते तिसने उन महात्माके शिर पर लगा भी दिये महात्मा तब भी कुछ नहीं बोले। उस साहूकारने महात्माको पहचान करके उस भांडको डाटा और महात्मासे कहा मैंने आपको पहँचाना है आप फलाने राजा हैं राज्य छोडकर आपने फकीरी लई है, इस भांडने जो कि आपसे बुराई की है, उसको आप माफ करैं। महात्माने कहा इस भांडने कोई भी बुराई नहीं की है इसने हमारे शिरको दण्ड दिया है क्योंकि यह पहले किसीके भी आगे नहीं झुकता था, यदि इससे भी अधिक इसको दण्ड मिलता तो अच्छा होता। हे चित्तवृत्ते! इतनी बडी क्षमा होनी, यह वैराग्यका ही फल है॥ ४६॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वैराग्यवान्की कथाको सुनोः—

एक नगरके समीप वनमें कुटी बनाकर एक महात्मा रहते थे और किसी राजा बाबूसे मुलाकात नहीं करते थे किंतु भिक्षा मांगकर अपनी क्षुधाकी निवृत्ति कर लेते थे । राजाने जब लोकोंसे उनके त्यागको सुना तब राजाके भी मनमें उनके दर्शनकी इच्छा हुई । तब राजा भी पालकी पर सवार होकर उनके दर्शनको गये । जब कि, महात्माकी कुटीके समीप पहुँचे तब महात्माने अपनी कुटीका दर्वाजा बन्द करलिया। राजाने जाकर कितना ही कुटीके किवाडेको हिलाया और खोलो २ करके पुकारा परन्तु महात्माने किवाडा नहीं खोला । तब राजाने कहा आप धन्य हैं और आपका वैराग्यभी धन्य है क्योंकि आपने इस लोकको लात मार दी है । महात्माने कहा आप भी धन्य है और आपका राग भी धन्य है, क्योंकि आपने परलोकको लात मारी है । महात्माके उत्तरको सुनकर राजाको भी वैराग्य हुआ तब महात्माने किंवाड खोल दिया और राजासे कहा हे राजन् । संसारके भोगोंमें जो राग है वही इस लोक परलोकमें दुःखका हेतु है, इनसे जो वैराग्य है वही दोनों लोकोंमें सुखका हेतु है और राग ही अज्ञानका चिह्न है, सो पञ्चदशी ग्रन्थमें कहा भी है:—

रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु ।
कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरे तरोः ॥ १ ॥

चित्तकी विस्तृत भूमियोंमें अज्ञानका चिह्न पदार्थोंमें राग ही है । जिस वृक्षके कोटरमें आग लगी है तिस वृक्षको हरियालता कैसे हो सक्ती है? किन्तु कदापि नहीं ।

हे राजन् ! जिन पुरुषोंका स्त्री पुत्रादि भोगोंमें राग बना है, उनको नित्य सुखकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है । राजाने कहा महाराज ! गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री पुत्रादिकोंमें राग तो अवश्य ही कुछ न कुछ बनाही रहेगा रागका अभाव तो किसी कालमें भी नहीं होगा । तब गृहस्थाश्रमीका मोक्ष कदापि नहीं होना चाहिये । महात्माने कहा ऐसा नियम नहीं है जो

गृहस्थाश्रममें सदैवकाल स्त्रीपुत्रादिकोंमें राग ही बनारहे किसी कालमेंभी उनसे वैराग्य न हो । किन्तु ऐसा नियम तो है कि, गृहस्थाश्रममें एक न एक दुःख अवश्य बना रहता है उस दुःखके बने रहनेसे कुछ न कुछ वैराग्य भी बना रहता है । क्योंकि, विषयोंमें दुःखबुद्धि ही वैराग्यका हेतु है और विषयोंमें सुख बुद्धि रागका हेतु है । जो कि, अतीव मूढ पुरुष हैं उनको भी यत्किंचित् वैराग्य बना रहता है, परन्तु वह मन्द वैराग्य होता है । जिस क्षणमें स्त्री-पुत्रादिकोंमें कोई कष्ट आकर बना तिसी क्षणमें वह अपनेको और संसारको धिक्कार देने लगते हैं, जब कि वह कष्ट हट जाता है फिर उनका वैराग्य भी नहीं रहता है, वैराग्यका कारण गृहस्थाश्रमही है । क्योंकि जितने बडे २ महात्मा हुए हैं, जैसे रामचन्द्रजी वसिष्ठजी आदिक सबको गृहस्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ है और जितने कि बडे बडे संन्यासी हुए हैं उनको भी प्रथम गृह-स्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ है । तत्पश्चात् उन्होंने गृहस्थाश्रमका त्याग कर दिया है, विना गृहस्थाश्रमके तो किसीकी उत्पत्ति भी नहीं होती है । इसलिये गृहस्था-श्रम ही सबका मूल कारण है । और ऐसा भी नियम नहीं है, जो गृहस्थाश्रममें ज्ञान नहीं होता है । क्योंकि, जनकादिक सब गृहस्थाश्रममें ही ज्ञानी हुए हैं । ज्ञानका कारण वैराग्य है, जिसको गृहस्थाश्रममें भी सदैवकाल वैराग्य और विचार बना रहता है, उसके ज्ञानी होनेमें कोई भी सन्देह नहीं है और संन्यासा-श्रममें भी जिसका पदार्थोंमें राग बना है, उसके अज्ञानी होनेमें भी कोई सन्देह नहीं है । वैराग्यकोही आत्मज्ञानके प्रति साधनता कही है वह ब्रह्मचर्याश्रममें हो, गृहस्थाश्रममें हो, वानप्रस्थाश्रममें हो, या संन्यासाश्रममें हो, विना वैराग्यके ज्ञान नहीं होता है और ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता है, ऐसा वेदने नियम कर दिया है । हे राजन् ! जो पुरुष गृहस्थाश्रममें अनासक्त होकर उसमें कम-लकी तरह रहता है उसके मुक्तिमें कोई भी सन्देह नहीं है । इसमें जनकजीके दृष्टान्तको तुम्हारे प्रति सुनाते हैं ।

जिस कालमें व्यासजीने शुकदेवजीको राजा जनकजीके पास उपदेश लेनेको भेजा है और शुकदेवजीने द्वारपर जाकर अपने आनेकी खबर जनक-

जीको भेजी है, तब जनकजीने शुकदेवजीकी परीक्षाके लिये कहला भेजा अभी द्वार पर ठहरो । जनकजीका यह तात्पर्य था देखें इनको क्रोध होता है या नहीं । तीन दिन शुकदेवजी द्वार पर खडे ही रहे और उनको कुछ भी क्रोध न आया । तब जनकजीने चौथे दिन शुकदेवजीको भीतर बुलाया जब कि शुकदेवजी भीतर गये तब देखा कि,जनकजी स्वर्णके सिंहासन पर स्थित हैं और सुन्दर सुन्दर स्त्रियें चरण दबा रही हैं । और मधुर गीतोंको गायन कर रहीं हैं और अनेक प्रकारके भोग खान पानादिक चारों तरफ धरे हैं, बंदीगण स्तुति कर रहे हैं, जनकजीकी विभूतिको देखकर शुकदेवजीके मनमें घृणा उपजी । यह तो भोगोंमें अति आसक्त है, यह कैसे ज्ञानी होसकते हैं, जो मेरेको पिताने उपदेश लेनेके लिये इनके पास भेजा है । जनकजी शुकदेवजीके चित्तकी वार्ताको जान गये, तब जनकजीने एक ऐसी माया रची जो मिथिलापुरीको आग लग गई और बाहरसे दूत दौड आये और उन्होंने कहा महाराज मिथिलाको आग लग गई है और अब द्वार पर भी आ गई है थोडी देरमें अन्दर भी आनी चाहती है तब शुकदेवजीके चित्तमें फुरा बाहर द्वार पर तो हमारा भी दण्ड कमण्डलु पडा है कहीं जल ही न जाय । जनकजी जानगये और तिस कालमें जनकजीने इस आगेवाले श्लोकको पढा—

अनन्तवत्तु मे वित्तं यन्मे नास्ति हि किञ्चन ॥
मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन ॥ १ ॥

जनकजी कहते हैं मेरा जो आत्मरूपी वित्त धन हैं सो अनन्त है अर्थात् जिसका अन्त कदापि नहीं हो सक्ता है । इस मिथिलापुरीके दग्ध होनेसे मेरा तो किञ्चित् भी दग्ध नहीं होता है ॥ १ ॥

इस वाक्यसे जनकजीने पदार्थोंमें अपनी अनासक्ति दिखलाई । अर्थात् जनकजीने अपनी असंगताको दिखलाया । तब शुकदेवजीको पूर्ण विश्वास होगया कि जनक भी ब्रह्मज्ञानी हैं, फिर जनकजीने शुकदेवजीको उपदेश किया । महात्मा राजासे कहते हैं, यदि जनककी तरह तुम भी आसक्तिको

त्याग करके राज्य करोगे तो तुमभी मुक्त होजावोगे। हे चित्तवृत्ते ! राजाभी महात्माके उपदेशको ग्रहण करके ज्ञानवान् होगया ॥ ४७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! वैराग्यका जनक एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं। नदीके किनारे पर एक विधवा स्त्रीका मकान था और तिसके समीप राजाका भी एक बाग था। एक दिन राजा जो अपने बागमें गये तब राजाके मनमें आया यदि इस विधवा स्त्रीका मकान लेकर बागमें मिलाया जावै तो बाग बहुत बडा हो जायगा। बडा होजानेसे सुन्दर चौरस भी हो जायगा। तब राजाने तिस स्त्रीसे कहा तुम अपना मकान हमको देदेवो। स्त्रीने कहा, मेरा पति नहीं है एक लडका और एक छोटीसी मेरी लडकी है। मैं इनको लेकर कहां जाऊँगी ? मैं अपना मकान नही देऊँगी। तब राजाने अपने नौकरको हुक्म दिया इस स्त्रीको मकानसे निकाल दो। नौकरने मार पीटकर निकाल दिया। स्त्रीके पास एक गधा था वह गधेपर लडका लडकीको चढा कर रुदन करती हुई वहांसे चल पडी। जब कि, वह रोती रोती थोडी दूर गई तब वहांपर एक महात्मा खडे थे। उन्होंने स्त्रीसे पूछा तू क्यों रुदन करती है ? स्त्रीने अपना सब हाल उन महात्मासे कहा। महात्माने कहा तू हमारे साथ एक दफा राजाके पास चल, हम एक युक्तिसे राजाको समझावेंगे। स्त्री उनके साथ चलपडी जब कि महात्मा राजाके समीप गये, तब राजासे कहा महाराज ! इस स्त्रीकी इच्छा है जो थोडीसी मिट्टी मेरे मकानकी जमीनकी मुझको मिले जो मैं जहांपर जाकर मकान बनाऊँगी वहांपर उस मिट्टीको गाड कर अपने बडोंकी एक समाधि यादगारीके लिये बनाऊँगी, राजाने कहा खोद लेवे, महात्माने बहुतसी मिट्टी खोदकर एक बोरामें भरकर राजासे कहा महाराज ! इस मिट्टीके बोरेको जरा आप उठवाकर गधे पर लदवादीजिये, राजाने कहा क्या इतना भारी मिट्टीका बोरा हमसे उठाया जाता है ? जो हम इसको गधेपर लदवादें। महात्माने कहा जब कि यह मिट्टीका बोरा आपसे नहीं उठाया जाता है तब इतनी बडी जमीन और मकान आपसे कैसे उठाया जावैगा ? जो आपने इसका छीन लिया है फिर इसको किस तरहसे उठाकर आप मरती बार अपने साथ लेजावैंगे, महात्माकी वार्ताको सुनकर राजाको

भी वैराग्य होगया और तिस स्त्रीके मकानको फेर दिया, बल्कि अपना भी बाग तिसीको देदिया । हे चित्तवृत्ते ! संसारमें जो कि मूर्ख अज्ञानी हैं, दूसरोंकी जमीन और धनको अधर्मसे दवालेते हैं, क्योंकि उनको इतना भी ज्ञान नहीं है जोकि यह शरीर भी तो साथ नहीं जायगा तव और पदार्थ कैसे जायँगे ? यदि ऐसा विचार उनको हो तब क्यों दूसरोंकी जमीनको दवालेते ? वही लोक मरकर बार बार पशुयोनिमें जाते हैं और जोकि विचारशील वैराग्यवान् हैं वह ऐसा नहीं करते हैं क्योंकि वह जानते हैं धर्म अधर्म ही पुरुषके साथ जाते हैं । और सब माल धन तो मरे पीछे दूसरे तिसके वारस लेलेतेहैं इसलिये वैराग्यकाही आश्रयण करना उत्तम है ॥ ४८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! संसारमें पुरुष कौन और स्त्री कौन है ? इसपर एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं । एक राजाके घरमें सन्तति नहीं होती थी बहुतसा यत्नकरनेसे एक कन्या तिसके घर उत्पन्न हुई । वह कन्या बाल्यावस्थासेही वस्त्रोंको नहीं पहनती थी जब कि वह बडी होगई तब भी उसकी वही आदत रही वस्त्रोंको न पहरना किंतु नंगीही रहना तिसको पसन्द था । राजाने कोटिन यत्न किये तब भी तिसने वस्त्र न पहने जब कि जोरसे तिसको वस्त्र पहनाते तब तुरन्त फाड-कर फेंकदेती । एक दिन दैवयोगसे वहांपर एक महात्मा साधु आगये । उनको देखकर वह लडकी लज्जायमान होगई और तुरंत उसने वस्त्रोंको पहर लिया । तब राजाने प्रसन्न होकर अपनी लडकीसे पूछा आज क्या उत्तम दिन है ? जो आपको सुमति आगई है । भला यह तो बताओ आगे बडे २ हमने यत्न किये तब भी तुमने वस्त्रोंको न पहरा और आज एक साधुको देखकर आपसे आप तुमने वस्त्रोंको पहर लिया इसका कारण क्या है ? उस कन्याने कहा, राजन् ! स्त्रीको मर्दसे शरम लज्जा होती है स्त्रीसे स्त्रीको लज्जा नहीं होती है, जबसे मैंने होश सँभाला है, तबसे तुम्हारे नगरमें कोई भी हमको पुरुष नहीं दिखाई पडा, आज हमने एक पुरुषको देखा है उससे हमने लज्जा की है, लज्जा होनेसे मैंने कपडोंको भी पहन लिया है । हे राजन् ! मर्द नाम उसका है जिसने अपने शरीर और इंद्रियोंको अपने काबूमें कर लिया है और जिसने अपने शरीर और इंद्रियोंको अपने वश नहीं किया है वह मर्द नहीं है । सो

वैराग्यवान्से बिना दूसरा कोई भी अपने इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर-सक्ता है इसलिये वैराग्यवान् पुरुष ही मर्द है, रागवान् स्त्री है । आज मैंने एक वैराग्यवान्को देखा है इसलिये वस्त्रोंको भी मैंने पहन लिया है ॥

हे चित्तवृत्ते ! गार्गीने भी इसी वार्ताको याज्ञवल्क्यके प्रति कहा है–

आत्मपुराण ।

अहं पश्यामि विप्रेन्द्र जगदेतदपौरुषम् ।
नपुंसकमहं तद्वदहं स्त्री च पुमानहम् ॥ १ ॥

गार्गी कहती है हे याज्ञवल्क्य ! इस जगत्को मैं अपौरुष अर्थात् पुरुषसे हीन देखती हूँ, मैं ही नपुंसक हूँ, मैं ही पुरुष हूँ, मैं ही स्त्री हूँ ॥ १ ॥

नपुंसकः पुमान् ज्ञेयो यो न वेत्ति हृदि स्थितम् ।
पुरुषं स्वप्रकाश तमानंदात्मानमव्ययम् ॥ २ ॥

जो पुरुष अपने हृदयमें स्थित आत्माको नहीं जानता है, वह नपुंसक है । कैसे आत्माको ? जो पुरुषरूप है और स्वप्रकाश आनन्दरूप अव्यय है ॥ २ ॥

अयमेव पुमान् योषिन्नाहं पीनपयोधरा ।
यतः स्वस्मात्परस्तस्य पतिरस्ति स्त्रिया यथा ॥ ३ ॥

गार्गी कहती है जो पुरुष हृदयमें स्थित आत्माको नहीं जानता है वही स्त्री है, मैं पीनपयोधर स्त्री नहीं हूं क्योंकि जैसे स्त्रीका अपनेसे भिन्न पति होता है. तैसे तिसने भी अपनेसे भिन्न पति मान रक्खा है ॥ ३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो पुरुष वैराग्यसे और आत्मविचारसे शून्य है, वह पुरुष नहीं है किन्तु शास्त्रदृष्टिसे वह स्त्री है ॥ ४९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अब तेरेको एक प्रमादी धनीकी कथाको सुनाते हैं:–

दक्षिण देशके एक नगरमें धनमदांध एक बनियां रहता था, अपने तुल्य किसीको भी वह बुद्धिमान् और धनी नहीं जानता था । दिन रात्रि द्रव्यके ही कमानेके फिकरमें रहता था और कभी भी किसी साधु ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता था । दैवयोगसे एक दिन एक महात्मा उस

रास्तासे आनिकले कि जहांपर उसकी दुकान थी । महात्मा उसकी दुकानके सामने जाकर खडे होगये और तिस बनियेकी तरफ देखने लगे । वह बनियां अपने धनके मद करके ऐसा उन्मत्त था जो उसने आंखको उठाकर महात्माकी तरफ न देखा, क्योंकि धनमद बडा भारी होता है । आत्मपुराणमें कहा है:—

समर्थः श्रीमदांधोयं राजानं देवतां गुरुम् ।
अवजानाति सहसा स्वात्मनो बलमाश्रितः ॥ १ ॥

जो पुरुष समर्थ है और धनके मद करके अंधा हो रहा है, वह अपने बलको आश्रयण करके राजाको, देवताकी तथा गुरुकी भी अवज्ञा कर देता है ॥ १ ॥

समर्थो धनलोभेन परदारान् धनादिकम् ।
हृत्वा चोपहसत्यन्यान्सर्वशोच्यो नराधमः ॥ २ ॥

जो समर्थ धनी है वह धनके लोभ करके दूसरोंकी स्त्रियोंको और धनादिकोंको भी जबरदस्ती छीन लेता है और हंसता है, वही पुरुषोंमें अधम है ॥ २ ॥

मातरं पितरं पुत्रान् ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।
कर्मणा मनसा वाचा समर्थो हंति मोहितः ॥ ३ ॥

धनमदांध, समर्थ जो है सो माता, पिता, पुत्र और वेदपाठी ब्राह्मणको कर्म करके मन करके वाणी करके मारता है ॥ ३ ॥

फिर महात्माको दया आई क्योंकि महात्माका दयालु स्वभाव होता ही है महात्माने मनमें कहा इस कीचसे इसको निकासना चाहिये ऐसा विचार करके उस साहूकारसे कहा राम राम कहो, वह साहूकार बोला ही नहीं, जब कि दो तीन बार कहनेसे भी वह नहीं बोला तब महात्माने सोचा यह भारी मूर्ख है इस तरहसे यह नहीं मानेगा, इसको दण्ड दिया जावैगा तब यह मानेगा ऐसा विचार करके महात्मा नदीके तीरपर चले गये । सबेरे वह

साहूकारभी नदीके तीरपर स्नान करनेको जाताथा दूसरे दिन सवेरे जब कि साहूकार नदीपर स्नान करनेको गया तब महात्माने अपने योगवलसे अपनी उस वनियांकी तरह सूरत बनाली । वह तो अभी स्नानही उधर करने लगा इधर महात्मा तिसके घरकी तरफ आये, आगे लडकोंने देखा पिताजी आज जल्दी स्नान करके चले आये हैं, उन्होंने पूछा आज जल्दी आनेका क्या कारण है ? उन्होंने कहा आज एक ठग हमारी सूरत बनाकर आवेगा हम देख आये हैं वह नदी किनारे पर बैठा बनाता, था तुम लोगोंने होश्यार रहना अभी थोडी देरमें वह आवेगा उसको धक्के देकर निकाल देना यदि कुछ बोले तब दो चार जूता लगाना लडकोंसे ऐसा कहकर वह तो भीतर जाकर पलंग पर लेट रहे । उधर सेठजी स्नान करके घरको चले । जब कि समीप घरके पहुँचे तब लडकोंने डाटा क्यों तुम इधरको आते हो ! सेठने कहा वेटा ! मैं अपने घरको आता हूँ तुम हमारे लडके हो मैं तुम्हारा बाप हूँ आज क्या तुमको कोई पागलपना तो नहीं होगया जो तुम हमको ऐसा कठोर शब्द बोलते हो । लडकोंने कहा हम तुम्हारे लडके नहीं हैं, जिसके हम लडके हैं वह घरमें बैठे हैं तुम तो कोई बहुरूपिया हो । हमारे बापका स्वांग बनाकर हम लोगोंको वंचन करनेके लिये आयेहो । सूधी तरहसे पीछेको लौट जावो नहीं तो मार खाकर जावोगे । ज्योंही सेठ आगेको वढा त्योंही दो चार धक्के लगा दिये तब सेठने गुस्सेमें आकर ज्योंही लडकोंको गाली दी त्योंही एक लडकेने दशपांच जूते सेठके सिरपर लगादिये अब तो सेठजी भागे और राजाके पास जाकर सब अपना हाल कहा । राजाने सेठके लडकोंको बुला-कर जब पूँछा तब उन्होंने कहा हमारा बाप तो हमारे घरमें है यह तो कोई बहुरूपिया है । राजाने घरवाले उनके बापको बुलाकर देखा तो दोनोंकी एकही तरह सूरत दिखाई पडी किसी अंगमेंभी यत्किञ्चित् फरक नहीं था तब राजा बडे शोचमें पडे अब किसको सच्चा कहा जावे और किसको झूठा कहा-जावे । महात्माने कहा राजन् ! यदि यह असली सेठ है तब यह इस वार्ताको बतावें बडे लडकेकी शादीमें कितना रुपया लगा था, जब कि मकान

बना था तब मकानपर कितना रुपैया लगा था । राजाने सेठसे पूँछा सेठने कहा हमको याद नहीं है महात्माने योगबलसे सब जबानी बतला दिया जब कि वही खाता देखा गया तब वह ठीक निकला । राजाने भी सेठको झूठा करके निकाल दिया । अब तो सेठजीका सब धनका मद उतर गया और नदीके किनारे पर जाकर अपने भाग्यको धिक्कार देकर रोने लगे । दूसरे दिन महात्मा सवेरे नदीपर स्नान करनेको जब गये तब देखा सेठजी रुदन कररहे हैं और बडे दुःखी होरहे हैं तब महात्माने अपना असली रूप बना लिया और सेठके पास जाकर ऐसा कहा राम राम कहो, महात्माके वाक्यको सुनकर सेठ कांपने लगा और राम राम करके पुकारने लगा, जब कि सेठ वार वार रामको प्रेमसे कहने लगा तब महात्माने सेठसे कहा अब तू धक्के और जूते खाकर राम राम करने लगा है यदि पहलेसेही तू राम नामसे प्रेम रखता तब क्यों जूते खाकर घरसे निकाला जाता ? जिन लडकोंके सुखके लिये तुमने अनर्थोंसे धनको जमा किया था उन्ही लडकोंने तेरेको जूते मारकर निकाल दिया है फिर जो उनसे तू राग करेगा तब आगेसे भी अधिक जूते खायगा. अरे मूर्ख ! तूने अपना जन्म व्यर्थ खो दिया अब तो वैराग्यको प्राप्तहो, महात्माके चरणोंपर सेठ गिर पडा तब महात्मानेकहा जो तुम्हारे घरमें सेठ घुसे थे तुमको दण्ड दिलानेके लिये सो हमही हैं, अब तुम अपने घरमें जावो और आनन्दसे रहो परन्तु उन्माद मत करना, धर्म करना सत्संग करना ऐसा उपदेश करके महात्मा तो चले गये और सेठ घरमें आकर उसी दिनसे वैराग्यपूर्वक धर्म करने लगा और महात्माओंकी सेवा करने लगा ॥ ९० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और आलसी वनियेंकी कथा तुमको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! पूर्वदेशके एक नगरमें एक वनियां वडा धनी रहता था धनके कमानेमें और संग्रह करनेमें तो वह वडाही निपुण था, परन्तु भजन स्मरणमें वडा आलसी था, किसी क्षणमें भी वह वैराग्यको प्राप्त न होता और न कभी मुखसे राम इस नामका उच्चारण करता था, परन्तु तिसकी स्त्री वडी विचारवाली थी, और भजन स्मरणमें तथा उदारतामें भी वह एक ही

थी, वह नित्यही पतिसे कहाकरे हे स्वामिन् ! यह मनुष्यशरीर विषयभोगोंके लिये नहीं है यह परमेश्वरकी भक्ति करनेके लिये है आपभी नित्य एक दो घडी भजन स्मरण किया करें क्योंकि वार वार यह शरीर मिलना कठिन है तब वनियां कहा करे कोई जल्दी नहीं है भजन स्मरणभी कर लेवैंगे। इसी तरह कहते सुनते बहुत काल बीतगया। एक रोज वनियां बीमार होगया स्त्रीसे बनियांने कहा किसी वैद्यको बुलावो स्त्रीने एक वैद्यको बुलाया वैद्यने आकर वनियांका हाथ देखकर दवाई लिखदी और तिसका अनुपान भी बता दिया स्त्रीने दवाईको मँगाकर ताखे पर धर दिया, दिन भर बीत गया वनियांको दवाई तिसने न दी, तव संध्याके समय बनियाँने स्त्रीसे कहा औषधिको आपने मंगाया है वा नहीं ? स्त्रीने कहा औषधिको मँगाकर मैंने रखा है, वनियांने कहा तिसको तू मेरे प्रति देती क्यों नहीं है ? स्त्रीने कहा कुछ जल्दी नहीं है आज न दी जायगी कल दी जायगी, कल न दी जायगी परसों दी जायगी, कभी तौ दी जायगी। बनियांने कहा यदि मैं मरगया तब वह औषधि हमारा क्या काम देगी ? स्त्रीने कहा मरनेको तो आप मानते नहीं हैं यदि मानते होते तब मैं जब आपको भजन स्मरणके लिये कहती थी आप यही कह देते थे कोई जल्दी नहीं है, फिर होजायगा। यदि आपको मरना याद होता तब ऐसा न कहते क्योंकि क्या जाने फिर तबतक शरीर रहे या न रहे, आज औषधीके लिये आप मरनेको भी याद करने लगे हैं। यदि इस जन्ममें न भी औषधि दी जायगी तब दूसरे जन्ममें दी जायगी यदि कहो औषधिकी हमको इसी जन्ममें जरूरत है, क्योंकि वर्तमान दुःख तिसके बिना दूर नहीं होता है। तब भजन स्मरणकी भी तुमको इसी जन्ममें जरूरत है फिर क्या जाने कहीं पशु आदि योनि मिल जावेगी तब उस योनिमें तो होना कठिन है। स्त्रीके उपदेशसे बनियांको भी वैराग्य हुआ और भजन स्मरणमें लगा स्त्रीने औषधि पिलादी वह अच्छा भी होगया। हे चित्तवृत्ते ! बिना वैराग्यके पुरुषका मन भजन स्मरणमें भी नहीं लगता है इसलिये वैराग्यही कल्याणका कारण है ॥ ९१ ॥

हे चित्तवृत्ते ! विना वैराग्यके देहादिकोंमें जो अभिमान होरहा है वह भी दूर नहीं होता है । इसीपर तुमको एक महात्माके दृष्टांतको सुनाते हैं ।

एक महात्मा गुरु और एक उनके चेला दोनों देशाटन करते फिरते थे । एक दिन रास्तेमें चलते २ चेलेने गुरुसे कहा महाराज ! कुछ उपदेश करिये । गुरुने कहा बेटा ! कुछ बनना नहीं जो पुरुष कुछ बनता है वही मारा जाता है जो कुछ भी नहीं बनता है उसको कालभी मार नहीं सक्ता है । चेलेने कहा सत्य वचन । आगे थोडी दूरपर सडकके किनारे एक राजाका बाग था उस बागमें एक बडी भारी कोठी बनी थी उसी बागमें गुरु चेला चले गये और तिस कोठीमें जाकर एक कमरेके पलँग पर गुरु सो रहे । दूसरे कमरेके पलँगपर चेला सोरहा । जब कि तीसरा पहर हुवा तब राजा हवा खानेके लिये तिस बागमें आये प्रथम उस कमरेमें गये जिसमें चेला पलँगपर सोया था तिसको देखकर राजाके सिपाहीने कहा अरे तू कौन है ? जो महाराजके पलँगपर सो रहा है । चेलेने कहा मैं साधु हूं सिपाहीने कहा तू कैसा साधु है, तू तो बडा मूर्ख है, जो महाराजके पलँगपर आकर सो रहा है, दो चार थप्पड लगाकर तिसको बाहर निकाल दिया, फिर राजा घूमते फिरते उस कमरेमें जा निकले जिसमें गुरु पलँगपर सोये थे, सिपाहीने जाकर कितनाही पुकारा परन्तु वह आगेसे बिलकुल न बोले । जब कि, सिपाहीने पकडकर हिलाया तब आंख मलते २ उठे परन्तु मुखसे कुछ भी न बोले तब राजाने सिपाहीसे कहा तुम इनको कुछ मत कहो मालूम होता है यह कोई महात्मा है । इनको बागसे बाहर कर देवो सिपाहीने उनका हाथ थामकर उनको बागसे बाहर कर दिया रास्तामें जाकर दोनों गुरु चेला फिर मिले तब चेलेने गुरुसे कहा महाराज ! हमको तो बडी मार पडी है गुरुने कहा कुछ बना होगा । चेलेने कहा मैं कुछ बना तो नहीं था कहा था मैं साधु हूं, गुरुने कहा फिर साधु तो बना जो कुछ बनता है वह मारा जाता है । देखो हम कुछ भी नहीं बनेथे इसलिये हम मारे भी नहीं गये हैं । महात्मा वहीहै, जो कुछ भी नहीं बनता है कि, जो मान और प्रतिष्ठाके लिये विरक्त और अवधूत बनते हैं वह भी

मारे पीटे जाते हैं क्योंकि जो कुछ बनते हैं और अपनेको मानी और प्रतिष्ठित मानते हैं, वेही मारे पीटे जाते हैं क्योंकि उनमें अनेक प्रकारकी कामना भरी रहती हैं । इसीसे वह आडम्बर करके मानके लिये चेले चाटियोंको बढाते वह शास्त्र दृष्टिसे महात्मा नहीं कहे जाते हैं; शास्त्रदृष्टिसे वही महात्मा है जो निष्काम है ॥ ९२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी अभिमानपर तेरेको एक और दृष्टांत सुनाते हैं:—

पञ्जाबके मालवा देशके एक ग्रामसे हरद्वारके मेलेपर बहुतसे लोक जाने लगे । तब उस ग्रामके निवासी एक चमारने जिमीदारोंसे कहा मैं भी आपके साथ हरद्वारके मेलेपर जाऊँगा । जिमीदारोंने कहा तू भी चल वह चमार भी उनके साथ हरद्वारपर गया और सबके साथ तिसने भी गंगामें स्नान करके पंडोंको दान यथाशक्ति दिया । पंडे फिर सब यात्रियोंको अक्षयवटके नीचे लेगये और सबसे यह वार्ता कही तुम सब कोई इस वटके नीचे एक २ फलको छोड देवो सबने एक २ फलको छोड दिया । फल छोडनेका यह तात्पर्य है जिस फलको लोक वहांपर छोड आते हैं अर्थात् जिस फलका त्यागकर देते हैं फिर उस फलको नहीं खाते हैं । चमारसे फल छोडनेके लिये पंडेने कहा तब चमारने कहा मैं आजसे बोझा ढोना छोड देता हूं । आजसे फिर कभी भी मैं बोझा नहीं ढोवोंगा, ऐसा कहा चमारने और पंडेने जाना बोझा ढोना भी कोई फल ही होगा । वहांसे फिर जब सब यात्री अपने २ घरोंको आये तब चमार भी उनके साथ अपने घरको लौट आया । और अपने घरमें आनन्दसे रहने लगा । कुछ दिनके पीछे जब कि बिगार पडी तब सिपाहियोंने आकर उसी चमारको बिगारी पकडा । चमारने उनसे कहा मैं हरद्वार अक्षयवटके नीचे बोझा ढोनेको छोड आया हूं, सिपाहियोंने उसकी बातको न समझा और तिसको पकडकर जब कि लेचले तब चमारने कहा तुम नम्बरदारोंसे चलकर पूछ लेवो मैं हरद्वारपर बोझा ढोना छोड आयाहूं । चमार सिपाहियोंको नंबरदारके पास लेगया और उनसे कहने लगा नंबरदार साहिब मैं आपके सामने धर्मसे कहताहूँ कि, हरिद्वार पर बोझा ढोना छोड आयाहूँ

और यह सिपाही इस बातको नहीं मानते हैं आप इनको समझा दीजिये। नंबरदारोंने कहा बोझा ढोना तो तुम छोड आयेहो, परन्तु चमारपना तो तुमने नहीं छोडा है जबतक तुम्हारेमें चमारपना रहैगा तबतक तुमको बोझ ढोना पडेहीगा। फिर सिपाही तिसको पकडकर लेगये। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है दार्ष्टान्तमें यह जो चमारका स्थूल शरीर है, तिसके अभिमानीका नाम ही चमार है, जाती आदिक जो कि शरीरके धर्म हैं उनको जो आत्माके धर्म मानता है वही चमार है अभिमानसे जो रहित है वही ज्ञानी है ॥ ९३ ॥

हे चित्तवृत्ते! विवेक वैराग्यके विना ज्ञानवान् भी शोभाको नहीं पाता है इसीपर एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

उत्तरखंडमें एक धर्मात्मा राजा रात्रिके समयमें भेष बदलकर अपने नगरमें नित्यही घूमता था जिसको वह गरीब दुःखी जानलेता उसके दुःखको धन देकर दूर कर देता। एक दिन रात्रिके समय एक अँधेरी गलीमें राजा जा निकला और अँधेरेमें खडा होकर एक गरीब घरवालोंकी बातोंको सुनने लगा उस घरवाले बडे गरीब थे नित्यकी मजदूरीसे अपना पेट भरते थे उस दिन उनको कहींसे मजदूरी नहीं मिली थी. वह परस्पर अपने दुःखकी बातोंको कर रहे थे। राजाने उनके भीतर जरासा ताक दिया उन्होंने जाना कोई बाहर चोर खडा है, आकर उन्होंने राजाको पकड लिया और मारने लगे। चोरकी आवाज सुनकर इधर उधरसे दो चार आदमी बत्ती लेकर आये जब चांदनेमें उन्होंने देखा तब उनको मालूम हुआ कि, चोर नहीं है यह तो राजा है तब अपनी भूलको दरशाने लगे, राजा अपने घरमें चले गये। हे चित्तवृत्ते! यद्यपि वह राजाही थे तथापि राज्यकी सामग्री जो कि, छत्र चामरादिक हैं उनके न होनेसे उन्होंने मार खाई क्योंकि छत्र चामरके विना वे राजा जान नहीं पडते थे वैसे ही ज्ञानवान्के चिह्न भी छत्र चामरादिक विवेक वैराग्य हैं.इनके बिना ज्ञानवान् भी शोभाको नहीं प्राप्त होता है और दुर्जनोंके कुवाक्यरूपी मारको खाते हैं इसलिये ज्ञानवान्को भी वैराग्ययुक्त रहना चाहिये ॥ ९४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वैराग्यवान् राजाकी कथाको तुम सुनोः—

एक राजा बडा धर्मात्मा और सत्संगी था । राज्य करते २ जब कि, उसको बहुत काल व्यतीत होगया तब एक दिन उसको राज्यसे बडी ग्लानि हुई । क्योंकि, राज्यके प्रबन्ध करनेमें अनेक प्रकारके विक्षेप नित्यही बने रहते हैं । राजाको जब वैराग्य हुआ तब उसने अपने पुत्रको राज्य सिंहासन देदिया और आप वनमें जाकर तप करने लगा । राजाने जब राज्यको त्याग दिया तब उसके त्यागकी बडी चर्चा फैली । उसके राज्यके समीप एक दूसरे राजाका राज्य था, तिस राजाको भी मालूम हुआ कि, अमुक राजाने राज्यको त्याग दिया है, तब इस राजाको तिसके मिलनेकी इच्छा हुई । यह राजा वनमें शिकारके बहानेसे जाकर तिसकी खोज करने लगे । खोजते २ एक वनमें एक वृक्षके नीचे बैठे । उनको देखकर राजाने दंडवत प्रणाम किया और समीप बैठकर क्षेम कुशलको पूछा । तत्पश्चात् कुछ सत्संगकी बातें होनेलगीं । जब कि, राजा आने लगे तब राजाने कहा, भगवन् ! एक मेरी प्रार्थना है वह यह है जो आप कल सबेरे मेरे गृहमें चलकर भोजन करैं, इस मेरी इच्छाको आप पूर्ण कर दीजिये । उन्होंने कहा अच्छा कल हम आपके घरपर सबेरे आकर भोजन करेंगे । राजा अपने मकानपर चले आये । दूसरे दिन सबेरे राजाने अपने भृत्योंको रास्तामें खडा करदिया और कहा जिस कालमें वह महात्मा आवें तुरन्त हमको खबर करनी । जब कि, जंगलसे वस्तीकी तरफको आये उनको दूरसेही आते देखकर राजाके भृत्योंने जाकर कहा महात्माजी चले आते हैं । राजा उनकी पेशवाईको गये और उनको लाकर अपने सिंहासनपर बैठाया । थोडी देरके पीछे राजाने अपने मन्त्रीसे कहा महात्माको लेजाकर हमारी विभूति सब दिखलादेओ । मन्त्रीने महात्माको लेजाकर जितने कि, उत्तम २ राजाके घोडे हाथी और जवाहिरात वगैरह पदार्थ थे वे सब दिखलादिये । राजाने वजीरसे पूँछा, महात्मा सब पदार्थोंको देखकर कुछ बोले थे ? वजीरने कहा कुछ भी नहीं बोले थे । इतनेमें राजाका भोजन तैयार होगया ।

राजा महात्माको भीतर लेगये और एक आसनपर बिठाकर आप दूसरे आसनपर बैठे । रानीने दो थालोंमें भोजन परोसकर दोनोंके आगे धर

६

दिया। एक २ थालमें चार २ बाजरेके पिसानकी रोटी और थोडा बथुवेका साग। महात्मा भोजनको देख करके हंसे तब राजाने कहा आप हमारे हाथी घोडे और खजाने वगैरहको देखकर नहीं हंसे हैं अब इस भोजनको देखकर आप क्यों हंसते हैं; कुछ कृपणताके सबबसे मैं ऐसा मोटा खाना नहीं खाता हूँ, इस मोटे खानेका सबब यह है, मैं राज्यसम्बन्धी खजानेसे एक पैसा भी नहीं लेता हूँ, क्योंकि राज्यके अंशको मैं अच्छा नहीं समझता हूँ, ये जो हमारे घरके पीछे पांच दस बीघा जमीन है इसमें मैं और रानी दोनों मिलकर खेती करते हैं, उसमें जो कुछ उपजता है उसीको हम खाते हैं। इसीसे हमारा खाना मोटा है। महात्माने कहा तुम धन्य हो और तुम्हारा वैराग्य भी धन्य है। एक तो वह लोक है हम सरीखे जिन्होंने राज्यको त्याग करके फकीरी ली है। तब भी उनको फकीरीकी लज्जत नहीं मिली है। एक आप सरीखे हैं जो कि अमीरीमें फकीरी कर रहे हैं। अमीरीमें फकीरी करनी बडे शूरोंका काम है इसी वार्तापर हम हंसे हैं। हे चित्तवृत्ते! वैराग्यवान् घरमें भी रहकर शोभाकोही पाता है। रागवान् वनमें रहकरके भी शोभाको नहीं पाता है. ॥ ९९ ॥

हे चित्तवृत्ते! अप्राप्त पदार्थके त्याग करनेवाले पुरुष तो संसारमें बहुतही हैं और वह त्यागी भी नहीं कहे जाते हैं। त्यागी वही कहा जाता है जिसको पदार्थ मिले और तिसको त्याग देवे वही त्यागी है। सो ऐसे सच्चे त्यागी संसारमें हैं क्योंकि, विना तीव्र वैराग्यके सच्चा त्याग नहीं होसक्ता है। अब हम तुमको सच्चे त्यागीके इतिहासको सुनाते हैं:—

एक राजा सालके साल जन्माष्टमीपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता था। एक समय राजाने जन्माष्टमीका उत्साह किया और ब्राह्मणोंको नेवता भेज दिया। जन्माष्टमीके व्रतके दूसरे दिन जब कि, भोजनका समय हुआ, तब दूर २ के ब्राह्मण भोजनके लिये आने लगे। दैवयोगसे एक तपस्वी ब्राह्मण भी कहींसे आ निकले। राजा जब सब ब्राह्मणोंके चरण धोता २ उनके पास गया और उनके चरणोंको धोने लगा तब उनके चरणोंको मिट्टीमें लिपटेहुए देखकर और नीचेसे फटे हुए देखकर राजाने कहा, महाराज! आपके चरण तो बडे खौरे हैं। वह तपस्वी ब्राह्मण बोले राजन्! तुमने कभी ब्राह्मणोंके

चरण नहीं धोये हैं, तुम पतुरियोंके चरण धोते रहे हो, इसलिये तुमको ब्राह्मणोंके चरणोंकी परीक्षा नहीं है। ब्राह्मणके इसी तरहके वचनको सुनकर राजा चुप होगये। जब कि, राजा सबके चरण धो चुके तब पत्तल सबके आगे बिछाई गई। सब भोजन करने लगे। प्रथम यह चाल थी कि, जब कि ब्राह्मण भोजन करलेते तब भोजनवाला कहता एक २ लड्डुवा और लीजिये चार आना एक लड्डुवाकी दक्षिणा मिलेगी। जब कि, एक २ सब खा लेते तब आठ आना करदेते, फिर बारह आना फिर एक रुपयातक एक लड्डुवाके खानेकी और दक्षिणा देते थे। राजाने भी ऐसेही किया और ब्राह्मण भी तृप्तिका भोजन नहीं करतेथे क्योंकि, दक्षिणाके लोभसे और खानेकी जगा पेटमें रख लेते थे। इस तपस्वी ब्राह्मणने एकही बार अपना तृप्तिका भोजन करलिया और आचमन करके बैठरहे। इतनेमें राजाने कहा एक लड्डुवाका चार आना मिलेगा अर्थात् जो एक लड्डुवा और खायगा उसको चार आना दक्षिणा और बेशी मिलैगी। सब ब्राह्मण खाने लगे जब कि, एक २ खाचुके, तब राजा आठ आना बोले फिर बारा आना बोले फिर एक रुपैया बोले सब ब्राह्मण खाते ही रहे। जब कि, राजाने इस तपस्वी ब्राह्मणकी तरफ देखा तो यह चुपचापसे बैठेथे। राजाने इनसे कहा महाराज! सब ब्राह्मण तो भोजन करते हैं, आप क्यों नहीं करते हैं? ब्राह्मणने कहा राजन्! हम तो एक बार ही भोजन करते हैं सो हमने भोजन करके आचमन कर लिया है। अब बार २ हम भोजन नहीं करते हैं। राजाने कहा यदि आप एक लड्डुवा और भोजन करैं तब आपको मैं पांच रुपैया दक्षिणा देऊंगा। ब्राह्मणने नहीं माना तब राजा दश रुपैया बोला तब भी तिसने नहीं माना, राजा बढने लगे। बढते २ एक हजार रुपैया एक लड्डुवा खानेके बदलेमें राजाने कहा। तब ब्राह्मणने कहा यदि लाख रुपैया भी आप देवैंगे तब भी मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूंगा अर्थात् आचमन किये पीछे और लड्डू दूसरी बार नहीं खाऊंगा। तब राजाने कहा देखो ऐसा दाता नहीं मिलेगा, जो एक लड्डूके बदले एक हजार रुपैया देता है। ब्राह्मणने हँसकर कहा हमको तो आप सरीखे दाता बहुतसे मिले हैं और मिलैंगे परन्तु आपको भी ऐसा त्यागी ब्राह्मण नहीं मिलेगा। राजा चुप होगये। ब्राह्मण

हाथ धोकर चल दिया । कितनाही राजाने उनके रखनेके लिये जोर लगाया परन्तु वह नहीं रहे । हे चित्तवृत्ते ! पूर्वकालमें वैसे २ वैराग्यवान् त्यागी ब्राह्मण होते थे, उन्हींमें ब्रह्मतेज चमकता था, उन्हींका वर शाप लगता था, वही ज्ञानी कहे जाते थे । जबसे ब्राह्मणोंमेंसे त्याग और वैराग्य जाता रहा तबसे ब्रह्मतेज भी नष्ट होगया और वर शापका भी लगना दूर होगया । हे चित्तवृत्ते ! पूर्ण वैराग्यवान्में ही इतना वडा त्याग रहसक्ता है, यह वैराग्यका ही फल है ॥ ९६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! सच्चे त्यागीकी कथाको तुमको सुना दिया है, अब झूठे त्यागीकी कथाको भी तुम सुनोः—

एक नगरके बाहर एक बावाजी कुटी बनाकर रहने लगे और दो तीन उनके साथ चेले थे । वह भी उनकी सेवाके लिये उनके पास रहते थे । चेलोंने बावाजीको सिद्ध और त्यागी लोकोंमें प्रसिद्ध कर दिया और लोकोंमें उनकी झूठी २ सिद्धियोंको मशहूर करके लोकोंको फँसाने लगे । जो कोई पुरुष बावाजीके आगे द्रव्य लाकर रक्खे, चेले तिसको कहे इसको मत रक्खो बावाजी त्यागी है द्रव्यको न लेते हैं न छूते हैं । अब बावाजीके त्यागकी चर्चा नगरमें फैली, क्योंकि पीरोंको मुरीद लोकही उडाते हैं और विना दलालोंके दुकान चलती भी नहीं है । तिस नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था, परन्तु कृपण वह अव्वल दरजेका था, कभी भी किसी गरीवको तिसने एक टका नहीं दिया था । उस बनियांने जब कि, बावाजीके त्यागका महत्त्व सुना तब तिसके मनमें आया हम भी चलकर बावाजीके आगे एक हजार रुपैयाकी थैली धरदें, बावाजी तो लेवेंगे नहीं, परन्तु उदारतामें हमारा भी नाम हो जावैगा । बनियां भी एक हजार रुपैयोंकी थैली लेकर बावाजीके पास गया और दण्डवत् प्रणाम करके थैलीको बावाजीके आगे धरदिया । बावाजीने कुटीमें तिस थैलीके रखनेका इशारा किया। चेलेने थैलीको उठाकर भीतर कुटीके धर दिया । अब बनियांके होश बिगडे । मनमें कहताहै यह तो द्रव्यको लेते नहीं थे अब क्या हुवा हमारा तो मतलब दूसरा था यहां तो औरका और ही होगया। फिर कहने लगा बावाजी हमसे हँसी

करते होंगे. शायद थोडी देरमें देदेवेंगे। जब कि, दो चार घडी व्यतीत होगई और बावाजीने रुपयोंकी थैली तिसको वापस न दी तब बनियांसे रहा न गया। बनियांने कहा महाराज! हमने तो सुना था आप द्रव्यका ग्रहण नहीं करते हैं वह तो बात झूठी निकली। क्योंकि द्रव्यको आपने अब ले लिया है, बावाजीने कहा भाई एक या दो दश बीस रुपयोंको हम ग्रहण नहीं करते हैं आजतक किसीने भी हमारे आगे हजार रुपयोंकी थैली नहीं रक्खी थी, यदि कोई रखता और हम न लेते तब तो हम झूठे होते। आपने आज प्रेमपूर्वक हजार रुपयोंकी थैली भेंट की है, हमने भी तुम्हारा प्रेम रखनेके लिये उठाली है। किसी शुभकर्ममें इसको हमभी लगा देवेंगे, अब तुम पश्चात्ताप न करो नहीं तो तुम्हारा पुण्य निष्फल होजायगा। बनियां माथा ठोंककर चल दिया। इधर बावाजीका मतलब होगया, बावाजी भी चलदिये। हे चित्तवृत्ते! ऐसे २ पाखण्डोंको करके जो लेनेवाले हैं वे झूठे त्यागी हैं क्योंकि वे वैराग्यसे शून्य हैं॥ ९७॥

हे चित्तवृत्ते! अब हम तुमको वंध्यज्ञानियोंके इतिहासोंको प्रथम सुनाते हैं तत्पश्चात् सच्चे ज्ञानियोंके इतिहासोंको सुनावेंगेः—

पञ्जाब देशके किसी ग्राममें एक निर्मल सन्त रहते थे और सवेरे वह वेदांतकी कथा करते थे। बहुत लोग उनकी कथा सुननेको आते थे, निर्मल सन्त भाईजी करके तिस देशमें बोले जाते हैं और उनके नामके आदिमें भाईजी शब्द जोडा जाता है। दोपहरके वक्त वह स्त्रियोंको पढाते थे। सब लोग उनको ज्ञानवान् जानते थे। एक दिन दोपहरके वक्त वह एक युवतीको संथा दे रहे थे, तिस युवतीके रूपको देखकर उनका मन चलायमान होगया, क्योंकि कामदेव बडा बली है तब वह धीरे २ तिसकी छातीपर हाथ फेरने लगे, युवतीने पीछे हटकर कहा, हाय हाय! क्या आप करने लगे हैं। अभी तो आपने हमको विचारसागरमें पढाया है कि स्त्रीका स्पर्श करनेसे बडा भारी पाप होता है और भाईजी! इसी ग्रन्थमें कितनी बडी स्त्रीकी निन्दा लिखी है और स्त्रीके संगसे अनेक प्रकारके दोष दिखाये हैं। क्या आपने उन सबको भुलाया है?

जब युवतीने ऐसे २ वाक्य कहे तब महात्मा भाईजी कहने लगे हम तो तुम्हारी परीक्षा करते थे जबतक देहमें अध्यास बना रहता है तबतक पक्का ज्ञान नहीं होताहै हम इस वार्ताकी परीक्षा करते थे । तुम्हारे देहमें अध्यास है, वा नहीं सो आज हमको मालूम होगया । तुम्हारे देहमें अध्यास बना है, तुमको अभी पक्का ज्ञान नहीं हुवा है । युवतीने कहा तुम्हारा तो अभी देहमें अध्यास छूटा ही नहीं है । यदि तुम्हारे देहमें अध्यास न होता तो तुम हमको हाथ भी न लगाते । कामातुर होकर तुमने हमको हाथ लगाया है अब बातें बनाते हो, तुम सन्त नहीं हो, कुसन्त हो । इस तरहके वाक्योंको कहकर वह युवती अपने घर-में चली गई और भाईजीने भी लज्जाके मारे तिस ग्रामको छोड दिया । हे चित्तवृत्ते ! ऐसे २ जो पुरुष हैं वही वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं । इसीवास्ते शास्त्रोंमें स्त्रीके संसर्गका निषेध किया है ।

आत्मपुराणके सातवें अध्यायमें कहा है:—

स्मरणाज्जायते कामो वधूनां धैर्यनाशनः ॥
दर्शनाद्वचनात्स्पर्शात्कस्मादेष न संभवेत् ॥ १ ॥

स्त्रीका स्मरण करनेसे ही धीरताका नाश करनेवाला कामदेव उत्पन्न हो जाता है । फिर दर्शनसे भाषणसे स्पर्श करनेसे क्यों नहीं उत्पन्न होगा किंतु अवश्य होगा ॥ १ ॥

आत्मनः क्षेममन्विच्छंश्चतुर्थाश्रममागतः ॥
न कुर्याद्योषितां संगं मनसा वपुषेंद्रियैः ॥ २ ॥

जो संन्यासाश्रमको अपने कल्याणके लिये प्राप्त हुवा है, वह मन और शरीर तथा इंद्रियोंकरके भी स्त्रीका संग न करै, क्योंकि तिस आश्रमसे स्त्रीका संग पतन करनेवाला है ॥ २ ॥

विलीयते घृतं यद्वदग्नेः संसर्गतस्तथा ॥
नारीसंसर्गतः पुंसो धैर्यं नश्यति सर्वथा ॥ ३ ॥

जैसे अग्निसम्बन्धसे घृत पिघल जाता है, तैसे स्त्रीके संसर्गसे पुरुषकी धीरता भी नष्ट होजाती है ॥ ३ ॥

एक एव प्रतीकारो नारीसर्पविषे भुवि ॥
आसाश्च स्मरणं तद्वद्दर्शनादेश्च वर्जनम् ॥ ४ ॥

पृथिवीतलमें स्त्रीरूपी सर्पके विषके हटानेका एकही उपाय है, स्त्रियोंके रूपका स्मरण न करना और उनके दर्शन आदिकोंका न करना ॥ ४ ॥

वासना यत्र यस्य स्यात्स तं स्वप्नेषु पश्यति ॥
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम् ॥ ५ ॥

जिसमें जिसकी वासना रहती है सो तिसको स्वप्नमें दीखता है, स्वप्नकी तरह मरणमें भी जान लेना। मरणकालमें जिसकी वासना जिसमें रहती है, उसीको वा उसी रूपको वह प्राप्त होता है, क्योंकि वासनामय ही इसका वपु है ॥ ५ ॥

कामिनां कामिनीनां च संगात्कामी भवेत्पुमान् ॥
देहांतरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते ॥ ६ ॥

कामी पुरुषोंके और स्त्रियोंके संगसे पुरुष भी कामी हो जाता है और जन्मान्तरमें देहान्तरमें भी क्रोधी लोभी मोही होता है ॥ ६ ॥

कामक्रोधादिसंसर्गादशुद्धं जायते मनः ॥
अशुद्धे मनसि ब्रह्मज्ञानं तच्च विनश्यति ॥ ७ ॥

काम क्रोधादिकोंके सम्बन्धसे मन भी अशुद्ध होजाता है, अशुद्ध मनमें उपदेश किया हुआ ब्रह्मज्ञान भी नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

कामक्रोधादिसंसक्तो ब्रह्मज्ञानविवर्जितः ॥
मार्गद्वयपरिभ्रष्टस्तृतीयं मार्गमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

जो पुरुष काम क्रोधादिकोंमें आसक्त है और ब्रह्मज्ञानसे हीन है, वह दोनों मार्गोंसे अर्थात् ज्ञान और उपासनासे भ्रष्ट हुआ तीसरे मार्गको याने कृमि-कीटादियोनियोंको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

तृतीयेऽध्वनि संप्राप्तः पुण्यविद्याविवर्जितः ॥
कीटादिदेहभाजी सन्नरकाच्च न निःसरेत् ॥ ९ ॥

तीसरे मार्गमें प्राप्त होकर फिर वह पुण्यविद्यासे रहित होजाता है। फिर कीटादिशरीरको भजनेवाला होकर नरकसे कदापि नहीं निकल सकता है ॥९॥

श्रेयस्कामस्ततो नित्यं चतुर्थाश्रममागतः ॥
कामिनां कामिनीनां च संगं सर्वात्मना त्यजेत् ॥ १० ॥

कल्याणका अर्थी जो चतुर्थाश्रमको प्राप्त हुआ है वह कामी पुरुषोंकी और स्त्रियोंकी संगतिका सर्व प्रकारसे त्याग कर देवै ॥ १० ॥

पंचदशीमें भी कहा है:—

बुद्ध्वाऽद्वैतस्य तत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ॥
शुनां तत्त्वदृशां चैवं को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥ ११ ॥

जिसने अद्वैत तत्त्वको जान लिया है और फिर वह यदि यथेष्टाचरणको करता है अर्थात् संन्यासको धारण कर अद्वैतको जानकरके भी यदि वह मांस मदिरा परस्त्रियोंका संग करता है तब कूकरमें और तिसमें क्या फरक है अर्थात् कुछ भी नहीं है । क्योंकि कूकर भी वमन करके फिर तिसको भक्षण करता है और तिस पुरुषने भी वमन करे हुए विषयोंको फिर ग्रहण करलिया वह भी कूकर ही है । हे चित्तवृत्ते! वंध्यज्ञानियोंका यथेष्टाचरण होता है, सच्चे ज्ञानियोंका नहीं होता है ॥ ९८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक बनावटी अवधूतकी कथाको सुनो:—

एक ग्रामके समीप जंगलमें एक अवधूत महात्मा रहते थे। लंगोटी तक भी नहीं रखते थे और अपने हाथसे भोजन भी नहीं करते थे । यदि कोई दूसरा उनके मुखमें डालता तब खाते थे और जहां तहां झाडा पेशावको भी फिर देते थे, उनको लोक विदेही मानते थे । एक दिन राजाकी रानी उनके दर्शनको गई और एक थालमें लड्डू पेडोंको भरकर लेगई, जाकर उनके समीप बैठ गई । थोडी देरके पीछे वह अवधूत तिस रानीकी गोदमें आकर बैठ गये । रानी अपने हाथसे उनके मुखमें पेडाको देने लगी और वह खाने लगे । अभी दो तीनही ग्रास रानीने उनके मुखमें दिये थे कि, इतनेमें उस अवधूतने रानीकी गोदमें दिशा करदिया । रानी एक पेडाके साथ तिस मैलेको लगाकर तिसके मुखमें जब देने लगी तब तिस अवधूतने मुखको फेर लिया । रानीने अवधूतको गोदसे पटक दिया और ऊपरसे दो तीन लात तिसको मारी और कहने

लगी इतना तो तुमको होश नहीं जो यह रानीकी गोद है वा पाखानाकी जगह है, और इतना तेरेको होश है जो मलको पेडेके साथ लगाकर यह हमको खिलाती है, इसलिये तुमने अपने मुखको फेर लिया। रानीने नौकरोंको हुक्म दिया इस पाखण्डीको हमारे देशसे बाहर कर देओ। रानी सुशीला स्नान करके घरको चली आई। हे चित्तवृत्ते ! ऐसे २ पाखण्डोंको करनेवाले वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं ॥ ९९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वंध्यज्ञानीके दृष्टांतको तुम सुनोः—

लैली मजनू नाम करके दो आशक माशूक हुये हैं। लैली तो बादशाहकी लडकी थी और मजनू एक तसवीर खैंचनेवाले कारीगरका लडका था। मजनूका बाप बादशाहके महलोंमें काम करनेको जाता था, मजनूभी छोटीसी उमरसें बापके साथ बादशाहके महलोंमें जाने लगा। एक दिन लैलीको मजनूने देखा, लैलीकी भी उमर तब छोटीसी थी, मजनूका मन लैलीमें लग गया फिर लैलीके बापने लैलीको मदरसामें पढनेके लिये बिठला दिया और मजनू भी पढनेके बहानेसे तिसी मदरसामें जा बैठा। वहांपर मजनू और लैलीकी परस्पर नित्य बातचीत होनेसे प्रीति बढने लगी। दोनोंका आपसमें इतना प्रेम बढगया कि, बिना देखे एक दूसरेको चैन न पडे। थोडे दिनोंके पीछे उनके प्रेमकी वार्ता सब नगरमें फैल गई। बादशाहको भी मालूम होगई तब बादशाहने लैलीका जाना मदरसेमें बंद करदिया और लैली अपने घरसे बाहर आने न पावै। अब मजनूको लैलीका देखना भी बंद होगया तब मजनू फकीर बनके जंगलमें जाकर रहने लगा। कुछ दिनके पीछे बादशाहके दिलमें आया, मजनू खाने पीनेके बिना तंग होता होगा। उसके लिये खाने पीनेका कोई प्रबंध कर देना चाहिये। बादशाहने वजीरसे कहा नगरमें नोटिस देदो कि, मजनू जिसकी दूकानसे जो वस्तु उठा ले उसका हाथ कोई भी न रोकै, तिसका दाम बादशाहके खजानेसे मिलेगा। वजीरने नोटिस जारी करदिया। इस वार्त्ताको सुनकर दश बीस साधुओंने कपडोंको उतार दिया और मजनू बनकर लोकोंकी दूकानोंसे खाने पीनेकी चीजोंको उठाने लगे। जब कोई उनसे पूछे तुम कौन हो तब वह कहदें हम मजनू हैं। वाह मजनूका नाम सुनकर चुप रह जातेथे। अब धीरे २ मजनू बढने

लगे चार पांच सौ मजनू बन गये और सैंकडों रुपैया नित्य खजानेसे दूकान-दारोंको वजीरको देना पडैं । तब वजीरने बाहशाहसे कहा मजनू तो बहुतसे जमा होगये हैं । इनके खर्चके मारे खजाना ख़ाली हुआ जाता है, कोई उपाय करना चाहिये । तब बादशाहने लैलीसे पूंछा वह जो तुम्हारा प्रेमी मजनू है वह बहुतसे हैं या कोई एक है । लैलीने क़हा बापू ! वह एकही है बहुत नहीं हे । बादशाहने कहा उसकी पहँचान कैसे होगी ? लैलीने कहा अपने गृहके आंगनमें एक लोहेका खम्भा गाडिये और तिसपर एक चौकीको वांध दीजिये ऊपर उस चौकीके मेरेको बिठला दीजिये, नीचे गिरदे तिस खम्भेके चारोंतरफ अग्निके अंगारोंको बिछा दीजिये और नगरमें हुक्म देदीजिये सब मजनू आवें । लैलीने मजनुओंको याद किया है जो मजनू आकर उस आगको देखकर भागे तिसको कैद कर डालो जो सच्चा मजनू आवैगा वह नहीं भागेगा । बादशाहने इसी तरहसे किया । अब जो मजनू भीतर आंगनके आवे वह पूछे लैली कहाँ है ? जब तिसको लैली ऊपर बैठी बताई जावै तब वह पीछेको भागे, पकड करके कैद किया जाय, इसी तरह सब बनावटीके मजनू कैद किये गये, तब किसीने जाकर जंगलमें तिस सच्चे मजनूसे कहा लैली तुमको याद करती है । वह भी चले, जब कि, वह घरके भीतर अंगनमें पहुँचे तब मजनूने पूछ लैली कहां है लोकोंने ऊँचे खम्भेपर बैठी हुईको बतादिया । जब मज-नूने ऊपर खम्भेकी चौकीपर बैठी हुई लैलीको अपनी आँखोंसे देख लिया तबसे फिर मजनूकी निगाह नीचे आगपर न पडी किन्तु ऊपरको देखते हुए और लैली २ करते हुए मजनू आगेको वढे और आगके अंगारोंपर दौडते चले गये परन्तु उनके पांव न जले, क्योंकि, उनका मन अपने शरीरमें न था वह लैलीके पास चला गया था आगका ज्ञान कैसे होता । इसीसे उनको आगका ज्ञान भी न हुआ । जब चौकीके नीचे मजनू पहुँचे और मजनूने दोनों हाथ ऊपरको उठाये ऊपरसे लैलीने तिसके हाथोंको पकडकर अपने पास खैंचकर चौकीपर बिठालिया और बापसे कहा ये ही वह सच्चा हमारा प्यारा मजनू है । बादशाहने तिसी मजनूके प्रति अपनी प्यारी बेटी लैलीको दे दिया और बनावटी सब मजनुवोंको कैद करलिया । यह दृष्टान्त है

दार्ष्टान्तमें; जो कि, सच्चा ज्ञानी है वह तो हजारों लाखोंमें कोई एकही है और जो बनावटी हैं वह ज्ञानी बनकर मजनुवोंकी तरह लूट मार करके खा रहे हैं वह सब वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं क्योंकि वह वैराग्यादिक साधनोंसे शून्य हैं ॥ ६० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और वंध्यज्ञानियोंके दृष्टांतको सुन:—

एक ग्राममें जुलाहे बहुतसे रहते थे, उनसे थोडी दूरपर एक क्षत्रियोंका ग्राम था।एक दिन जुलाहोंने आपसमें सलाह की कि चलो क्षत्रियोंको चलकर लूट लावें.रात्रिके समय वह जुलाहे सब मिलकर क्षत्रियोंके ग्रामको लूटने लगे। आगे क्षत्री बडे शूरवीर थे वह शस्त्र अस्त्रोंको लेकर जुलाहोंके मारनेके लिये दौडे। जुलाहे भागे, जब कि, भागते २ कुछ दूर निकल गये तब एक जुलाहेने कहा भागे तो जाते हो मारो मारो तो करते चलो। तब सब जुलाहे भागते भी जायँ और मारो मारो भी करते जायँ यह तो दृष्टांत है। दार्ष्टान्तमें; जो कि, वंध्यज्ञानी हैं वह विवेक वैराग्यादिक साधनोंसे भागे तो जाते हैं क्योंकि साधन उनसे हो नहीं सक्ते हैं तब भी वह मुखसे मारो २ भेदवादियोंको करते ही जाते हैं ॥ ६१ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

एक नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था। उसकी भैंस और गैयाको चरवाहा नित्यही जंगलमें चरानेके लिये ले जाता था। एक दिन वह चरवाहा जंगलमें भैंसोंको पडा चराता था कि इतनेमें एक सिंह जंगलसे निकला और उन भैंसोंमेंसे एक भैंसको उठाकर लेगया। चरवाहेने आकर रात्रिमें बनियांसे कहा आज सिंह एक भैंसको उठाकर लेगया है। बनियांने मुनीमसे कहा वही-खातेको देखो सिंहका कुछ हमारी तरफ निकलता तो नहीं है? मुनीमने वहीको देखकर कहा सिंहका हमारी तरफ कुछ भी नहीं निकलता है। तब बनियांने कहा फिर सिंह हमारी भैंसको क्यों लेगया? बनियांने चरवाहेसे कहा कलको हम भी तुम्हारे साथ जंगलमें चलेंगे और सिंहसे भैंस लेजानेका कारण पूछेंगे। दूसरे दिन बनियां चरवाहेके साथ जंगलमें जाकर एक वृक्षकी छायामें बैठ रहा

जब कि, तीसरा पहर हुआ तब सिंह वनसे निकला और भैंसोंकी तरफ चला, तब बनियांने सिंहसे कहा हमने अपना वहीखता सब देख लिया है तुम्हारा हमारी तरफ कुछभी हिसाव नहीं निकलता है फिर तुम हमारी भैंसको क्यों उठाकर लेगये ? बनियेकी वार्ताको सुनकर सिंह गरजा और गरज करके एक और भैंसको उठाकर ले भागा। तब बनियांने कहा यदि हिसाब देखा जाय तब तो तुम्हारा कुछ भी हमारी तरफ नहीं निकलता है और जो तुम केवल गरजना दिखाकर हमारी भैंसोंको खाना चाहो तब तो हमारा तुम्हारे पर कुछ भी जोर नहीं चलता है। तुम बेशक खाजाओ। यह तो दृष्टांत है। दार्ष्टान्तमें; जितने कि वंध्यज्ञानी हैं यदि ज्ञानकी धारणाका और ज्ञानके सुखका उनसे कुछ हिसाब पूछा जाय तब तो उनके पास बाकी कुछ भी नहीं रहता है, केवल ज्ञानकी वातोंके गरजनेको दिखाकर वह लोगोंको लूट कर चले जाते हैं। इसीसे वह वंध्यज्ञानी कहे जाते हैं। हे चित्तवृत्ते ! हरएक वस्तुकी सिद्धि किसी प्रमाणसे होती है, या किसी लक्षणकरके होती है विना इन दो बातोंके नहीं होती है, सो ज्ञानीके जो लक्षण शास्त्रोंमें किये हैं, वह वंध्यज्ञानियोंमें नहीं घटते हैं। प्रथम तो जिसका किसी भी पदार्थमें राग न हो बल्कि स्त्री पुत्रादिकोंमें भी राग न हो और यदि संन्यासी हो तब मठों और चेलोंमें तथा द्रव्यादिकोंमें जिसका राग न हो फिर सब जीवोंमें शत्रु मित्रादिकोंमें भी जिसकी समबुद्धि हो और किसीका भी जिसको भय न हो और किसीको भी जिससे भय न हो वही पूरा २ ज्ञानी है। यह बातें जिसमें नहीं घटती हैं, केवल ज्ञानकी बातें ही करता वैराग्यसे भी शून्य है वही वंध्यज्ञानी है॥ ६२॥

हे चित्तवृत्ते ! अब तुमको सच्चे निष्काम ज्ञानीकी कथाको सुनाते हैं:—

सिंधु नदीके किनारेपर जहांसे कि, नाव इसपार उसपार जाती आती थी वहांपर एक क्षत्रिय जातिवाला पुरुष दूकान करता था, उसकी दूकानमें पांच सातही रुपैयोंका सौदा रहता था, सो कोई साधु नदीके पारको जाता था या इस पारको आता था। उसकी दूकानके आगे एक पलंग बिछा रहता था

ऊपर वृक्षकी छाया थी, उस पलंगपर वह महात्माको विठाकर तीन मुट्ठी चनेको खिलाता और ठंढा पानी अपने हाथसे पिलाता पंखा करता कुछ देरतक पांव दवाता था, ऐसा तिसका नियम था। एक दिन एक रसायनी महात्मा साधु वहांपर आगये, उसने उन महात्माकी सेवा भी उसी तरहसे की जैसी औरोंकी करता था। महात्माने उसकी दूकानकी तरफ जव देखा तव उनको माळूम हुआ यह तो वहुत ही गरीव है। क्योंकि तिसकी दूकानमें उनको कुछ सामग्री दिखाई न पडी तव महात्माने कहा इसको कुछ देना चाहिये। उन्होंने एक रसायनका विल निकालकर तिसको दिया और कहा इसको किसी ताके पर धर दीजिये तुम्हारे काम आवेगा। उसने विलको लेकर ऊपर ताकेके धरदिया, महात्मा नावमें बैठकर उस पारको गये। एक सालके पीछे वह फिर उसी रास्तासे आ निकले और मनमें विचार किया अव तो वह वडा धनी होगया होगा क्योंकि हमने उसको रसायनका विल दिया था। जव उसकी दूकानके सामने पलंगपर आकरके वैठे तव जैसी पहले उसकी दूकानको उन्होंने देखा था, वैसेही फिर भी देखा। तव उन्होंने मनमें सोचा हमने इसको विल तो दिया था परन्तु सोना वनानेकी तजवीज इसको नहीं वताई थी। इसीसे यह गरीव रहगया है। महात्माने कहा वावा! परसाल हम तुम्हारे यहां आयेथे आपने हमको पहचाना है या नहीं? उसने कहा महाराज! मैंने नहीं पहँचाना है। क्योंकि, हमारे यहां नित्यही दश पांच साधु आते हैं यह पार जानेका रास्ता है। इसलिये मैंने आपको नहीं पहँचाना है। महात्माने कहा हमने आपको एक विल दिया था, और आपने उसको ऊपर ताकेके धर दिया था उसने देखा तो वह विल उसी जगह धराथा, उठाकर महात्माके आगे तिस बिलको धर दिया। महात्माने कहा बाबा! इससे सोना बनता है, हमने तुमको गरीव जानकर दिया था जो यह धनी होजावें। महात्माने कहा तुमको हमने सोना वनानेकी विधिको नहीं वताया था सो इससे तुमने सोना नहीं वनाया है। उसने कहा महाराज! अव आप सोना बनानेकी विधिको वता दीजिये। महात्माने कहा तांवा लाकर एक मिट्टीकी कुठाली बनाकर कोइलाको भरवाकर तिसमें कुठालीको धरकर नौशादर और सुहागाको

तिसमें डालो, जब कि, तांबा गलजाय; तब इस बिलमेंसे एक रत्ती दवाईक
तिसमें छोड दीजिये सोना बन जायगा । तब उसने कहा तांबा लावें, कोइल
लावें, गलावें, दवाईको तिसमें छोडें, इतना यत्न करें, तब सोना बनै । उ
क्षत्रियने महात्मासे कहा आपको सोनेकी जरूरत है ? महात्माने कहा हां
तब क्षत्रियने अपनी लाठीको लेकर तोलनेके जो पत्थर पडे थे उनपर मारन
शुरू किया, जिस पत्थरपर वह लाठीको मार कर कहे सोना हो जा व
तुरन्त ही स्वर्ण हो जाय, इसी तरह सब पत्थर स्वर्णके होगये । क्षत्रियने महा
त्मासे कहा बाबा ! यदि तुमने सोना बनानेके लिये ही मूँडको मुंडाया है
तब जितना सोना तुमको चाहिये उतना उठालो यह भेष तुम्हारा सोन
जमा करनेके लिये नहीं है किंतु सोनाके त्यागके लिये है और आत्मज्ञानकी
प्राप्तिके लिये है । तुम वैराग्यसे शून्य होकर अनात्म पदार्थमें सुख मान रहे हो
अभी तुम्हारी भोगोंसे वासना दूर नहीं हुई है । महात्माने तिसके चरणोंको
पकड लिया और दोनों वहांसे चल दिये । हे चित्तवृत्ते ! सच्चे ज्ञानी ऐसे
निष्काम होते हैं ॥ ६३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और ज्ञानवानकी कथाको तुम सुनो:—

काशीपुरीमें वरणाके संगमपर एक महात्मा विरक्त विद्वान् रहतेथे और
धारणामें पूर्ण थे ; वेदांत चिंतनके अतिरिक्त दूसरा चिंतन नहीं करते थे ।
एक दिन वह सवेरे वरणाके किनारेपर दिशा फिरनेको जब गये तब वहां
वर्षासे वरणानदीका अरार गिराथा तिसमेंसे मोहरोंकी भरी हुई हंडी निकल
कर उलटी पडी थी, तिसके समीप बैठकर महात्माने मलका त्याग किया और
उस हंडियाको उलटा हुआ देखा, परन्तु छूआ नहीं । स्नान करके अपने
आसनपर चले आये जब कि, कुछ थोडासा दिन निकल आया और इधर
उधरसे लोक आने जाने लगे तब लोगोंने तिस हांडीको देखा इतनेमें बहुतसे
आदमी वहांपर जमा होगये और हाकिमको खबर मिली, वहभी वहां पर
आगया । हाकिमने उस सब धनको लेलिया और लोकोंसे पूँछा यहांपर इसके
पास मैला किया हुआ है । कौन ऐसा आदमी सवेरे यहां पर आया है जो पास
इसके मैला करने बैठा है और धनको जिसने नहीं उठाया है । लोकोंने कहा

यहांपर एक महात्मा विरक्त रहते हैं, वही सवेरे आते हैं वही आये होंगे। हाकिम उनके पास गया और उनसे पूंछा आप जब कि; वहांपर मैला करनेको बैठे थे तब आपने उस धनको देखा था ? उन्होंने कहा हां, हमने देखा था। कहा आपने क्यों न लिया ? उन्होंने कहा हमको तिसकी जरूरत नहीं थी हमारे वो कामका धन नहीं था। क्योंकि, हम तो तिसको उपाधि समझते हैं, इसवास्ते हमने नहीं लिया। हाकिमभी उनकी बातोंको सुनकर प्रसन्न हुआ। फिर एक दिन एक महाजनने आकर उनसे कहा महाराज ! पंचक्रोशीको चलिये, उन्होंने नहीं माना। जब बहुत कहा तब कहने लगे एक २ छाता और एक २ जूता सब साधुवोंके वास्ते लाओ सब साधू जूता पहरकर और छाता लगाकर चलेंगे। महाजनने कहा महाराज ! पंचक्रोशीमें तो लोक जूता पहरकर छाता लगाकर नहीं जाते हैं। महात्माने कहा जो कि अज्ञानी मूर्ख करैंगे वह हम नहीं करैंगे क्योंकि हमको तो किसी फलकी कामना नहीं है। हम किसी देवता वा तीर्थसे अपने कल्याणको नहीं चाहते हैं, हम तो केवल आत्मज्ञानसेही मुक्तिको मानते हैं। तुम जावो हम पंचक्रोशी नहीं जायँगे। वह महाजन चलागया। हे चित्तवृत्ते ! जो सच्चे ज्ञानी हैं वे ज्ञानसे विना कर्मउपासनाके तथा देवतार्चन और तीर्थ आदिकोंसे अपनी मुक्तिको नहीं चाहते हैं उनका ऐसा कभी संकल्पभी नहीं फुरता है जो हमारा शरीर किसी तीर्थमेंही गिरे क्योंकि तीर्थरूप तो वह आपही हैं और न किसी शास्त्रमें ही ऐसा लिखा है जो ज्ञानवान्‌को तीर्थपरही शरीरका त्याग करना चाहिये किंतु इसके विरुद्ध लिखा है:—

नीरोग उपविष्टो वा रुग्णो वा विलुठन् भुवि ।
मूर्च्छितो वा त्यजत्येव प्राणान् भ्रांतिर्न सर्वथा ॥ १ ॥

ज्ञानवान् रोगरहित हो अथवा रोगवाला हो, बैठा हो वा पृथिवीपर लोटता हो, मूर्च्छित हो वा सचेत हो, प्राणोंके त्यागकालमें इसको भ्रांति किसी तरहसे भी नहीं होती है ॥ १ ॥

तनुं त्यजति वा काश्यां श्वपचस्य गृहे तथा ।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥ २ ॥

ज्ञानवान् काशीमें शरीरका त्याग करे, अथवा चांडालके घरमें त्याग करे वह ज्ञानसम्प्राप्तिकालमें ही मुक्त हो जाता है क्योंकि जिसकी वासनाएँ सब नष्ट होगई हैं तिसको काशी मगह बराबर है ॥ २ ॥

फिर दृढ बोधवाले ज्ञानीके लिये कर्मादिकोंका कर्त्तव्य भी नहीं कहा है जितना कर्त्तव्य है सो सब अज्ञानीके लिये ही कहा है ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ॥
नैवास्ति किञ्चित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ ३ ॥

जो पुरुष ज्ञानरूपी अमृतकरके तृप्त है और कृतकृत्य है, उसको किञ्चित् भी कर्त्तव्य नहीं है, यदि वह अपनेमें कर्त्तव्यको माने तब वह तत्त्ववित् नहीं है ॥ ३ ॥

गीतामें भी कहा है:—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ४ ॥

जिस पुरुषकी आत्मामें ही प्रीति और अपने आत्मानंदकरके ही जो तृप्त है आत्मामें ही जो संतुष्ट है तिसको कुछभी कर्त्तव्य नहीं है ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो सच्चे ज्ञानी हैं वह तो निरिच्छ हैं, जो बनावटके ज्ञानी हैं, जिनका दृढ विश्वास नहीं है वही महात्मा तीर्थोंमें मुक्तिके लिये निवास करते हैं और मरणकालमें कहते हैं कि, तीर्थोंमें हमको लेचलो वहांपर शरीरको त्यागैंगे, जन्मभर तो लोगोंको वेदान्त सुनाते हैं और ज्ञानी कहाते हैं मरणकालमें अज्ञानी बनजाते हैं क्योंकि, अज्ञानियोंकी तरह तीर्थोंसे मुक्तिकी इच्छा करने लगते हैं ॥

कपिलगीतामें कहा है:—

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमंति तामसा जनाः ॥
आत्मतीर्थं न जानंति कथं मोक्षः शृणु प्रिये ॥ १ ॥

महादेवजी पार्वतीके प्रति कहते हैं हे पार्वती ! यह तीर्थ है वह तीर्थ है ऐसे जानकर अज्ञानी जीव भ्रमते फिरते हैं, क्योंकि वह आत्मरूपी तीर्थको नहीं जानते हैं ॥ १ ॥

देवीभागवतमें भी कहा है:-

मनोवाक्कायशुद्धानां राजँस्तीर्थं पदेपदे ॥
तथा मलिनचित्तानां गंगापि कीकटाधिका ॥ २ ॥

जिन पुरुषोंके मन और वाणी आदिक शुद्ध हैं हे राजन् ! उनके पद २ में तीर्थ निवास करते हैं, जो मलिनचित्त हैं उनके लिये गंगा भी कीकट देशके समान है ॥ २ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जिन पुरुषोंको आत्मानन्दकी प्राप्ति हुई है वह विषयानन्दकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥

चित्तवृत्ति कहती है–हे भ्राता ! चित्तकी शुद्धिके साधनोंको कहो, क्योंकि बिना चित्तकी शुद्धिके विवेक वैराग्यादिक भी नहीं होते हैं, तब आत्मज्ञानका होना तो अर्थसे भी नहीं होसक्ता, इसलिये प्रथम मेरेको चित्तकी शुद्धिके साधनोंको तुम सुनाओ जिनके करनेसे मेरा चित्त शुद्ध होजाय। विवेकाश्रम कहते हैं–हे चित्तवृत्ते ! अन्नकी शुद्धिसे चित्तकी शुद्धि होती है, सो अन्नकी शुद्धि इस तरहसे होती है–सत्य धर्मकी कमाईसे जो द्रव्य कमाया जाता है वह शुद्धद्रव्य कहाता है, तिस द्रव्यसे जो खाने पीनेके लिये अन्नादिक लिये जाते हैं वह ही शुद्ध कहे जाते हैं। क्योंकि सत्य धर्मका असर द्रव्यद्वारा तिस अन्नमें आता है, तिस अन्नके खानेसे चित्त शुद्ध होता है। क्योंकि, अन्नद्वारा तिस सत्यधर्मका असर चित्तपर भी आता है,तिस शुद्ध चित्त ही विवेक वैराग्यादिक उत्पन्न होते हैं। इसीपर तुमको दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक ब्राह्मण चित्तशुद्धिके लिये तीर्थोंपर भ्रमण करने लगा, कई बरसोंतक वह तीर्थोंपर भ्रमण करता रहा तब भी तिसका चित्त शुद्ध न हुआ। क्योंकि, तीर्थोंमें जाकर क्षेत्रोंका और दान कुदानादिकोंका अन्न तिसको खानेके लिये मिला, उस अन्नके खानेसे तिसका चित्त और मलिनताको प्राप्त होता चला गया। जब कि, चित्त मलिन होता है, तब विषय विकारोंकी ओरही जाता है। ब्राह्मणने मनमें विचारा कि, क्या कारण है जो चित्त हमारा प्रतिदिन तीर्थ करनेसे भी मलिन होता जाता है। परन्तु तिसको चित्तकी अशुद्धिका कुछ कारण मालूम न हुआ। फिर वह अमरनाथ तीर्थसे जब लौट

कर कश्मीर देशमें आया, तब एक दिन दोपहरके वक्त एक ग्राममें वह पहुँचा और वहांपर एक किसानके द्वारपर वह गया और उस किसानसे भोजनके लिये तिस ब्राह्मणने कहा। किसानने कहा, हमारे पास शुद्ध अन्न नहीं है, क्योंकि, जब हमारा अन्न खेतमें था, तब एक दिन हमारे खेतको दूसरेकी पारीका जल दिया था, इसीसे वह अशुद्ध है। हमारे भाईका अन्न शुद्ध है; आप हमारे भाईके घरमें आज भोजन करैं। तिसने अपने भाईसे कह दिया। उसके भाईके घरमें जब ब्राह्मण भोजन करके वहांसे चला तिसकी वृत्ति सात्त्विकी होगई और तिसके हृदयमें एक विलक्षण प्रकाशसा होने लगा, और भूत भविष्यत्की बातोंको भी वह जानने लगा। तब तिस ब्राह्मणने जाना ये सब शुद्ध अन्नका प्रताप है। हे चित्तवृत्ते! अन्नकी शुद्धिसे चित्तकी शुद्धि अवश्य होती है॥ ६९ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक पुरुष बडा सत्यवादी और धर्मात्मा था। वह कुछ कपडा खरीदकर विदेशमें बेंचनेके लिये ले गया। एक आडतीकी दूकान पर उसने जाकर कपडेके भारको उतार दिया, जब बेंचनेलगा तब तिसका दाम पूरा नहीं लगा। उसने आढतीसे कहा, इस कपडेके भारको आप मेरी अमानत जानकर रख छोडैं फिर मैं आकर बेंचूंगा। आढतीने उसका कपडा रखलिया, वह अपने घरको चला गया, कुछ दिन पीछे आढतीकी दूकानमें आग लग गई, कुछ माल आढतीका जलगया, तिसका कपडा दूसरे मकानमें पडा था वह बचगया। दो चार महीनोंके बाद वह आया और उसने आढतीसे कहा, हमारा कपडा निकालो उसको अब हम बेचैंगे। आढती बेधर्म होगया, उसने कहा, हमारी दूकानमें आग लगी थी तिसमें तुम्हारा कपडा भी जल गया है। उसने कहा, हमारा कपडा नहीं जला है, दोनों झगडते २ राजाके पास गये। राजाने कहा, इसकी दूकानमें आग तो लगी थी और माल भी बहुतसा जलगया था। उसने कहा, इसका माल जला होगा। क्योंकि यह बेईमानी करता है, हमारा माल नहीं जला होगा। क्योंकि, हम बेईमानी नहीं करते हैं। राजाने कहा, इसकी परीक्षा कैसे हो? कपडेवालेने अपने ऊपरसे चद्दर उतार कर धरदी

राजासे कहा, आप इसको आग लगाइये, यदि यह जल जावैगी तब हम जानेंगे जो हमारा कपडा जल गया है। यदि यह नहीं जलेगी तब आप जान लेना जो हमारा कपडा नहीं जला है। राजाने आग मँगाई, तिसकी चद्दरके जलानेके लिये कितनाही यत्न किया परन्तु तिसकी चद्दर नहीं जली। तब राजाने आढतीके मकानकी तलाशी की, तिसके कपडेकी गठडी निकल आई। तिसको दिलवादी और आढतीको दण्ड दिया। हे चित्तवृत्ते! सत्यधर्मकी कमाईको अग्नि भी जला नहीं सक्ता है और पानी तिसको वहा नहीं सक्ता है॥ ६६॥

हे चित्तवृत्ते! एक और हम तुमको इसी विषयपर कथाको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! एक राजा बडा धर्मात्मा था। किसी जीवको कभी भी नहीं सताता था। जितना कर प्रजासे लेता था वह प्रजाकी पालनामें ही खर्च करदेता था और बहुतही साधारण चालसे रहता था। एक शत्रुने तिस राजापर चढाई की, तब राजाने मनमें विचार किया यह राज्य तो दुःखकी खान है, क्योंकि, अनेक प्रकारकी चिंता इसमें बनी रहती है; इस राज्यकी प्राप्तिके लिये जोकि वैराग्य और विचारसे शून्य हैं, वही यत्न करते हैं। यदि हम शत्रुसे युद्ध करेंगे तब बहुतसे जीवोंकी हिंसा होगी फिर यह भी तो निश्चय नहीं है कि, जय हो वा न हो। कल्याण तो इसके त्याग करदेनेमें ही है। ऐसा विचार करके रात्रिके समय अपनी रानीको साथ लेकर राजाने चल दिया। तिस कालमें और लोक तो सब सोये पडे थे परन्तु एक नौकर राजाका जागता था, वह भी राजाके पीछे चल दिया। राजाने तिस नौकरको कितनाही मना किया परन्तु तिसने नहीं माना, राजाके पीछे २ ही चलपडा। राजा अपने देशसे निकलकर दूसरे राजाके देशमें जब कि पहुँच गया तब राज्यसम्बन्धी सब वस्त्रोंको तिसने फैंक दिया। गरीबोंके वस्त्र पहनकर एक टूटे फूटे मकानमें जा रहा। और वहांके राजाका एक मकान बनता था और बहुतसे मजदूर तिसमें जाकर नित्य मजदूरी करते थे। राजा और रानी तथा नौकर ये तीनों भी जाकर उन मजदूरोंमें नित्यही टोकरी ढोनेकी मजदूरी करने लगे। जो कुछ इनको मजदूरीका मिलता उसीमें प्रसन्नतापूर्वक अपना निर्वाह

करते थे। जब कि, एक बरस इनको वहांपर रहते व्यतीत होगया, तब एक दिन राजाके नौकरको एक अपना स्वदेशी मिला। उसने कहा, हम अब अपने देशको जाते हैं । तुम भी अपने घरके लिये कोई वस्तु हमको खरीद करके देदेवो । हम तुम्हारे घरमें लेजाकर देदेवेंगे । उस नौकरने राजासे कहा, एक आदमी हमारे घरको जानेवाला है वह कहता है, तुमभी अपने घरके लिये कुछ भेजो, हम लेते जायँगे। राजाके पास पांच पैसे खरचेमेंसे बचे हुए थे । राजाने उसको वह देदिये और कहा, इनका कोई फल लेकर तुम अपने घरको भेजदेवो । आगे उनके देशमें अनार नहीं होता था। तिसने पांच पैसेके पांच अनार खरीद कर अपने घरको भेज दिये। जब कि, इसके घरमें अनार पहुँच गये उधर वहांका राजा उसी दिन बीमार होगया। हकीमने राजासे कहा, यदि अनारका फल मिलैगा, तब तुम अच्छे होगे, बरन यह बीमारी जल्दी जानेकी नहीं है । राजाके हुक्मसे अनारकी तलाश होनेलगी । तब किसीने बताया फलानेके घरमें कल पांच अनार आये हैं, राजाने मन्त्रीको भेजा, उन्होंने अनार देदिये, हकीमने अनारका रस निकालकर दिया, राजा अच्छा होगया । राजाने एक लाख रुपैया उनके घरमें भेजदिया। उसको जब इतना द्रव्य मिलगया तब उस अपने सम्बन्धीको सब हाल रुपैया मिलनेका लिख भेजा और यह भी लिख भेजा अब तुम नौकरी छोडकर अपने घरको चले आवो । जब उस नौकरको घरसे खत गया तब उसने सब हाल अपने राजासे कहा । राजाने कहा, पांच अनारके बदले उसका पांच लक्ष रुपैया देना था, उसने थोडा दिया है वह पांच पैसे हमारी सत्यधर्मकी कमाईके थे । अच्छा, अब तुम अपने घरको भी जावो। वह नौकर अपने घरको चला गया, ये सब हाल उस राजाको भी मिला, जिसने तिस राजाका राज्य लेलिया था उसने राजाको बडी खातिरदारीसे बुलाकर कहा, आप अपना राज्य लीजिये और मेरे कसूरको माफ करिये। राजाका मन फिर राज्य लेनेमें नहीं था परन्तु उसकी प्रार्थनासे लेलिया और वह अपने राज्यपर चला गया । हे चित्तवृत्ते ! सत्यधर्मकी कमाईमें इतनी बडी शक्ति है जो कि, तुमको सुनाई है, इसी हेतुसे सत्यधर्मकी कमाईका अन्न शुद्ध होताहै ॥ ६७॥

हे चित्तवृत्ते ! असत्यधर्मकी कमाईसे जो अन्न लिया जाता है वह अशुद्ध अन्न कहा जाता है।क्योंकि, अधर्मका असर तिस अन्नमें भी आता है,इससे वह अन्न चित्तकी अशुद्धिका हेतु होता है । अब अशुद्ध अन्नके फलको भी तुम सुनोः—

जिस कालमें भीष्मजी बाणोंकी शय्यापर शयन करके अनेक प्रकारके धर्मोंको युधिष्ठिरके प्रति सुनाने लगे, तिस कालमें द्रौपदीने भीष्मजीसे कहा, महाराज ! जिस समय दुःशासन मेरे केशोंको पकडकरके सभामें लाया था और दुर्योधन मेरेको नग्न करने लगा था तिस समयमें आप भी तिसी सभामें बैठे थे । आपने उस समयमें इस तरहके धर्मोंको सुनाकर दुर्योधनादिक पापियोंको क्यों न अधर्म करनेसे हटाया ? तब भीष्मजीने कहा, हे द्रौपदी ! तिस समयमें तिस पापी दुर्योधनके अन्नको हमने खाया था इसलिये उस समयमें हमको कोई भी धर्म नहीं फुराया। क्योंकि, पापीके अन्नको खाकर चित्त मलिन होजाता है और मलिन चित्तमें धर्मका स्फुरण नहीं होताहै । हे चित्तवृत्ते ! अशुद्ध अन्नमें इतनी बडी शक्ति है जिसने भीष्मजी धर्मात्माके चित्तको भी मलिन कर दिया, तब इतर पुरुषोंकी कौन कथा है ॥ ६८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और विरक्त महात्माका हाल सुनोः—

एक विरक्त महात्मा एक ग्रामके बाहर गुफा बनवाकर रहते थे । बहुतसे लोकोंको पास नहीं आने देते थे और स्त्रीका तो दर्शन भी नहीं करते थे।एक दिन दोपहरके वक्त एक युवती उनके लिये भोजनको लेगई उन्होंने भोजनको लेलिया और युवतीसे कहा तुम गुफाके बाहर बैठो । वह बाहर बैठी रही और वह भीतर भोजन करने लगे। भोजन करते ही उनका मन विकारी होगया। उन्होंने स्त्रीको भीतर बुलाया, वह भीतर चलीगई । उन्होंने स्त्रीके हाथको पकड कर कहा, हमसे सम्बन्ध कर । स्त्रीने कहा, यदि कोई पुरुष इस समय यहाँ पर आजायगा तब हमारी और आपकी फजीहत होगी । आपको ऐसा कर्म न करना चाहिये । वह जबरदस्ती करनेलगे, स्त्री चिल्ला उठी, इतनेमें एक दो सत्संगी वहांपर पहुँच गये, महात्मा बडे लज्जित हुये । उन्होंने कहा, महाराज! आपको तो कभी भी ऐसी वार्ता नहीं फुरी थी।आज ऐसे अधर्म करनेमें

आपकी रुचि कैसे होगई? महात्मा कहने लगे किसीने हमको दुष्ट अन्न खिलाया है, तिस अशुद्ध अन्नका यह फल है ॥ ६९ ॥

एक नगरमें एक पंडित बडा आचारवान् और विचारवान् रहता था, राजाके अन्नको और नीच जातिवालेके अन्नको वह कदापि नहीं खाता था । एक दिन राजाकी रानीने उनको किसी कार्य्यके लिये बुलाया, पंडितजी गये । रानी आंगनमें आकर पंडितजीसे बातचीत करने लगी और उसी स्थानमें रानीने अपना मोतियोंका हार उतार कर धर दिया । रानी बातचीत करके गृहके भीतर चली गई । रानीका मोतियोंका हार उसी जगहमें छूट गया । पंडितजी हारको उठाकर अपनी जेबमें डालकर घरको चले आये । घरमें आकर जब पंडितजीने अंगरखा उतारा, तब जेबसे हार गिरा । पंडितजी हारको देखकर शोच करने लगे, ऐसा अधर्म हमसे क्यों हुवा । स्त्रीसे पूछा आज अन्न कहाँसे आया था ? स्त्रीने कहा एक सुनार दे गया था, सुनारको बुलाकर पूछा । उसने कहा, हमने एकके जेवरमेंसे सोना थोडासा चुराया था, उसको वेंचकर अन्न खरीदकर थोडासा आपके यहां भेजा था बाकीका अपने घरको भेजा था । पंडितने कहा, उसी अन्नका यह फल है जो हमने मोतियोंके हारकी चोरी कर ली है । हारको रानीके पास भेज दिया । आपने उस दिन उपवासव्रत किया । हे चित्तवृत्ते ! दुष्ट अन्न महात्मापुरुषोंके चित्तको भी विकारी कर देता है, तब इतरोंकी कौन कथा है ॥ ७० ॥

हे चित्तवृत्ते ! सत्यभाषणसे भी चित्तकी शुद्धि होती है, असत्य भाषणसे चित्तकी अशुद्धि होती है और अन्नकी शुद्धिका भी मूलकारण सत्यभाषण ही है । सत्यभाषणके तुल्य संसारमें दूसरा न कोई धर्म है न भक्ति है । सत्यभाषणवालेकी जगत्में प्रतिष्ठा होती है इसलिये सत्यवादियोंके भी इतिहासोंको तुम सुनोः—

एक ब्राह्मणके दो पुत्र थे । जब कि एक लडका तिसका बारह बरसका हुवा और दूसरा आठ बरसका हुवा, तब तिस ब्राह्मणका देहांत होगया । तिसके देहांत होनेके कुछ दिन पीछे बडे लडकेने अपनी मातासे कहा, हम

विदेशमें विद्याध्ययन करनेको जायँगे. आप हमको विदेश जानेके लिये आज्ञा दीजिये । प्रथम तो तिसकी माताने हीलाहवाला किया । जब कि लडकेने बहुतसी विनती की तब माताने जानेके लिये तिसको आज्ञा दे दी और तिसकी माताने कहा बेटा ! पचास अशरफी मेरे पास हैं, तिसमें पचीस तो तुम्हारे छोटे भाईका हिस्सा है तिसको तो मैं अपने पास रख छोडती हूँ और पचीस अशरफी जो कि तुम्हारा हिस्सा है तिनको मैं तुम्हारी गोदडीमें सी देती हूँ । जहां पर तुमको खरचका काम लगे एक एक निकालकर अपना काम चला लेना । जब कि लडका काफलेके साथ होकर विदेशमें जाने लगा तब माताने तिससे कहा, बेटा ! एक वचन हमारा और भी मानना । बेटेने कहा, माता कहो। तिसने कहा बेटा ! झूँठ कभी नहीं बोलना चाहे सर्वस्व भी नष्ट होजाय, तब भी झूँठ नहीं बोलना । बेटेने कहा,माता ऐसाही करूंगा । मातासे रुखसत होकर लडकेने काफलेके साथ चल दिया । एक दिन जंगलमें काफला जाकर उतारा। रात्रिके समय चोरोंकी एक धाड तिस काफलेपर आपडी और सबको चोर लूटने लगे । सबको लूटकर फिर तिस लडकेसे आकर चोरोंने कहा, लडके तुम्हारे पास क्या है ? लडकेने कहा, हमारे पास पचीस अशरफी हैं, चोरोंने कहा वह कहाँपर हैं, लडकेने कहा, इस गोदडीमें सब सिईं हुईं हैं । चोरोंके सरदारने गोदडीको जब खोल कर देखा तब तिसमें ठीक ठीक पचीस अशरफी निकल आईं। चोरोंके सरदारने कहा लडके तुमने हमको अशरफी क्यों तवाईं हम तो चोर हैं सबको लूटनेके लिये आये हैं, सबको लूटा है, यदि तुम न बताते तब तुम्हारी अशरफी बच जातीं।लडकेने कहा, जब हम घरसे विदेश जानेके लिये निकले थे तब हमारी माताने हमसे कहा था बेटा झूँठ कभी भी नहीं बोलना चाहे सर्वस्व चला जाय, मैंने कहा ऐसेही करूंगा । अपनी माताकी आज्ञाको हमने पालन किया है, इसवास्ते हमने आपको अपनी अश-रफी बतादी हैं । चोरोंके सरदारने कहा, देखो बडे आश्चर्यकी वार्ता है, यह छोटासा बालक होकर अपनी माताकी आज्ञाको नहीं फेरता है और इसने पूर्णरूपसे अपनी माताकी आज्ञाका पालन किया है। इसको हम धन्यवाद देते हैं और हम लोगोंको धिकार है जो अपने स्वामी ईश्वरकी आज्ञाको पालन नहीं

करते हैं, क्योंकि ईश्वरने कहा है, किसी जीवको भी मत सतावो और हम सताते हैं। ईश्वरकी आज्ञाको नहीं पालन करते हैं. आजसे पीछे हम भी निंदित कर्मको नहीं करेंगे और मजदूरी करके खावेंगे। चोरोंके सरदारने जितना माल उस काफलेका लूटा था सबको फेर दिया और लडकेकी गोदडीमें उन अशरफियोंको सीकर तिस लडकेके हवाले कर दिया और तिस लडकेको जहांपर जाना था, वहांपर तिसको पहुँचा भी दिया। हे चित्तवृत्ते! एक लडकेके सत्यभाषणसे सब काफलेका माल भी बचगया और वह चोर भी साधु बनगये ॥ ७१ ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और सत्यवादीके इतिहासको तुम सुनोः—

हे चित्तवृत्ते! एक समय चातुर्मासमें वर्षा न होनेके कारण बडा अकाल पडा। अन्नके विना लोक बडे दुःखी हुए। सब लोक मिलकर राजाके पास गये और राजासे प्रजाने कहा, वर्षाके विना लोक मरे जाते हैं, कोई उपाय करना चाहिये। तब राजाने भी बहुत मन्त्रोंके जप कराये और भी अनेक प्रकारके पाठ पूजा आदिक कराये, तब भी वर्षा न हुई। राजाने अपने मंत्रि-योंसे कहा, आपलोक अब कोई उपाय बतावें जिसके करनेसे वर्षा हो, नहीं तो प्रजा सब नष्ट भ्रष्ट होजायगी। मंत्रियोंने कहा, महाराज! इस नगरके फलाने दरवाजेके पास एक क्षत्रीकी दूकान है वह बडा सत्यवादी है, यदि आप उससे कहें और वह ईश्वरसे प्रार्थना करे तब अवश्य ही वर्षा होगी। राजा सबेरे पालकीमें सवार होकर उसकी दूकानपर जा बैठे। उसने कहा राजन्! आपके आगमनका कारण क्या है? राजाने कहा, महाराज! पानी नहीं बरसताहै पानी बरसानेके लिये आपके पास आये हैं। क्षत्रियने कहा, राजन्! किसी देवता वगै-रहकी पूजा कराओ। राजाने कहा, सब उपाय हम कर चुके हैं, अब आपकी शरणको आये हैं जबतक वर्षाको नहीं करोगे तबतक हम भोजन नहीं करेंगे। उन्होंने राजाको बहुतसी बातें कहकर टाला परन्तु राजाने एक भी न मानी। जब दोपहर हो गई और राजापर भी धूप आगई तब तिसने समझलिया कि अब राजा किसी तरहसे भी नहीं जाता है, तब उन्होंने अपने तराजूका पसन्ना करके कहा हे तराजू! यदि हमने हमेशा सचही बोला है और सच्चा

सौदा ही किया है तब तो वर्षा हो। यदि हमने झूठ बोला है और झूठा ही सौदा किया है, तब तो वर्षा न हो। इतना कहते ही दो मिनटके पीछे पूर्व दिशासे एक बादल उठा और देखते २ ही उसने आकाशको आच्छादन कर लिया और पानी बरसने लगा, इतना जोरसे पानी बरसने लगा जो राजाको अपने घरतक पहुँचना मुश्किल होगया। उधर तो राजा पालकीपर सवार होकर अपने घरको गये और इधर इन्होंने दूकानको बन्द करके कहींको चल दिया। हे चित्तवृत्ते! सत्यवादीकी वाणीमें सिद्धि रहती है तिसका कथन निष्फल नहीं जाता है ॥ ७२ ॥

हे चित्तवृत्ते! सत्संगसे भी चित्तकी शुद्धि होती है और कुसंगसे चित्तकी अशुद्धि होती है। अब तुम सत्संगके माहात्म्यपर भी एक दो दृष्टान्तोंको सुनो:—

एक राजाके नगरके बाहर दो महात्मा रहते थे और राजा भी कभी २ उनके पास जाया करते थे। उसी राजाके नगरमें एक भारी चोर रहता था, वह नित्य ही चोरी करता था परन्तु कभी पकडा नहीं गया था। एक दिन वह चोर भी भगवां वस्त्र करके साधुका भेष बनाकर उन दो महात्माओंके पास जा बैठा। तीसरे पहर राजा जब उन दो महात्माओंके दर्शनको गये तब राजाने देखा एक तीसरे नये महात्मा भी वहांपर बैठे हैं। राजा उन दो महात्माओंके पास होकर फिर उन तीसरे महात्माके पास जाकर बैठ गये और कुछ द्रव्य भेंटके लिये राजाने उनके आगे धर दिया था। तब चोरने राजासे कहा, राजन्! मैं साधु नहीं हूँ, मैं तुम्हारे नगरका चोर हूँ। साधु जानकर मेरे आगे आप द्रव्यको क्यों रखते हैं? राजाने कहा, आप अपनेको छुपानेके लिये ऐसा करते हैं। आप महात्मा हैं। फिर चोरने कहा, मैं सच्चा कहता हूँ मैं साधु नहीं हूँ, थोडे द्रव्यके लिये मैं लोकोंको लूटनेवाला हूँ। राजाने कहा, जब कि आप थोडे द्रव्यके लिये लोकोंको लूटते हैं तब यह बहुतसा द्रव्य जो कि मैं आपको देता हूँ इसको आप क्यों नहीं अंगीकार करते हैं? चोरने कहा मैंने चोरके भेषको त्यागकर अब साधुका भेष बनाया है। एक तो इस भेषको लज्जा लगजायगी, दूसरा दो घडीका महात्माका संग होनेसे मेरी वह बुद्धि अब जाती रही है। जो कि, अधर्म करके लोकोंसे द्रव्यको मैं लेता था उस वृत्तिको

त्याग करके मैं अब निवृत्तिमार्गमें होगया हूँ । हाथीकी सवारी करके अब मैं गधेकी सवारी करनी नहीं चाहता हूँ। राजा द्रव्यको लेकर चले गये, वह चोर भी दो घडीके सत्संग करनेसे साधु बनगया ॥ ७२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक नगरके बाहर चोरोंके दो चार घर थे, एक चोरके पांच लडके थे, वह नित्यही अपने लडकोंको उपदेश करता था, बेटा ! कभी भी किसी मंदिरमें न जाना और न कभी सत्संगमें और न कथावार्तामें जाना और न कभी किसी महात्माके पास जाना । इसी तरहके वह उपदेशोंको करता २ एक दिन मर गया । उसके मरनेके थोडे दिन पीछे एक दिन तिसके बडे लडकेके मनमें आया, आज रात्रिको राजाके घरमें चलकर चोरी करके कुछ मालटाल लावें । रात्रिके समयमें वह जब अपने घरसे चला तब रास्तामें कथा होती थी, उसको देखकर तिसने विचार किया, पिताका उपदेश है जहांपर कथा होती हो वहांपर नहीं जाना । अब इस रास्तासे हम कैसे निकलें, या कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिस करके हमारे कानमें कथाका शब्द न जाय । उसने दोनों कानोंमें थोडी २ रुई भरदी और कथाके बीचसे होकर चला । जब कि, कथाके समीप पहुँचा तब तिसके एक कानसे रुई गिर गई उस वक्त ऐसी कथा हो रही थी, देवताकी परछाई नहीं होती है और देवताके भूमिपर पांव भी नहीं लगते हैं । इतनाही उसने सुना और राजाके घरमें सेंध लगाकर बहुतसा माल तिसने चुराया और लेजाकर अपने घरमें तिसने गाड दिया था । सबेरा जब हुआ तब राजाको मालूम हुआ जो रात्रिको चोरी हो गई है । राजाने चोरके पकडनेके लिये हुक्म दिया। कई एक सिपाही चोरकी खोज करते रहे परन्तु चोरका पता न लगा-सके; तब राजाने वजीरसे कहा, अब वजीर भेष बदल कर चोरका पता लगाने लगे। वजीरने नगरके बाहर जो कि चोरोंके घर थे उनहीं घरोंमें चोरका अनुमान किया । रात्रिके समय वजीर कालीदेवीका स्वांग बनाकर अर्थात् बदनमें स्याई मलकर बालोंको खोलकर एक हाथमें खप्पर लेकर आधीरातके समय उनके द्वारपर जाकर कहने लगा, काली माईकी भेंटको आपलोक क्यों नहीं देते हो ? रोज २ मनमाना माल ले आते हो, आज सब भेंट हमारी देदो

नहीं तो नाश करदेऊँगी। डरके मारे सब भाई बाहर द्वारके निकल आये और हाथ जोडने लगे, माता! तुम्हारी भेंटको कल हम जरूर देवेंगे इतनेमें बडे बटको कथावाली वार्ता याद आगई। उसने कहा, चलकर दिया लेकर देखें तो जब तिसने दीयेसे देखा तो तिसकी परछाईंभी दिखाई पडी और पृथिवी पर पांवभी लगे हुए देखे। उसने जान लिया यह देवता नहीं है यह तो कोई ठग है, लट्ठ लेकर कालीको मारने चला काली भाग गई तब तिसने विचार किया हमने दो बातें कथाकी सुनी हैं, उन्ही दो बातोंने हमारी जान बचाई और हमारा मालभी बचाया है। यदि हमलोक हमेशा सत्संगमें जाया करेंगे और इस खोटे कर्मको छोड देवैंगे तब तो हमको महान् फल होगा, ऐसा विचार करके चोरने उसी दिनसे चोरी करनी छोड दी और सत्संगमें सब जाने लगे वह सब चोर साधु बनगये। ऐसा सत्संगका माहात्म्य है ॥ ७४ ॥

हे चित्तवृत्ते! सत्संगका ऐसा माहात्म्य है जो चोरभी साधु बनजाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! एक बगीचेमें एक गुलाबके पेडमें जंगली घासने जड पकड ली और धीरे २ वह बढने लगी। एक दिन बागवान्ने उसको फलते देखकर काटना चाहा तब उस घासने कहा हमको मत काटो, क्योंकि हमारेमें गुलाबकी सुगंधी आदिक गुण आगये हैं। गुलाबकी संगतसे अब मैं गुलाबरूप होगयी हूँ, मैं घास नहीं रही हूँ, यदि मेरेमें गुलाबवाले गुण न आते तब काटना मुनासिब था। बागवान्ने तिसको न काटा। सत्संगका ऐसा फल है और कवियोंने भी सत्संगके फलको दिखाया है ॥ ७९ ॥

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ॥
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥ १ ॥

महान् पुरुषोंका जो संग है, वह किसकी उन्नतिको नहीं करता है? कमलके पत्रपर स्थित जलकी बूँद भी मोतीकी शोभाको धारण करती है ॥ १ ॥

दोहा।

जोहि जैसी सङ्गत करी, तैं तैसो फल लीन।
कदली सीप भुजंगमुख, एक बूँद गुण तीन ॥ १ ॥

जल जिमि निर्मल मधुर मधु, करत ग्लानिको अन्त ।
पान किये देखे छुये, हरष देत तिमि सन्त ॥ २ ॥

सवैया ।

ज्ञान बढै गुनवानकी संगत ध्यान बढै तपसी संग कीने ।
मोह बढै परिवारकी संगत लोभ बढै धनमें चित दीने ॥
क्रोध बढै नर मूँढकी संगत काम बढै तियके संग कीने ।
बुद्धि विवेक विचार बढै कवि दीन सुसज्जन संगत कीने ॥

दोहा ।

तुलसी लोहा काठ सँग, चलत फिरत जलमाहिं ॥
बडे न डूबन देत हैं, जाकी पकडैं बाहिं ॥ १ ॥
नीचहु उत्तम संग मिल, उत्तमही ह्वै जाय ॥
गंग संग जल झीलहू, गंगोदकके भाय ॥ २ ॥
जाहि बडाई चाहिये, तजै न उत्तम साथ ॥
ज्यों पलाश संग पानके, पहुँचे राजा पास ॥ ३ ॥
भले नरनके संगसे, नीच ऊँचपद पाय ॥
जिमि पिपीलिका पुष्पसंग, ईश शीश चढ जाय ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक दिन बडी वर्षा होतीथी और सरदीके दिन थे, एक नग्न साधु घूमते हुए नगरमें एक मकानके छज्जेके नीचे द्वारपर खडे होगये, वह मकान राजाकी वेश्याका था । मकानके भीतरसे एक लौंडीने उन महात्माको देखकर जाकर अपनी बीबीसे कहा, एक महात्मा नग्न कीचमें लिपटे हुए बाहर वर्षामें खडे काँप रहे हैं और बोलते चालते भी नहीं हैं । वेश्याने लौंडीसे कहा, उनका हाथ पकड कर तू उनको भीतर मकानके ले आ । लौंडी जाकर उनका हाथ पकडकर मकानके भीतर ले आई । बीबीने गर्म जलसे उनको स्नान कराकर बदन पोंछकर बिछोनेपर लिटा दिया और गर्म चाह पिलाई । फिर सुन्दर भोजन कराया, पश्चात् आप भोजन करके उनके पाँव दाबने लगी । तब महात्माने उस वेश्याकी तरफ एक निगाहसे देखा

मानो उसके हृदयमें अमृतकी धारा वरसादी और सोगये । वह वेश्या रात्रिभर उनके पांवको ही दबाती रही, सवेरे वह सोगई । महात्माकी जब नींद खुली उन्होंने भी रजाईको फेंककर चल दिया, कुछ देरके पीछे वेश्याकी जब नींद खुली तब उसने लौंडीसे पूछा महात्मा कहांको गये हैं ? लौंडीने कहा वह जङ्गलको चले गये । वह वेश्या भी नग्न ही घरसे निकल कर नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे जाकर नीचे सिर करके बैठी रही।राजाको खबर हुई,राजा तिसके पास गये और उसको बुलाने लगे , तब वेश्याने कहा, अब मैं वह भंगन नहीं रही हूँ. जो कि पहले तुम्हारे मैलेको उठाती थी अब तुम चले जावो । राजाने नौकरोंको हुक्म किया कि,कोई आदमी इसके पास आने न पावे।जहां जानेकी इसकी इच्छा हो वहांपर यह चली जाय कोईभी इसको न रोकै । दूसरे दिन वह वेश्या वहांसे चली गई । हे चित्तवृत्ते ! महात्माकी नजर जिसपर पडजाय वह भी कल्याणरूप होजाता है । इसीपर गुरु नानकजीने कहा है–" नानक नदरी नदर निहाल" गुरु नानकजी कहते हैं, महात्मा अपनी दृष्टि करके ही दूसरेको कृतार्थ कर देते हैं ॥ ७६ ॥

छप्पय ।

लियो नीम सत्संग भयो मलयागिर चंदन ॥
लोहा पारस परस दरस दरसत है कुंदन ॥
मिलै सुरसरी नीर सरि निहचै सो गंगा ॥
मिश्रीसों मिल वंश तुल्यो ताहूके संगा ॥
लोह तरचो नौका मिले साखी सकल सुन लीजिये ॥
साधु संगते साधु मिल रामनाम रस पीजिये ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! उपकार करनेसेभी चित्तकी शुद्धि होती है, दयाका नाम ही उपकार है, जिसमें दया होगी वही उपकार करेगा । जिसमें दया न होगी वह कभी भी उपकार नहीं कर सकता है । लोकमें भी दयालु पुरुषकी कीर्ति होती है और दयाहीनकी निंदा होती है । 'दयाबिन सिद्ध कसाई' ऐसा लोक कहते हैं । दया चित्तकी शुद्धिका मुख्य साधन है । अब तुमको दयालु पुरुषोंके दृष्टांतको सुनाते हैं:–

एक नगरके बाहर एक मंदिरमें एक महात्मा रहते थे,वह नित्य ही वेदांतकी कथाको करते थे, उनकी कथामें एक क्षत्रिय भी जाता रहा परन्तु गरीब था। सडकके किनारेपर खुमचा लगाकर बैठकर वेचता था। एक दिन उसने महात्मासे कहा, महाराज ! हमने अन्वयव्यतिरेक करके देहादिकोंसे भिन्न आत्माको निश्चय कर लिया है और महावाक्योंकरके तथा अनुभव करके भी जीव आत्माका अभेद निश्चय कर लिया है, फिर भी हमको उस आत्मसुखकी प्रतीत नहीं होती है इसमें क्या कारण है ? महात्माने कहा, कोई पाप पूर्व जन्मका इसमें प्रतिबंधक है वह पाप जव कि दूर होजावेगा तव तुमको आपसे आप उस सुखकी उपलब्धि होजायगी। महात्माकी वार्ताको सुनकर वह चुप रहगया। एक दिन वह क्षत्रिय सडकके किनारेपर कूएके समीप छायामें खूमचा रखकर बैठा था, गरमीके दिन थे एक चमार घासका गट्ठा उठाकर चला आता था जब कि वह कूएंके समीप पहुँचा तव गरमी खाकर गिर पडा और वेहोश होगया। तुरंत ही वह क्षत्रिय उठा और तिस चमारको उठाकर तिसने छायामें करदिया और ठंढा पानी निकाल शरवत बनाकर तिसके मुखमें थोडा २ डारुना शुरू किया। थोडी देरमें वह चमार होशमें आगया, कुछ थोडासा तिसको दानाभी खिलाया, वह चमार उठकर चला गया। उसी दिनसे उस क्षत्रियके हृदयमें आत्मसुख भान होने लगा। उसने जाकर महात्मासे कहा। महात्माने कहा,तुम्हारेमें जो कोई पाप प्रतिबंधक था वह दया करनेसे जाता रहा। क्योंकि तुमने एक आदमीको प्राणदान दिया है। हे चित्तवृत्ते ! दयाका वडा भारी फल है. दयासे सर्व प्रकारके पाप दूर होजाते हैं और इस लोकमें भी यश मिलता है ॥ ७७ ॥

एक नगरमें एक वनियां वडा धनी था, वह नित्य ही यज्ञोंमें अपने धनको खर्च करता था, जब कि सव धन बनियांका खर्च होगया, तव बनियांको खानेपीनेसे भी तंगी होने लगी। तव तिसकी स्त्रीने कहा, तुम किसी राजाके पास जावो और एक यज्ञके फलको वेंचकर कुछ द्रव्य लाकर अपना अच्छी तरहसे गुजर करो। जव कि बनियांने जानेकी तैयारी करी तव तिसकी स्त्रीने नौ रोटी मोटी २ रास्तेमें खानेके लिये तिसके कपडेमें बांध दी। बनियाँ

तीसरे प्रहर जंगलमें एक कूएंके किनारे पहुँचा और वहांपर बैठकर सुस्ताने लगा तब देखता क्या है वृक्षकी कोटरमें एक कुतिया ब्याई हुई पडी है, नव तिसके बच्चे हैं तिसको चूस रहे हैं और तीन दिनकी वह भूखी है, क्योंकि तीन दिनसे वर्षा बराबर हो रही थी कहींको वह जाने नहीं पाई। अतिकृश और दुर्बल हो गई थी, अब उसमें कहीं जानेकी हिम्मत भी नहीं थी। बनियांने एक एक रोटी करके सब रोटी तिसको खिलादीं और आप भूखा रह गया। कुतिया जी गई, तिसके जीनेसे तिसके बच्चे भी सब जी गये। बनियां दूसरे दिन राजाके पास पहुँचा और एक यज्ञके फलके बेचनेको कहा। राजाने ज्योतिषीको बुलाकर पूंछा, तुम प्रश्न देखो इसने कितने यज्ञ किये हैं, उन सबमें किस यज्ञका फल उत्तम है उसीको हम खरीद करेंगे। ज्योतिषीने कहा, जो कि, इसने रास्तामें कुतियाको रोटियें खिलाई हैं उससे नव जीवोंके प्राण बचे हैं वही इसके सब यज्ञोंमेंसे उत्तम यज्ञ है उसीके फलको यदि यह बेचे तब तुम खरीदकर लेओ। राजाने बनियांसे कहा। बनियांने कहा, तिस यज्ञके फलको मैं नहीं बेचूंगा और किसी यज्ञके फलको खरीदो तो बेचूंगा। राजाने और यज्ञके फलको न खरीदा और बनियांको कुछ रुपैया देकर बिदा कर दिया। हे चित्तवृत्ते ! दयाका कितना बडाभारी फल है ॥ ७८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मनुष्य तो दया करतेही हैं, परन्तु इतर जीव भी दया करते हैं, अब मनुष्यसे इतर जीवोंका भी दयापर दृष्टान्त सुनो:—

एक पंडित रास्तेमें चले जाते थे, उन्होंने जंगलमें देखा कि मूसोंकी बडी भारी कतार चलीआती है, उनमें एक मूसा अन्धा था, उसके मुखमें एक घासका तिनका पकडाकर दूसरे मूसेने उसी तिनकेको अपने मुखमें पकडा था तिसके पीछे २ वह अन्धा मूसा भी चला आता था, अब देखिये मूसा आदिक जानवरोंमें भी उपकार करनेकी बुद्धि रहती है, जो मनुष्य शरीरको धारण करके उपकारसे हीन है वह पशुओंसे भी बुरा है. क्योंकि मनुष्यशरीर तो खासकर उपकार करनेके लियेही उत्पन्न हुआ है ॥ ७९ ॥

परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ॥
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि ॥ १ ॥

धनों करके और प्राणों करके भी परोपकार करना चाहिये, क्योंकि परोपकारके बराबर सौ यज्ञका भी पुण्य नहीं ॥ १ ॥

परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम् ।
यावन्तः पशवस्तेषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ २ ॥

जो मनुष्य परोपकारसे शून्य है तिसके जीनेको भी धिक्कार है, क्योंकि जितने पशु हैं, उनके चर्म भी परोपकार करते हैं ॥ २ ॥

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ३ ॥

अपने लिये इस लोकमें कौन मनुष्य नहीं जीता है, परन्तु जो परोपकारके लिये जीता है वही जीता है, दूसरा नहीं जीता है ॥ ३ ॥

दोहा ।

विरछा फलै न आपको, नदी न अचवै नीर ।
परोपकारके कारणे, संतन धरो शरीर ॥ ४ ॥
शेष शीश धारै धरा, कछु न आपनो काज ।
परहित परसारथि रथी, वाइक वने न लाज ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! अमेरिकामें एक सेनापति कुछ सेनाको लिये जाता था, जंगलमें रास्ताको वह भूल गया । यद्यपि दो चार घण्टेतक इधर उधर भ्रमण करता रहा, परन्तु रास्ता तिसको न मिला और सेना सब भूँख प्याससे भी बहुत घबराई। तिस जंगलमें एक घासका छप्पर तिस सेनापतिको दिखाई पडा तिस छप्परमें एक मनुष्य बैठा था। तिससे सेनापतिने कहा, हम लोकोंको भूँख और प्यास लगी है । उसने कहा, हमारे साथ तुम चलो। वह आगे २ चला पीछे तिसके वह सब सेना चली, थोडी दूर जब गये तब अन्नका ढेर दिखाई पडा । सेनापतिसे तिसने कहा, यह दूसरेका है इसको मत छूना। फिर आगे जब थोडी दूर गये तव एक अन्नका ढेर दिखाई पडा और पासही उसके पानीका तालाव था। उसने कहा, यह अन्न अपना है, जितना आपको चाहिये सो लेलीजिये और यह पानीका ताल भी मौजूद है । सेनापतिको जितने अन्न

जलकी जरूरत थी सो ले लिया। फिर उससे कहा, हमको अब तुम रास्ता बतावो, उसने साथ जाकर रास्ता भी उनको बता दिया। वह सब सेना आरामसे अपनी जगहपर पहुँच गई। अपने प्रयोजनसे बिना दूसरेका भला करना इसका नाम उपकार है।

हे चित्तवृत्ते! चित्तकी शुद्धिके साधनोंको तुम्हारे प्रति हमने कह दिया। अब तुम्हारी इच्छा क्या सुननेकी है सो कहो॥ ८०॥

इति श्रीस्वामि-हंसदासशिष्येण स्वामि-परमानंदसमाख्याधरेण विरचिते ज्ञानवैराग्यप्रकाशनामकग्रन्थे वैराग्योपदेशवर्णनं नाम प्रथमः किरणः॥ १॥

द्वितीय किरण।



हे चित्तवृत्ते! जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिके साथ मिलनेके लिये सम्पूर्ण विषय भोगोंका त्याग करके अपने मृतक पतिके साथ जलकर पतिके लोकको प्राप्त होजाती है, तैसे तू भी विषयभोगोंका त्याग करके अपने मनरूपी पतिके साथ ज्ञानरूपी अग्निमें सती न होजावैगी तबतक तेरेको आत्मसुखका लाभ कदापि नहीं होगा॥ १॥

हे चित्तवृत्ते! सर्पके पास एक मणि रहता है, तिस मणिमें दो गुण रहते हैं एक तो तिस मणिमें प्रकाश गुण रहता है, दूसरे आनंद गुण रहता है। सर्प तिस मणिके प्रकाश गुणको तो जानता है, परन्तु तिसके आनंद गुणको वह नहीं जानता है। जब कि तिस सर्पको भूख लगती है तब वह पर्वतकी अन्धेरी कंदरामें जाकर उसको अपने मुखसे निकालकर धर देता है। उस मणिके धरनेसे उस कन्दरामें प्रकाश होजाता है, तिस मणिके प्रकाशसे वह सर्प मच्छरोंको मार मार करके खाता है, दूसरे आनन्द गुणको वह जानता नहीं। इसलिये वह आनंदको प्राप्त नहीं हो सक्ता है और यदि तिस मणिके आनन्द गुणको वह जानता तब मच्छरोंके खानेसे वह आनन्दको न प्राप्त होता, किंतु तिसी मणिके आनन्द करके वह आनंदको प्राप्त होता। इसी

प्रकार हे चित्तवृत्ते ! तू भी तिस आत्माके प्रकाश गुणको जानती है, इसीसे तू तिस प्रकाशकरके विषयरूपी मच्छरोंको मार मार कर खाती रहती है। यदि तू तिस आत्माके आनंदरूपी गुणको जानती तब विषयोंके पीछे कदापि न दौडती ॥ २ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! वह आत्मा कौन है और कहाँपर रहता है और कैसे जाना जाता है और किस प्रकार तिसके ये दो गुण जाने जाते हैं ? मेरे प्रति विस्तारपूर्वक तिस आत्माका तू निरूपण कर ।

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! वह आत्मा सर्वत्र रहता है, परन्तु तिसकी उपलब्धिका स्थान यह शरीर ही है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व जगत्में बराबर ही पडताहै, परन्तु तिसकी उपलब्धि विशेषरूप करके जलमें या दर्पणमें ही होती है, तैसे सामान्यरूप करके आत्मा भी सर्वत्र विद्यमान है तथापि विशेषरूप करके शरीरमें ही रहता है और आत्माके प्रकाश करके ही शरीर भी प्रकाशमान होरहा है । चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! इस तरहसे जो आप कथन करते हैं, सो मेरे समझमें नहीं आता है। क्योंकि, मैं स्त्रीजाति स्थूल बुद्धिवाली हूं, आप दृष्टांतद्वारा तिस आत्माको मेरे प्रति बताइये ।

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! तुम एक मिट्टीका बना हुआ मटका लाओ जिसका मुख चौडा हो और पांच जिसमें ऊपरकी तरफ छिद्र हों रे और एक मिट्टीका दिया लावो जिसमें तेल बत्ती धरी हो, और एक सुन्दर रसवाला फल लावो, और एक कोई रूपवाली वस्तु लावो और एक बाजा लावो, और एक सुगंधीवाला पुष्प लावो और एक कोई कोमल स्पर्शवाली वस्तु लावो । चित्तवृत्ति सब वस्तुवोंको ले आई और कहने लगी, हे भ्राता ! आपने जो वस्तुएँ बताई हैं उन सबको मैं ले आई हूँ । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! अँधेरी कोठडीमें इस दियेको जगाकर पृथिवीपर धर देवो और इस मटकेको ऊंधा करके तिस दियेके ऊपर धर दो और पांचों छिद्रोंके पास उन पांच वस्तुओंको धर देवो । चित्तवृत्तिने दियेको जगाकर तिसके ऊपर मटकेको ऊँधा धरकर तिसके समीप पांचों

वस्तुओंको धर दिया। अब विवेकाश्रम चित्तवृत्तिसे पूंछते हैं, हे चित्तवृत्ते! ये जो पांचों छिद्रोंके समीप पांचों वस्तु रक्खी हैं सो हरएक छिद्रके पास जो हरएक वस्तु धरी हैं सो सब अपने प्रकाश करके तुमको दिखाई देती हैं या किसी दूसरे प्रकाश करके दिखाई देती हैं? चित्तवृत्ति कहती है, हे भ्राता! ये जो बाजासे आदि लेकर पांच वस्तुएं पांचों छिद्रोंके समीप रक्खी हैं सो सब अपने आपसे नहीं दिखाती हैं किन्तु दीपकके प्रकाश करके सब दिखाई पडती हैं, और मटका वगैरह भी सब दीपकके ही प्रकाश करके प्रकाशमान हो रहे हैं, स्वतः इनमें प्रकाश नहीं है। क्योंकि मटकेके भीतर यदि दीयेका प्रकाश न हो, तब मटका प्रभृति कोई भी प्रकाशमान न हो अर्थात् कोई भी दिखाई न पडे। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब मैं तेरेको दार्ष्टांतमें इस दृष्टांतको घटाकर समझाता हूँ। यह जो स्थूल शरीर है, मटकास्थानापन्न है, और जो इसमें मुख, नासिका, चक्षु करणादिक इन्द्रियोंके गोलक हैं, ये सब छिद्रस्थानापन्न हैं। अन्तः-करणरूपी दीपक है तिसकी वृत्तिरूपी वत्ती है, वासनारूपी तिसमें तेल भरा है, और ज्योतिरूप आत्मा तिस वत्तीमें आरूढ होकर प्रकाश कर रहा है, तिस आत्माके प्रकाश करके ही देहादिक इंद्रियें सब प्रकाशमान हो रही हैं स्वतः देहादिकोंमें प्रकाश नहीं है। क्योंकि, चेतनस्वरूप आत्माही है, आत्मासे भिन्न सब जड हैं। इसी वास्ते आत्माके सम्बन्ध करके देहादिक सब चेतन प्रतीत होते हैं, स्वतः इनमें चेतनता नहीं है। जब कि आत्मा इस शरीरका त्याग करदेताहै, तब यह मृत्तिका कही जाती है। जबतक आत्मा इसमें विराजमान है, तबतक यह सर्व व्यवहारोंको करता है, आत्माके चले जानेसे कोई व्यवहारको भी नहीं कर सक्ता, और आत्मा देहादिकोंमें रह करके भी सबसे असंग होकरके ही रहता है और देहा-दिकोंका साक्षी भी है। हे चित्तवृत्ते! जिस चेतन आत्माकी सत्ता करके देहादिक चेतनवत् प्रतीत होते हैं वही मेरा आत्मा है। चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम! आपने कहा है आत्मा देहादिकोंके अन्तर रहताहै और फिर असंग भी है यह वार्ता मेरी समझमें नहीं आती है, इसको फिर किसी दृष्टांत-द्वारा मेरेको समझाइये॥ ३॥

हे चित्तवृत्ते ! नृत्यशालामें जो दीपक जगाकर रात्रिके समयमें धरा जाता है वह दीपक तिस समग्र सभाको प्रकाश करता है और सभाके भीतर जो कि सभापति है तिसको भी प्रकाश करता है और जो नृत्य करनेवाली वेश्या है और जितने कि सभासद हैं अर्थात् नृत्यकारीके देखनेवाले हैं, उन सबको भी दीपक प्रकाश करता है और जितने कि वेश्याके साथ बाजोंको बजानेवाले हैं, उन सबको भी दीपक ही प्रकाश करता है, यह तो दृष्टांत है। अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं। यह शरीररूपी तो एक सभा है याने नृत्यशाला है, तिसके भीतर चेतनरूपी दीया प्रकाशमान हो रहा है, मनरूपी सभापति है, बुद्धिरूपी वेश्या नृत्यकारी नृत्य कररही है, इन्द्रियरूपी सब वाजोंके बजानेवाले हैं, विषयरूपी सभासद सब देखनेवाले हैं, जैसे दीपक अपने स्थानमें स्थित होकर सभा और सभापति आदिकोंको प्रकाश करता है और उनसे असंग होकर और उनका साक्षी होकर शरीररूपी सभाको और मनरूपी सभापति आदिकोंको प्रकाश भी करता है और उनसे असंग भी रहता है और मन आदि कोंका साक्षीरूप करके भी स्थित रहता है, दीपककी तरह किसीके साथ संसर्गको भी प्राप्त नहीं होता है, इस रीतिसे आत्मा असंग है ॥ ४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको भी तू श्रवण कर। जितनी रचना तेरेको बाहर दिखाई पडती है, इतनीही रचना इस शरीरके भीतर है बल्कि इससे अधिक भी कुछ रचना होती है। जैसे कि, बाहरके ब्रह्मांडकी रचना चेतन ईश्वरकी सत्ताकरके होती है, तैसे शरीररूपी ब्रह्मांडकी रचना जीवात्माकी सत्ता करके ही होती है सो भी तुमको दिखाते हैं। हे चित्तवृत्ते ! इस शरीरके भीतर नाभिस्थानसे एक नाडी निकली है, तिस एकसे फिर एकसौ नाडी निकली हैं, फिर उन सौ नाडियोंमेंसे एक एक नाडीसे वहत्तर ७२ हजार नाडी निकली हैं, फिर एक २ में आगे औरभी अनेक नाडियें निकली हैं, जो कि, बालोंके अग्रभागसे भी अति सूक्ष्म हैं, फिर इसी शरीरमें स्थूल नाडियें भी बहुतसी हैं, जो कि, सारे शरीरमें फैली हुई हैं। आगे उन नाडियोंमें भी तारतम्य है, परस्परस्थूल सूक्ष्मता है, जैसे वृक्षकी जडसे एक मोटी डाल निकलती है उस एकसे आगे चार पांच उससे कुछ पतली डालें निकलती हैं,

फिर उन एक २ डालसे अन्य पतली डालें निकलती हैं फिर उनसे और बहुतसी पतली २ निकलती हैं ऐसे ही इस शरीररूपी वृक्षका भी हिसाब है । फिर इसके भीतर और बडी भारी रचना हो रही है । नाभीसे ऊपर षट्चक्र हैं, फिर इसके भीतर बहुतसी हड्डियोंके जोड हैं, उनमें स्थूल सूक्ष्मता है, हजारों वैद्योंने इस शरीरके भीतरकी रचनाके जाननेके लिये बडे २ यत्न किये तबभी उनको पूरा २ हाल इसकी रचनाका न मिला क्योंकि जैसे बाहरका ब्रह्माण्ड अनन्त है, तैसे भीतरका ब्रह्मांड भी अनन्त है फिर शरीरमें अनेक स्थान बने हैं। प्रथम जब पुरुष अन्नादिकोंको खाता है, तब वह अन्न भीतर पेटमें जाता है, जठराग्नि वहांपर फिर तिसको पकाती है, फिर तिसका एक सारभूत निकलकर जुदे स्थानमें जाता है, मल नीचे गुदास्थानमें जाता है, जल मूत्रस्थानमें जाता है वह जो सार रस पका हुआ है, वह फिर दूसरे स्थानमें जाकरके पकता है । तिसका स्थूल भाग रुधिर होता है, सूक्ष्म भाग वीर्य होजाता है, उन दोनोंको नाडियोंमें व्यानवायु हिसाबसे बाँटती है, सब नाडियें और हड्डियें अपने २ कामको करती हैं। उसी चेतन आत्माकी सत्ता करके शरीरमें सब नाडियें वगैरह अपने २ कामको करती हैं, आत्मा नहीं करता। यदि आत्माको कर्त्ता मानोगे तब एकही आत्मा एक क्षणमें भीतरके हजारों कामोंको कैसे करसकैगा। और अनेक आत्मा एक शरीरमें रह नहीं सक्ते हैं जो अपना२काम सब करैंगे। यदि कहो आत्माके हुक्मसे सब मन इन्द्रियादिक और नाडियें आदिक अपना २ काम करते हैं सो भी नहीं बनता है । क्योंकि मन, इन्द्रिय और नाडी आदिक सब जड हैं, जडपर एक हुक्म नहीं होसक्ता है, दूसरा हुक्मकी तामील करनेका तिसको ज्ञान नहीं है । तीसरा राजा जैसे एक देशमें नौकरोंको काम करनेका हुक्म देकर आप दूसरे देशमें चलाजाता है और तिसके वहाँपर न रहनेसे भी काम होता रहता है तैसे आत्माके भी शरीरसे चले जानेपर काम होना चाहिये सो तो नहीं होता है इसलिये हुक्मसे कहना नहीं बनता है, हुक्म चेतनपरही होसक्ता है, जिसको तिसका ज्ञान है जडपर हुक्म नहीं होसक्ता है । इसलिये शरीरके भीतर आत्माके हुक्मसे काम होना बनता भी नहीं है। फिर सब किसीको यह ज्ञान तो है जो मेरा आत्मा देहके भीतर विद्यमान है, परन्तु यह ज्ञान किसीको भी नहीं है जो

मेरा आत्मा इदानींकालमें भीतर इस कामको कर रहा है या मन आदिकोंको हुक्म दे रहा है, या प्रेरणा कररहा है इसीसे जाना जाता है, आत्मा अकर्ता है, असंग है, केवल साक्षीमात्र है, जैसे बाहरके ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ती तारागण सब लोक हैं, और जड हैं, परन्तु व्यापक चेतन ईश्वरकी सत्ता करके अपने कामको सब कर रहे हैं। ईश्वर न किसीको प्रेरणा करता है और न किसीको कुछ कहता सुनता है, केवल चेतन ईश्वरकी सत्ता करके सूर्य्य चन्द्रमा आदिक सब तारागण अपने २ चक्रपर घूम रहे हैं और भी जगत्के काम सब हो रहे हैं। तैसे देहके भीतर भी जो कि चेतन आत्मा है, तिसकी सत्ता करके देहके भीतर सब काम हो रहे हैं। जब आत्मा देहको त्यागकर देहान्तरमें चला जाता है, तब देह मुरदा होजाता है, फिर गलसड जाता है। इन्हीं युक्तियोंसे साबित होता है आत्मा अकर्ता है असंग है। जिस वास्ते आत्माके प्रकाश करकेही सब काम देहमें होते हैं और बाहरका व्यवहार भी होता है इसी वास्ते आत्माके प्रकाश गुणका ही सबको ज्ञान है तिसके आनन्दगुणका ज्ञान किसीको नहीं, इसी हेतुसे जीव बाह्य विषयोंकी तरफ ही सब दौडते हैं। उस आनन्दरूपी गुणकी प्राप्तिका मुख्य साधन प्रथम वैराग्य है, फिर चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप योग दूसरा साधन है अर्थात् बाह्यविषयोंकी तरफसे वृत्तिको हटाकर अन्तर आत्माके सम्मुख करना ये दूसरा साधन आत्मानन्दकी प्राप्तिका है, इसीमें दृष्टान्तको दिखाते हैं ॥ ९ ॥

एक राजाकी कन्याकी मैत्री मन्त्रीके लडकेके साथ होगई। कुछ दिनोंतक तो यह वार्ता छिपी रही किन्तु फिर धीरे धीरे प्रगट होने लगी। तब राजाको भी इसका हाल माद्रुम होगया। राजाने अपने मनमें यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे मन्त्रीका लडका भी मर जाय और हमारी वदनामी न हो। राजाने अपने वैद्यको बुलाकर कहा एक ऐसी दवाई बनाकर डिबियामें वंद करके लाओ जिसके पास वह डिबिया रात्रिको धरीजाय वह आदमी उसकी सुगंधिसे मर जाय। वैद्यने कहा, कलको मैं ऐसी ही दवाई बनाकरके लाऊँगा। दूसरे दिन वैद्य वैसी दवाईको बनाकर डिबियामें वंदकर रूमालमें बांधकर राजाके पास ले आया। राजाने रात्रिके

समय उस डिवियाको एक लौंडीको दिया और कहा, इसको वजीरके लडकेके पलंगपर शिरकी तरफ धर आना। वह लौंडी जाकर उसके पलंगपर तकियाके पास शिरकी तरफ धर आई। आगे वह लडका अफीम खाता था तिसने जाना, नौकर अफीमकी डिवियाको धर गया है; उसने डिवियाको खोलकर उसमेंसे बहुतसी दवाई जहरवाली खाली परन्तु वह मरा नहीं, किन्तु जीताही रहा। तब राजाने इसका सबब वैद्यसे पूंछा। वैद्यने कहा, जिसकी गंधसे आदमी मर जाता है तिसके खानेसे भी जो नहीं मरा है इसका सबब यह है जो तिस आदमीका मन किसी दूसरेमें लगा है उसको अपने शरीरकी भी कुछ खबर नहीं है, इसीसे वह नहीं मरा है। उसके मरनेका सहज ही एक उपाय है। वह यह है जिसके साथ तिसका अति प्रेम है वह स्त्री सुन्दर भूषण और वस्त्रोंको पहरकर तिसके सामने खडी होकर उसकी आंखसे आंख मिलाकर कहै अब फिर कदापि नहीं आऊँगी, ऐसा कहकर तिसके सामनेसे हट जाय अर्थात् छिपजाय, तब वह तुरन्त ही मर जायगा। राजाने कन्यासे कहा। कन्या उसी तरह शृङ्गार करके तिसके सम्मुख जाकर तिसकी आंखमें आंख मिलाकर कहने लगी अब मैं फिर कभी भी नहीं आऊँगी, ऐसा कहकर जब वह हटी तुरन्त ही वह भी मर गया। कन्याके कहनेसे उसको ऐसा भारी दुःख हुआ जिस दुःखको वह सम्हार नहीं सका, तुरन्त ही उसके प्राण निकल गये। यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाते हैं। हे चित्तवृत्ते! बुद्धिरूपी राजकन्या है. मनरूपी लडकेके साथ इसका चिरकालका प्रेम होरहा है, बुद्धिरूपी कन्या जब कि, ब्रह्मविद्यारूपी शृंगारको करके मनके सम्मुख होकर मनकी तरफसे हटकर आत्माकी तरफ हो जाती है, तिसी कालमें मन भी विषयोंकी तरफसे मरजाता है, मनके मरनेके समकालमें ही पुरुषको आत्मानन्दकी प्राप्ति होजाती है और पुरुषका जन्म-मरण-रूपी संसार भी छूट जाता है। क्योंकि, यह संसार तो सब मनका ही बनाया हुआ है:—

ब्रह्मबिंदु उपनिषद्में कहा है:—

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ १ ॥

मन दो प्रकारका होता है, एक तो शुद्ध मन होता है, दूसरा अशुद्ध मन होता है । जो मन कामना करके युक्त है, वह अशुद्ध कहा जाता है और जो मन कामसे रहित है, वह शुद्ध कहा जाता है ॥ १ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ २ ॥

मनुष्योंका मन ही वन्ध मोक्षका कारण है । जब मन विषयोंमें आसक्त होजाता है तब बन्धका कारण होजाता है और जब निर्विषय होजाता है तब मुक्तिका कारण हो जाता है ॥ २ ॥

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥ ३ ॥

जिस हेतुसे मनके निर्विषय होजानेका नाम ही मुक्ति कथन किया है, तिसी हेतुसे मुमुक्षु पुरुषोंको उचित है कि मनको नित्यही निर्विषय करें ॥ ३ ॥

निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ४ ॥

विषयोंके सँगसे रहित होकर जब मन हृदयमें जिस कालमें रुक जाता है तिसी कालमें मन परमपदको प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानं च मोक्षश्च ह्यतोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥ ५ ॥

तावत्पर्यंत मनका निरोध करना चाहिये यावत्पर्यंत मन हृदयमें नाशको नहीं प्राप्त होजाता है । मनके नाश होजानेका नाम ही ज्ञान और मोक्ष भी है और तो सब ग्रन्थोंका विस्तारमात्रही है ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मनको प्रथम शुद्ध करना ही कर्त्तव्य है, मनकी शुद्धिके विना पुरुषको नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती है और मनकी शुद्धिसे रहित जो पुरुष है, वही अज्ञानी कहा जाता है । क्योंकि, तिसको अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं है और विना अपने स्वरूपके ज्ञानसे ही यह जीव दुःखको प्राप्त होता है । जहां तहां इसकी फजीहत होती है, इसीमें तुम्हारेको एक दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक पुरुषका नाम बेवकूफ था और तिसकी स्त्रीका नाम फजीहती था, एक दिन तिसकी स्त्री तिसके साथ लडाई झगडा करके कहींको चली गई, तब वह अपनी स्त्रीको जंगलमें खोजनेके लिये गया। एक आदमीने तिससे पूछा, तुम जंगलमें किसको खोजते हो? उसने कहा, मैं अपनी स्त्रीको खोजता हूँ। उसने पूंछा, तुम्हारी स्त्रीका नाम क्या है? उसने कहा, तिसका नाम फजीहती है। फिर पूंछा, तुम्हारा नाम क्या है? तिसने कहा, हमारा नाम बेवकूफ है। तब कहा, फिर तुम स्त्रीको क्यों खोजते हो बेवकूफको फजीहतियोंकी कौन कमती है। जहांपर जाओगे उसी जगहपर तुम्हारी बहुतसी फजीहती होजायगी। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं। अपने स्वरूपसे भूला हुआ जीव बेवकूफ हो रहा है, इधर उधर जंगलों और पर्वतोंमें पडा आत्माको खोजता है, इसी वास्ते जहांपर जाता है, वहांपर ही इसकी फजीहती होती है। क्योंकि, शरीरके अंतर आनंदरूप आत्माका त्याग करके क्षणपरिणामी विषयोंमें आनन्दको खोजता है। जैसे कूकर सूखी हड्डीको चबाता है, तब तिसके मसूढोंसे रुधिर निकसता है, तिसी रुधिरका रस तिसको स्वादु लगता है और वह जानता है इस हड्डीसे मेरेको स्वाद आरहा है। सूखी हड्डीमें स्वाद कहां है, स्वाद तो तिसको अपने रुधिरमें है। तैसे विषयी पुरुष भी विषयमें स्वादको मानता है, विषयमें स्वाद नहीं है, क्योंकि, विषय जड है स्वाद तो अपने आत्मामें ही है। यदि स्त्रीरूपी विषयमें आनन्द होता तब भोगोत्तर कालमें भी होता, ऐसा तो नहीं है। किन्तु वीर्यके स्खलन कालमें क्षणमात्र वृत्ति स्थिर होजाती है, तिस वृत्तिमें चेतनका प्रतिबिंब पडता है, तिसीसे इसको आनन्दकी प्रतीति होती है, वह आनन्द आत्माका ही है। विषयका नहीं है। परन्तु इतना इसको ज्ञान नहीं है जो यह आनन्द आत्माका है। यदि इतना इसको ज्ञान होजाय तब विषयोंके पीछे यह टक्करें न मारे। जिस वास्ते अज्ञानी बनकर विषयोंके पीछे यह जीव दुःख पाता है इसी वास्ते इसकी फजीहती होती है॥ ६॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयपर तुमको हम एक और दृष्टांत सुनाते हैं। एक पुरुषके पुत्रका नाम रूपसेन था। तिस रूपसेनके सम्पूर्ण वदनमें बाल बहुतसे

थे। जब कि वह बाल बहुत बढगये तब एक दिन तिसके पिताने मनमें विचार किया बालोंके बढजानेसे तो लडका हमारा बडा कुरूप जान पडता है, बाल इसके मूंड दिये जायँ, तब यह सुन्दर मालूम होने लगेगा। उसने लडकेसे बालोंके मुँडवानेके लिये कहा परन्तु लडकेने न माना क्योंकि वह उनके मुंडवानेके सुखको जानता नहीं था। जब रात्रिके समय लडका सो गया तब तिसके पिताने तिसके सब बालोंको मूँड डाला। सबेरे जब कि, लडका जागा तब तिसने अपने वदनपर बालोंको न देखकर जाना मैं तो वह रूपसेन नहीं हूं क्योंकि, रूपसेनके बदनपर तो बडे बडे बाल थे मेरे वदनमें तो वह नहीं हैं; चलो कहीं रूपसेनको खोज लावें। ऐसा विचार करके वह जंगलमें जाकर रूपसेनको खोजने लगा। जब कि तिसने रूपसेनको कहीं भी न देखा तब घरमें आकर अपने बापसे पूंछने लगा रूपसेन कहां है ? उसने कहा रूपसेन तू ही है। पिताके कहनेसे तिसका भ्रम दूर हुआ और तिसने जान लिया जिसको मैं खोजता था वह तो मैंही हूं मैं भ्रम करके अपनेको बाहर जंगलोंमें खोजता फिरता था। यह तो दृष्टान्त है। अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं। यह जो जीवात्मा है यह ही ईश्वररूप था, राग द्वेषरूपी बाल जो इसके अंत:-करणरूपी वदनमें निकसे थे, उन्हों करके यह कुरूप प्रतीत होता था। और अपने असली स्वरूपसे भूलकर अन्यरूपसे अपनेको इसने मान रखा था अर्थात् रागद्वेष कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकोंसे रहित होकर अपनेको कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकों-वाला इसने मान रखा था। पितारूप गुरुने इसकी कुरूपताके हटानेके लिये रागद्वेषरूपी बाल इसके दूर कर दिये तब भी इसका भ्रम दूर न हुआ, फिर भी अपनेको खोजताही रहा। जब इसको विचार हुआ, तब इसने फिर गुरुरूप पितासे पूछा वह रूपसेनरूपी आत्मा कहां है ? तिसने कहा वह तुमही हो, ऐसा जब कि, महावाक्यों करके तिसको बताया तब इसका भ्रम दूर हुआ और इसने जानलिया कि जिसको मैं अपनेसे भिन्न जान करके खोजता था वह तो मैंही निकला। फिर अपनेको सुखरूप आत्मा मानकर यह सुखी होगया ॥ ७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक बनियां बडा धनी और धर्मात्मा रहता था तिसका एकही लडका था, परन्तु तिस लडकेका चालचलन अच्छा नहीं था। बनियांने उसको सुमार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये बहुतसा उपदेश किया, तब भी लडकेने नहीं माना तब बनियांने क्या किया, कि एक लकडीके खम्भेमें बहुतसा द्रव्यभर करके तिसको मकानके भीतर आंगनमें गडवा दिया और अपनी वहीमें लिख-दिया, कि बेटा तुमको जब द्रव्यका काम पडै तब थम्भशाहसे लेलेना । कुछ दिनोंके पीछे वह बनियां मर गया तब तिसके लडकेने बाकीका सब धन भी खराब कर दिया जब कि, तिसके पास खानेको भी न रहा, तब वह बही-खातेको खोलकर देखने लगा। कई एक पत्र उलटनेके बाद एक पन्नेपर लिखाहुवा मिला बेटा जब कि तुमको कुछ रुपैयोंका काम पडे, तब थम्भशाहसे लेलेना । वह लडका थम्भशाहकी तलाश करने लगा । जब कि कहीं भी तिसको थम्भशाहका पता न लगा, तब दुखी होकर घरमें एक टूटीसी खाट-पर पड रहा । एक महात्मा तिस बनियांके गुरु कहींसे आ निकले । उन्होंने आकर बनियांको पूछा । लोकोंने कहा वह तो मरगये हैं और उसका लडका घरमें है परंतु सब धनको उसने उजाड दिया है, अब वह खानेसे भी तंग है । महात्मा बनियांके घरमें गये और जाकर देखा तो उसका लडका शोकयुक्त एक खाटपर पडा है । महात्माने हालचाल पूछा तो उसने सब हाल कह सुनाया । और यह भी कहा कि बहीपन्नेपर लिखा है जब कि, तुमको रुपैयाका काम पडै तब थंभशाहसे लेलेना । मैंने थंभशाहका बहुतसी तलाश की है परन्तु तिसका पता कहीं भी नहीं लगता है । महात्माने विचार किया थंभ नाम खम्भेका है मालूम होता है उस बनियांने लडकेको मूर्ख जानकर अपना धन खंभेमें गाड दिया है । महात्माने घरमें जाकरके देखा तो आंगनमें एक खंभा लगाहुआ उनको दिखाई पडा उन्होंने अपनी लाठीसे तिसको ठकोरा तब तिसमेंसे छन्नसी आवाज आई महात्माने जान लिया इसी खम्भेमें धन गाडा है । तिस लडकेसे कहा यदि तू आगे सुचालसे रहे तब हम तुमको थंभ-शाहको बताते हैं । लडकेने नेम कर दिया मैं कभी भी आजसे लेकर कुकर्म नहीं करूँगा । महात्माने कहा इस खम्भको तुम खोदो इसीमें तुमको धन मिलैगा । इसीका नाम थंभशाह है । लडकेने तिसको खोदा तब उसमें बहु

तपा धन तिसको मिला । उसी दिनसे कुकर्मका तिसने त्याग कर दिया और महात्माको गुरु करके मानने लगा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं । इस शरीररूपी थम्भमें पितारूपी परमेश्वरने आत्मरूपी धनको गाड दिया है, जीव विषयभोगरूपी कुकर्ममें लगकर जब दुःखी हुआ तब सुखरूपी धनकी तलाश करने लगा, महात्मारूपी गुरुने कहा बाहर सुख नहीं है सुखरूप धन तो तुम्हारे शरीररूपी खम्भेमें ही गडा है, महात्मा आत्मतत्त्ववित् गुरुकी कृपासे आत्मारूपी धनकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! जीवात्माके रहनेका नियत स्थान शरीरको आपने बताया है और ईश्वरात्माको सारे ब्रह्मांडभरमें आपने बताया है आपके कथनसे तो जीवात्माका और ईश्वरात्माका भेद सिद्ध हुआ, दोनोंका अभेद तो सिद्ध न हुआ । विवेकाश्रम कहते हैं-हे चित्तवृत्ते ! निरवयव निराकारका उपाधिके बिना भेद किसी प्रकारसे भी नहीं हो सक्ता है । उपाधियों करके ही जीवात्मा ईश्वरात्माका भेद प्रतीत होता है, वास्तवसे इन दोनोंका भेद नहीं है; किन्तु अभेद ही है । जैसे एकही आकाश घट मठ उपाधियोंके भेदसे घटाकाश मठाकाश कहा जाता है, वास्तवसे आकाशमें भेद नहीं है । उपाधियोंके विद्यमानकालमें भी आकाशका भेद नहीहै और उपाधियोंके नाश होजाने पर भी आकाशका भेद नहीं है, क्योंकि निराकार वस्तुका भेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता केवल भेदका कथनमात्रही है । तैसे निराकार निरवयव शुद्ध बुद्ध स्वरूप आत्माका भी भेद बिना उपाधिके किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता है उपाधियोंके विद्यमान कालमें भी आत्माका अभेदही है और उपाधियोंके नाश होजाने पर भी आत्माका अभेदही है । व्यवहारमें उपाधियोंके विद्यमान कालमें भेदका जो कथन है वह मिथ्या है, क्योंकि भेद केवल कथनमात्रही है वास्तवमें नहीं है । वह एकही चेतन माया अविद्या इन दो उपाधियों करके जीव ईश्वर नामसे कहाता है । स्वरूपसे जीव ईश्वरका भेद नहीं है । एकही चेतन तीन प्रकारके भेदको प्राप्त होजाता है, माया उपाधि करके सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहा जाता है और अविद्या उपाधि करके अल्पज्ञ असमर्थ जीव नामसे कहा जाता है । जो कि माया अविद्या दोनों उपायोंसे रहित है वह शुद्ध

ब्रह्म कहा जाता है । चित्तवृत्ति कहती है एकही चेतन तीन प्रकारका कैसे होगया ? आपसे आप होगया या किसी दूसरेने कर दिया ? आपसे आप तो नहीं हो सक्ता है, क्योंकि वह इच्छा आदिकोंसे रहित है, दूसरा कोई इससे बडा चेतन माना नहीं है, जिसने इसके तीन भेद कर दिये हों तब कैसे तीन प्रकारका चेतन बन गया ? विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! एकही चेतन मायाकरके तीन प्रकारका बन गया है।जैसे चेतन अनादि हैं तैसे माया भी अनादि है । अनादि उसको कहते हैं जिसकी उत्पत्तिका कोई भी आदि काल न हो जो उत्पत्तिसे रहित स्वतः सिद्ध हो वही 'अनादि कहा जाता है, जो उत्पत्तिवाला हो वह सादि कहा जाता है और तिस मायामें दो अंश हैं एक शुद्ध, एक मलिन । शुद्ध उपाधि ईश्वरकी है, मलिन जो अविद्या है वह जीवकी उपाधि है। उपाधियोंके अनादि होनेसे जीव ईश्वर भी दोनों अनादि कहे जातेहैं, इसीसे जीव ईश्वरका भेद भी अनादि कहा जाताहै और अविद्या चेतनका कल्पित संबन्ध भी अनादि है। तात्पर्य यह है जीव १, ईश्वर २, शुद्धचेतन ३, जीव ईश्वका भेद ४, अविद्या ५, अविद्याचेतनका सम्बंध ६, यह षट् पदार्थ अनादि हैं, इन छहोंमेंसे एक शुद्धचेतन अनादि अनंत है और बाकीके पांच अनादि सांत है अर्थात् जीवत्व ईश्वरत्व ये दो धर्म भी मिथ्या हैं केवल चेतन भाग जो धर्मी है सो सत्य है, वही सद्रूप चेतन एक है, द्वैतसे रहित है । द्वैत सब स्वप्नकी तरह कल्पित है, जैसे स्वप्नका प्रपंच सब झूँठा है बिना हुएही प्रतीत होता है, तैसे जाग्रत्का प्रपञ्च भी सब झूँठा है बिना हुवेही प्रतीत होता है । संपूर्ण जगत् जब कि बिना हुएकी तरह प्रतीत होता है, तब तिसमें यह कहना नहीं बनता है जो जगत्को किसने बनादिया है और कब बना है ? मायाका स्वरूप अनिर्वचनीय है । अनिर्वचनीय उसको कहते हैं जिसका कुछ भी निर्वचन अर्थात् निर्णय न होसकै । यदि सत्य कहें तब तिसका नाश न हो, सो नाश होता है । असत्य कहें तिसकी प्रतीति न हो, प्रतीति भी तिसकी होती है । सत्य असत्यसे विलक्षण हो उसीका नाम माया है । बडे बडे ऋषि मुनि इसका विचार करते करते हार गये किसीको भी मायाके स्वरूपका पता नहीं लगा है । जो मायाके पीछे पडता है उसीको माया काटकर खाजाती है ।

इसलिये बुद्धिमान् इस मायाके स्वरूपका निर्णय नहीं करता है किंतु जो इसके त्यागकी इच्छाको करता है वही इससे बच जाता है। इसमें एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:-

एक पुरुष एक वृक्षके नीचे बैठा था, ऊपरसे एक काले रंगका सर्प उनकी गोदमें आकरके गिरा, अब जो वह पुरुष यह विचार करै जो यह सर्प किसीने फेंका है या आपसे आप गिरा है। तबतक तो वह सर्प उसको काटही लेगा और वह विचार भी तिसका निष्फल होजायगा, इसलिये वह बिनाही विचारके तुरन्तही तिस सर्पको फेंकदे। सर्पके फेंकनेसे ही वह सर्पसे डरनेसे बच सक्ता है विचार करनेसे वह नहीं बच सक्ता है। इसी तरह मायाके स्वरूपका भी विचार है, मायाको भी अनिर्वचनीय जानकर तुरन्त ही इसका त्याग करदेवै और आत्माके विचारमें लग जावे तब शीघ्र ही आत्मानंदको प्राप्त हो जायगा ॥ ९ ॥

हे चित्तवृत्त ! एक और दृष्टांतको सुनो-किसी पुरुषने एक महात्मासे पूछा संसाररूपी वृक्षका बीज कौन है ? और इसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ और फल पत्र पुष्पादिक कौन हैं ? महात्माने कहा संसाररूपी वृक्षका बीज तो माया है। वह माया क्या है सो स्त्री है येही संसाररूपी वृक्षका बीज है और शब्द स्पर्श रूप रस गंधादिक इसके पत्ते हैं। काम क्रोधादिक इसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ हैं। पुत्र कन्यादिक तिसके फल हैं। तृष्णारूपी जल करके यह बढता है। जिस पुरुषने स्त्रीरूपी मायाका त्याग कर दिया है, उसने संसारका त्याग कर दिया है। क्योंकि स्त्रीही बंधनका कारण है, मोहके वशमें प्राप्त होकर पुरुष स्त्रीका संसर्ग करते हैं, क्षणमात्र सुखके लिये अनेक जन्मोंमें फिर कष्टको उठाते हैं और स्वर्गादिकोंमें जो विषयभोग हैं, उनकी प्राप्तिके लिये पुरुष बडे बडे उपवासादिक व्रतोंको करतेहैं वह सुख भी दुःखसे मिलाहुवा है और विचार दृष्टिसे तो सब लोकोंमें जितना कि, विषयजन्य सुख है वह बराबर ही है।

आत्मपुराणमें कहा है:-

रेतसो निर्गमो यावत्सुखं तावद्धि विद्यते।
विण्मूत्रयोर्विसर्गेऽपि ततो वै नाधिकं सुखम् ॥ १ ॥

स्त्रीके साथ भोगकालमें वीर्यके त्याग करनेमें जितना सुख होता है उतना ही सुख विष्ठा और मूत्रके त्याग करनेमें भी होता है, तिससे अधिक स्त्रीके संभोगका सुख नहीं है ॥ १ ॥

जायते म्रियते ब्रह्मा विट्क्रिमिश्च तथैव हि ।
सुखदुःखकरं तद्वत्सदेहत्वं समं द्वयोः ॥ २ ॥

जैसे क्रिमि जन्मता मरता है, तैसे ब्रह्मा भी जन्मता मरता है और सुख दुःख और सदेहत्व भी दोनोंको बराबर ही है ॥ २ ॥

तिस आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायमें दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिने इन्द्रके प्रति कहा है:—

निंदयामो वयं यद्वत्कष्टं जन्म शुनोऽधनाः ।
अस्माकं च तथैवैते निन्दन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥

ऋषि कहते हैं हे इन्द्र ! जैसे हमलोक कूकरके जन्मकी निंदा करते हैं, तैसे ही ब्रह्मवादीलोक हमारे जन्मकी निंदा करते हैं ॥ ३ ॥

उत्कृष्टता यथास्माकं स्वदेहे शक्र विद्यते ।
शुनोपि च स्वदेहे सा तादृश्येव हि वर्तते ॥ ४ ॥

हे इंद्र ! जैसे हम लोगोंकी उत्कृष्टता अपने देहमें है, तैसे कूकरकी उत्कृष्टता अपने देहमें है ॥ ४ ॥

श्वविष्ठासदृशो देहः शक्र सर्वशरीरिणाम् ।
हेयं धिया परित्यक्ते तस्मिन्नात्मा प्रकाशते ॥ ५ ॥

हे शक्र ! कूकरके विष्ठाके तुल्य सब जीवोंके शरीर भी मल मूत्रवाले हैं । हेय बुद्धिका त्याग करके तिसमें आत्माही प्रकाशमान है अर्थात् शरीरोंकी जैसे तुल्यता है तैसे आत्माकी भी है ॥ ५ ॥

हे चित्तवृत्ते ! विचार दृष्टिसे तो कहीं भी न्यूनाधिकता प्रतीत नहीं होती है केवल विचारकी न्यूनाधिकता प्रतीत होती है । विचारहीन दुःख पाता है, विचारवान् सुखको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक लडकेने मधु खानेके लिये मधुके छातामें हाथ डाला, ज्योंही तिसने मधुके लोभसे हाथ डाला त्योंही मधुमाखियोंने तिसको काट

खाया, यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टांतमें जीवरूपी लडकेने विषयरूपी मधुके भोगनेके लिये हाथ डाला आगे रागद्वेष रूपी मक्खियोंने इसको काट खाया है उनके काटनेसे यह दुःखी भी रहता है, तब भी उन विषयोंका यह त्याग नहीं करता है ॥ ११ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको सुनोः—किसी ग्राममें एक कुतिया व्याई थी; उसने बहुतसे बच्चे दिये, ग्रामके लडकोंने हरएकको अपना २ बनाकर तिसके गलेमें अपना २ पट्टा बाँध दिया । किसीने लाल, किसीने पीला किसीने काला, जिसने जिस बच्चाके गलेमें अपना पट्टा बांधा, वह बच्चा उसीके पीछे दौडने लगा, यह तो दृष्टांत है । दार्ष्टान्तमें अविद्यारूपी कुतिया व्याई है, तिसने जीवरूपी बच्चोंको किया है, आचार्यरूपी बालकोंने अपने २ कण्ठी और माला आदिक पट्टे अपने २ बच्चोंके गलोंमें बांध दिये हैं, इसी वास्ते वह अपने २ आचार्यके पीछे चलते हैं, विचार नहीं करते हैं इसी संसार चक्रमें सब जीव भ्रमते हैं । हे चित्तवृत्ते ! वेदांतशास्त्रके विना जितने शास्त्र हैं ये सब जीवको फँसानेवाले हैं, छुटानेवाला कोई भी नहीं है । क्योंकि सब इसको पापी अधर्मी ही बनाते हैं, असंग आत्माको पापोंका संगी वेदसे विरुद्ध बनाते हैं । वेदांतशास्त्र इसको पापोंसे रहित शुद्धबुद्धस्वरूप कहता है, तुम वेदांतको धारण करो ॥ १२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! किसी नगरमें एक साहूकार रहता था, तिसके तीन लडके थे । तीनों लडके जब सयाने होगये, तब एकदिन साहूकारने अपने तीनों लडकोंको बुलाकर कहा-मेरे पास एक अलौकिक मणि है, उस मणिमें अनेक गुण भरे हैं, और वह मणि इस डिबियामें रक्खी है, इस मणिको तुमलोक सँभाल करके रक्खो । रात्रिके समय अपनी २ पारी लगाकर अर्थात् रात्रिके तीन विभाग करके एक २ भागमें एक २ लडका इस मणिको लेकर एकांतमें बैठकर इस मणिमेंसे गुणोंको ग्रहण करै । लडकोंने मणिवाली डिबियाको लेकर हिफाजतसे धर दिया, कुछ कालके पीछे उनका पिता मरगया, तब लडकोंने एकदिन रात्रिके तीन विभाग करके अर्थात् सवा २ पहरकी एक २ की पारी लगादी । प्रथम एक लडका तिस मणिको लेकर कोठेपर एकांत

देशमें जाकर बैठा । जब कि, तिसने मणिको निकालकर अपने आगे रक्खा तब मणिके प्रकाशसे अँधेरा जातारहा, जब कि, कुछ क्षण मणिको रखे हुए व्यतीत हुआ तब तिसका मन खाली बैठनेमें न लगा । तब उसने क्या किया, थोडीसी राखको बटोरकर अपने पास रख लिया, जब कि थोडी देर बीते तब जरासी राखको मणिपर डाल देवे फिर जरासी अपने ऊपर डाल देवे, इसी तरह करते उसकी पारी गुजरगई । फिर दूसरेकी पारी आई उसको भी सवा पहर बिताना मुश्किल होगया । वह तिस मणिके प्रकाशमें शिकार करके खाने लगा । फिर जब तीसरेकी पारी आई और वह मणिको आगे रखकर बैठा, इतनेमें चन्द्रमा उदय होआया । चन्द्रमाकी किरण जो मणिपर पडी, तब मणिसे अमृत निकलने लगा, उस अमृतको वह पान करने लगा, तब तिसको बडा आनंद प्राप्त हुआ ।

हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाकर तुमको बताते हैं, वेदांतशास्त्ररूपी एक मणि है, उस मणिको तीन पुरुषोंने पाया है । एक तो वह पुरुष है, जो कि, वेदांतरूपी शास्त्रको पढकर मद्यपान परस्त्री-गमनादिकोंको करते हैं, वह तो राखको उडाकर अपने ऊपर और मणिके ऊपर डालते हैं । क्योंकि, ऐसे मणिको पाकरके फिर भी अपनी आयुको विषयविकारोंमें खोते हैं । दूसरे वह हैं जो कि, वेदांतरूपी मणिके प्रकाशसे शिकार करते हैं । उनका शिकार करना येही है । वेदांतकी बातोंको सुनाकर लोकोंसे धनको वंचन करना । तीसरे वह हैं जो कि, वेदांतरूपी मणिको पाकर तिसके प्रकाशसे सत्य असत्यका निर्णय करते हैं और मनको विषयोंकी तरफसे हटाकर आत्मामें लगाते हैं । वही तिस मणिके आनन्दगुणको प्राप्त होते हैं । इसीपर कहा भी हैः—

पाठकाः पठितारश्च ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥ १ ॥

जितनेक शास्त्रको पढने और पढानेवाले हैं और जो केवल चिंतन ही करनेवाले हैं, शास्त्रोक्त धारणासे शून्य हैं वह सम्पूर्ण व्यसनी और मूर्ख हैं, जो कि, शास्त्रको पढकर वैराग्यादि गुणोंकोधारण करता है वही पंडित है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! विना शास्त्रोक्त गुणोंके धारण करनेसे वह आत्मानंद कदापि नहीं मिलसक्ता है ॥ १३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! यह आत्मा असंग है, अकर्ता है, अभोक्ता है, देहादिकोंके साथ सम्बन्ध होनेसे इसने अपनेको कर्ता भोक्ता आदि गुणोंवाला मान रक्खा है, इसीपर तुमको एक और दृष्टांतको सुनाते हैं:—

किसी राजाके मंदिरमेंसे सोये हुए राजाके बालकको रात्रिके समयमें एक भील उठाकर ले गया और वनमें लेजाकर अपने लडकोंके साथ तिसको भी पालने लगा । जब कि, वह लडका कुछ बडा हुआ तब वह भी भीलोंके कर्मोंको करने लगा, अर्थात् घृणासे रहित होकर हिंसाप्रधान जितने कर्म हैं उन सबको वह करने लगा, तिसी वनमें एक महात्मा जा निकले । उन्होंने तिस लडकेको पहँचान कर कहा, तुम तो राजकुमार हो भील नहीं हो, भीलोंके साथ रहकरके तुमने भी अपनेको भील मान रक्खा है और अयोग्य कर्मोंको तुम कर रहे हो, तुम अपनेको चीन्हो और अपने स्वरूपका स्मरण करो । जब तुम अपनेको चीन्होंगे तब तुम भीलपनेको त्यागकर अपने राजमंदिरमें जाकर आनंदसे रहोगे । महात्माके वाक्यको सुनकर राजपुत्रको भी सब अपना पिछला स्मरण हो आया और उसको विश्वास होगया जो मैं भील नहीं हूँ किन्तु राजपुत्र हूँ । वह तुरन्तही भीलोंके वेशको त्यागकर अपने घरको चला आया, हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है । अब दार्ष्टान्तको सुनो; इस जीवरूपी राजकुमारने अज्ञानरूपी भीलकी संगति करके अपनेको भील मान रक्खा है, वह भीलपना क्या है कर्मभोक्ता पुनः पापी बनना, अज्ञानी बनना, इसीसे जीव नानाप्रकारके फलोंके देनेवाले कर्मोंको करता है और संसाररूपी वनमें दुःखी होकर पडा भ्रमता है । पूर्व जन्मके किसी पुण्य कर्मके प्रभावसे तिस जीवको जब कि आत्मवित् गुरुसे मिलाप होगया तब तिस महात्मा गुरुने उपदेश किया तू अज्ञानी नहीं है, याने भील नहीं है । तू न कर्ता है न भोक्ता है, न पुण्य पापके सम्बन्धवाला है, किंतु तू सच्चिदानन्दरूप है । तू अपने स्वरूपसे भूला हुआ है, अपने स्वरूपका तुम स्मरण करो और अपने आपको चीन्हो तब तुमको सुख होगा । महात्माके उपदेशसे तिसको अपने स्वरूपका स्मरण होता है, तभी तिस भीलपनेको त्यागकर सुखी होजाता है ॥ १४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! यह भेदवादी पुरुषको दुःखी करता है, इसी वास्ते शास्त्रोंमें भेदवादकी निंदा की है, अज्ञानी भेदवादियोंने ईश्वरमें भी भेदको लगाकर अपने अपने भिन्न २ ईश्वर कल्पना कर लिये हैं इसीमें तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं:-

एक वैष्णव साधु गणेशजीका भक्त था, गणेशजीकी उपासनाको वह बडे प्रेमसे करता था, उसने पांच तोला सोनेकी एक गणेशजीकी मूर्ति बनवाई और पांच तोला सोनेकी एक गणेशजीके वाहन मूसाकी मूर्ति बनवाई। दोनोंकी बडे प्रेमसे वह पूजा करने लगा। पूजा करते २ जब कि, कुछ काल व्यतीत होगया तब एक दिन तिसको कुछ द्रव्यका काम पडा। तिसके पास उस कालमें एक टका भी नहीं था, उसने विचार किया, इन मूर्तियोंको बेंचकर अब काम चला लेना चाहिये फिर कुछ द्रव्य कहींसे मिल जायगा, तब और मूर्तियें बनवा लेवेंगे। वह दोनों मूर्तियोंको लेकर एक सुनारके पास बेंचनेको लेगया। सुनारने दोनों तौलकर दोनोंका बराबरही दाम लगा दिया। तब वैरागीने उससे कहा, अरे लंडीके, गणेशजीको मूसेके बराबर करदिया। गणेशजी स्वामी हैं मूसा उनका वाहन है, क्या कहीं स्वामी और वाहन भी बराबर होसकता है? सुनारने कहा, अरे वैरागडे, स्वामिपना और वाहनपना अर्थात् गणेशपना और मूसापना जो तुमने इन मूर्तियोंमें मान रखा है उसको तुम निकाल करके अपने पास रख लेओ। हमको तो सोनेका दाम देना है, सोना तौलमें दोनोंका बराबर है, अर्थात् दोनों मूर्तियोंमें पांच पांच तोला सोना बराबर ही है। वैरागी सुनारकी वार्ताको सुनकर चुप होगया। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्तको सुनो। सब शरीर पांचों भूतोंके ही कार्य्य हैं, और सब शरीरोंमें अस्थि, मज्जा, चर्म, रुधिर, मलमूत्र भी बराबरही है, फिर सब शरीरोंकी उत्पत्ति भी वीर्यसे होती है, और सब शरीर उत्पत्ति नाशवाले भी हैं, और सब शरीरोंमें खान पानादिक व्यवहार भी बराबर ही होता है। भेद तो शरीरोंमें किसी प्रकारसे भी साबित नहीं होता है और आत्मा भी सब शरीरोंमें चेतनरूप करके बराबरही विद्यमान है, और अभिमान भी सब शरीरधारियोंको बराबर ही है। कोई भी देहधारी अपनेको नीच और दूसरेको उत्तम नहीं समझता।

है, किंतु सब कोई अपनी ही जातिको उत्तम जानते हैं, किसी प्रकारसे भी भेद नहीं सावित हो सकता है, तब भी अज्ञानी लोक कल्पित धर्मोंको मानकर भेदबुद्धिको करके दुःखको पाते हैं। यदि उन कल्पित धर्मोंको निकाल दिया जाय तब बाकी आत्मा ही केवल शुद्ध सच्चिदानन्दरूप सिद्ध होता है। जो ज्ञानी लोक ही सर्वत्र आत्मदृष्टिको करते हैं वही सुखी रहते हैं। अज्ञानी लोक आत्मदृष्टिको नहीं करते हैं। जसे कल्पित गणेशपनेको और मूसापनेको छोड करके सोना दृष्टिको सुनार करता है, तैसे ज्ञानवान् भी ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादि धर्मोंका त्याग करके सर्वत्र आत्मदृष्टिको ही करता है, इसीसे वह सुखी रहता है। चित्तवृत्ति कहती है, हे भ्राता! जब कि ज्ञानवान्की दृष्टिमें आत्मा सब शरीरोंमें एक है, शुद्ध है, निर्दोष है, तब फिर सबके साथ ज्ञानवान् खान पानादि व्यवहारको क्यों नहीं करता है, विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते! ज्ञानवान् दो प्रकारके होते हैं। एक तो जीवन्मुक्त कहे जाते हैं, जिनको अपने शरीरकी भी खवर नहीं है, और दूसरे चतुर्थी भूमिकावाले आचार्य्य कहे जाते हैं, जो कि, जीवन्मुक्त हैं। वह तो अजगर वृत्तिवाले होते हैं। किसीने उनके मुखमें अन्नको डाल दिया तब खाजाते हैं। पानीको डाला तब पीजाते हैं। धूपमें किसीने उठाकर धर दिया या छायामें या वर्षामें उसी जगह पडे रहते हैं। उनको सब बराबर ही होता है। क्योंकि, वह आत्मानंदमें डूबे रहते हैं, जगत् उनको दिखाता ही नहीं है। आत्मा ही आत्मा उनको सर्वत्र दिखाता है। उनके मुखमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमेंसे कोई अन्नको डालदे या भंगी चमार डालदे उनके अन्न खानेमें उनको कोई भी दोष नहीं होता है। क्योंकि, उनकी दृष्टिमें न काइे ब्राह्मण है न कोई भंगी या चमार है। आत्मा ही आत्मा है वह किसीसे वातचीत भी नहीं करते हैं। उन जीवन्मुक्तोंका शरीर भी थोडे ही कालतक रहता है, वह तो सर्व प्रकारसे निर्दोष है, वेदादिक किसी शास्त्रकी आज्ञा भी उनपर नहीं है। क्योंकि, वह ब्रह्मरूप है, महान् सुखमें वह निमग्न रहते हैं। दूसरे आचार्य्यकोटिमें जो हैं; वे सर्वत्र आत्मामें समदृष्टि हैं अर्थात् सर्व जीवोंमें एक ही आत्माको देखते हैं, इसीसे उनका किसीके साथ राग द्वेष नहीं होता है। परन्तु वह समवर्ती नहीं होते हैं। क्योंकि सम-

वर्ती होनेसे श्रेष्टाचार जाता रहता है। दूसरा, यदि सब किसीका जूँठा खानेसे ज्ञानी हो सकता हो तब जितने कि भंगी चमार वगैरा हैं, वे भी सब ज्ञानी कहे जायँगे, उनको तो कोई भी ज्ञानी नहीं कह सक्ता है। इसीसे समवर्तीका नाम ज्ञानी नहीं है। तीसरा, जिसको इतर सब व्यवहारके वर्णाश्रमका ज्ञान है, वह यदि समवर्ती होकर सबका खाने लगेगा तब लोकमें वह पतित कहावेगा। जब कि, और सब विधि निषेधका तिसको ज्ञान है और उनको वह मानता है, तैसे अपनेसे नीच ऊँच जातिवालेके जूँठेके निषेधका भी तो तिसको ज्ञान है। अगर पागलकी तरह उसको कोई भी ज्ञान न हो तब तिसको जूठे खानेका भी दोष न हो। वह पागलोंमें तो गिना नहीं जाता, इसलिये तिसको समवर्ती होना मना है। चौथा, ज्ञानका फल समवर्ती होना कहीं भी नहीं लिखा है। ज्ञानका फल राग द्वेषकी निवृत्ति परमानन्दकी प्राप्ति है। सो जो रागद्वेषसे रहित है; अपने आत्मानन्दमें आनंदित है, वही ज्ञानी है, जो राग द्वेष करके युक्त विषयभोगोंसे आनन्द मानता है, वही अज्ञानी है। ज्ञानी अज्ञानीका इतनाही फरक है॥ १९॥

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

एक पंडित किसी ग्रामको कथा बांचनेके लिये जाते थे, रास्तामें एक खेतके किनारेपर एक बटके पेडके नीचे बैठकर सुस्ताने लगे। उस खेतमें एक जाट हल जोतता था, उसके आगे जो बैल थे, वह दुर्बल थे, शीघ्र चल नहीं सक्ते थे, बारबार खडे होजाते थे, जब २ तिसके बैल खडे होजायँ तब २ वह जाट अपने बैलोंको बुरी २ गाली अर्थात् बलोंके खसमको जोरू और लडकीके फलानकी गालियें देता था। पंडितने उससे पूछा, यह बैल किसके हैं ? उसने कहा, यह बैल हमारे हैं। तब कहा, इनका खसम कौन हुवा ? जाटने कहा, इनके खसम हम हीं हुए। तब पंडितने कहा, तुम जो इन बैलोंको गालियां देते हो वह सब गालियें किसको लगती हैं ? जाटने कहा, जो सारा गालियोंके अर्थोंको समझता है ये सब गालियें उसी सारेको लगती हैं, पंडित जाटकी बातको सुनकर लाजवाब होगया। क्योंकि, जाटका यह तात्पर्य था

कि मैं तो गालियोंके अर्थको समझता नहीं मेरेको क्यों लगेंगी? तुम पंडित हो तुमको इनके अर्थका ज्ञान है यह गालियें तुमहींको लगेंगी। हे चित्तवृत्ते! जिस पुरुषको गालियोंके अर्थका ज्ञान नहीं होता है, उसको गालियें नहीं लगती हैं। इसीसे वह बुरा भी नहीं मानता है। जैसे बालकको गालियोंके अर्थका ज्ञान नहीं है इससे बालक गाली देनेपर बुरा नहीं मानता है, और बालककी गाली-पर दूसरा भी कोई बुरा नहीं मानता है। जैसे बालकको धर्म, अधर्म, पुण्य, पापका ज्ञान नहीं है, इसीसे उसको पुण्य पाप भी नहीं लगता और शास्त्रका-रोंने भी तिसको पुण्य पापका निषेध किया है। जैसे बालकको आचारका ज्ञान नहीं है ऊपर मुखसे तो रोटी खाता जाता और नीचेसे मलमूत्रका त्याग भी करता जाता है किसीको भी तिसकी क्रियापर ग्लानि नहीं फुरती है। तैसे जीव-न्मुक्तको भी कोई पुण्य पाप नहीं लगते हैं, क्योंकि, तिसको उनका ज्ञान ही नहीं है और न कोई तिसकी क्रिया पर बुराही मानता है और जो कि आचार्य्यको-टिमें ज्ञानी हैं, वह यदि भ्रष्टाचारको करने लगे, परस्त्रीगमन, मांस मद्यका सेवन करे, तब तिसको अवश्य पाप लगेगा। क्योंकि उसको तो सर्व प्रकारका ज्ञान है और लोक उससे घृणा भी करते हैं। क्योंकि, उसको अभी ज्ञानका कुछ भी आनंद नहीं मिला है तब महान् आनंदका त्याग करके तुच्छ आनंदके साध-नोंमें वह प्रवृत्त न होता। जिनको काकविष्ठाके तुल्य जानकरके त्याग कर दिया था उनके ग्रहण करनेमें फिर प्रवृत्त न होता वह ज्ञानी आचार्य्य नहीं है। ज्ञान-वान् चतुर्थ भूमिकावाला आचार्य्यकोटिमें वह गिना जाता है, जो निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके विहित कर्मोंको निष्कामतासे श्रेष्ठाचारके लिये अनासक्त होकर करता है, अथवा निषिद्ध कर्मोंको और विहित कर्मोंको नहीं करता है। केवल आत्मचिंतनही करता है वही आचार्य्यकोटिमें है। और जो विहित कर्मोंको त्याग करके निषिद्ध कर्मोंको करता है और आत्मबोधसे शून्य होकर असंग बनता है वही वन्ध्य ज्ञानी, मूर्ख, पाप पुण्यका भागी होता है। तिसका जन्ममरण-रूपी संसार कदापि नहीं छूटता है ॥ १६ ॥

अष्टावक्रगीतामें कहा है:—

यस्याभिमानो मोक्षेपि देहेपि ममता तथा ॥
न वा योगी न वा ज्ञानी केवलं दुःखभागसौ ॥ १ ॥

जिस पुरुषका मोक्षमें अभिमान है और देहादिकोंमें ममता है वह पुरुष न तो योगी है और न ज्ञानी है केवल दुःखकोही वह भजनेवाला है ॥ १ ॥

कपिलगीतामें भी ज्ञानीका लक्षण दिखाया है—

न निंदति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति ।
न ददाति न गृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः ॥ १ ॥

जो न किसीकी निंदा करता है और न किसीकी स्तुति करता है, न किसीको देता है न किसीसे लेता है, जो सर्वत्र रागसे रहित है वही मुक्त कहाजाता है ॥ १ ॥

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम् ।
अविकलमनाः स्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ २ ॥

जो अनुरागके सहित स्त्रीको देखकरके और मृत्युको भी सन्मुख उपस्थित देखता है, फिर भी जिसका मन व्याकुल नहीं होता है वह महाशय मुक्तरूप है ॥ २ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जो सर्वत्र आत्माको ही देखता है किसीमें भी कमती बढती नहीं देखता है वही आत्मदर्शी तथा ज्ञानी कहा जाता है । आत्माकी समतामें एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

जो कि मैला उठानेवाले भंगी होते हैं वह भी अपनेसे ऊंचा किसी क्षत्री ब्राह्मणादि जातिवालेको नहीं मानते हैं क्योंकि, पंजाब देशमें जब कि भंगियोंका विवाह होता है और इनकी सब बिरादरी आकरके बैठती है और जिस कालमें वर कन्याका पाणिग्रहण होता है तिस कालमें लड़कीका बाप अपनी लडकीके हाथको दामादके हाथ पर धरकरके कहता है इसको तुम भंगन मत जानना, कोई ब्राह्मणी जानना या क्षत्रानी जानना वैश्यानी या शूद्रानी जानलेना या इनसे और कोई छोटी जातिवाली मुगलानी या पठानी जान लेना भंगन मत जानना । तात्पर्य उसका यह होता है, भंगी जाति किसीसे छोटी नहीं है अब देखिये जिनके छूजानेसे स्नान करना पडता है वह भी अपनेको छोटा नहीं मानते हैं । अब बताइये इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि, आत्मामें छोटापन किसीके भी नहीं है, केवल उपाधियोंका भेद है, इसीसे भंगी भी

अपनेको छोटा नहीं मानते हैं । भंगियोंके गुरु लालबेग हुए हैं । एक दिन भंगियोंने अपने लालबेग गुरुसे कहा, महाराज ! हम लोगोंका कल्याण होनेमें तो कोई भी सन्देह नहीं है क्योंकि, आप सरीखे हमारे गुरु हैं, परन्तु इन क्षत्री ब्राह्मणोंका कल्याण कैसे होगा ? भंगियोंके गुरु लालबेगने कहा, उनका कल्याण तुम्हारे हाथ है, तुम लोक जो सबेरे गलियों और बाजारोंमें झाड़ू देते हो और वह लोक जो स्नान करके आते हैं तुम्हारे झाड़ूकी रज जो उनपर पडती है उसीसे उनका भी कल्याण होजायगा । भंगी लोक भी अपनी जातिको इतना बडा मानते हैं । बस इसीसे जाना जाता है आत्मामें नीचता ऊंचता नहीं है, आत्मा सबका बराबर ही है । क्योंकि, सबको अपने ही आत्माकी पवित्रताका अभिमान है । इसी तरह और भी जितने कि, मुसलमान ईसाई बौद्ध जैनी वगैरह मतोंवाले हैं, सब कोई अपने २ आत्माको पवित्र मानते हैं । इसीसे भी जाना जाता है कि, आत्मामें अपवित्रता और नीचता नहीं है । यदि होती तब सब ऐसा न मानते । हे चित्तवृत्ते ! आत्मा सबमें एकही है, जैसे एकही आकाश मंदिरमें भी है, और पाखानामें और मसजिदमें गिरजेमें जैनमंदिरमें बौद्धमंदिरमें भी है, भंगी चमारोंके घरोंमें भी है, उत्तम २ मूर्तियोंमें भी है, मलमूत्रादिकोंके पात्रोंमें भी है, परन्तु अति सूक्ष्म होनेसे उपाधियोंके साथ तिसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है और न उपाधियोंके गुण दोषों करके आकाश गुण दोषवाला होजाता है । इसी प्रकार एक ही आत्मा ऊंच नीच सब शरीरोंमें विद्यमान है, शरीरोंके गुण दोषों करके वह गुणदोषवाला नहीं होता । क्योंकि, आकाशसे भी अतिसूक्ष्म है इसीसे असंग और निर्लेप भी है ॥ १७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें एक और दृष्टांत भी तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरके बाहर नदीके किनारे पर एक अद्वैतवादी महात्मा रहते थे । एक दिन एक द्वैतवादी पंडित उनके साथ वादविवाद करनेको गये और जाकर पंडितने महात्मासे कहा, मैं द्वैतको साबित करता हूँ आप मेरेसे वाद विवाद करिये । महात्माने कहा, हमारे शिरके बाल बहुत बढ गये हैं, इनके बढनेसे हमारा शिर दुखता है, जबतक हम हजामत बनवा नहीं लेंगे तबतक

वादको नहीं करैंगे सो प्रथम तुम जाकर किसी नाऊको बुलाओ पश्चात् हम तुमसे शास्त्रार्थ करैंगे। पंडितजी जाकर नाऊको बुला लाये। नाऊने आकर महात्माकी हजामत बनाई। जब कि नाऊ हजामत बना चुका तब महात्माने नाऊसे कहा, तुम तो परमेश्वर हो। नाऊने कहा, अरे महाराज! मैं तो महापापी हूँ। मैं कैसे परमेश्वर हो सक्ता हूँ? महात्माने पंडितसे कहा, देखो द्वैतको तो यह नाऊ भी साबित कर रहा है; बल्कि इस नाऊसे जो मूर्ख हैं महामूढ हैं, वह भी द्वैतको साबित कररहे हैं। जब कि तुम भी द्वैतको ही साबित करोगे तब फिर इस नाऊसे भी तुम्हारी कुछ अधिकता साबित नहीं होगी किंतु तुल्यता ही होगी। अधिकता तो अद्वैत साबित करनेसे होती है॥ १८॥

हे चित्तवृत्ते! किसी नगरमें एक द्विज रहता था। तिसके तीन लडके थे, एक सबसे बडा पंद्रह या सोलह बरसका था, दूसरा तिससे छोटा सात बरसका था, तीसरा चार बरसका था। तिस नगरके बाहर एक देवताका स्थान था, वहांपर सालमें एक दिन मेला होता था, तिसमें वह द्विज अपने लडकोंको साथ लेकर चला। मेलामें भीड बहुत थी। देवस्थानतक जाना कठिन था इसलिये छोटे लडकेको तिसने कांधेपर उठालिया, मझोलेका हाथ पकड लिया, बडा पीछे पीछे चलने लगा। जो कि, सबसे छोटा था वह कांधेपर बैठा हुआ आरामसे देवस्थानमें पहुंच गया। मझोला भी धक्के खाकर पहुँचा। धक्के तो तिसने खाये परन्तु बापका हाथ न छोडा। जो कि, सबसे बडा था वह धक्के खाकर पीछेको ही रह गया। हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टांतमें सुनो। देवस्थान कौन है? आत्मपद, पिता कौन है? परमेश्वर, छोटा लडका वेदांती है, मझोला लडका भक्त है, सबसे बडा कर्मी है। जब कि, परमेश्वर अपने तीनों लडकोंको आत्मपदकी तरफ लेजाता है तब सबसे बडा लडका जो कि भेदवादी कर्मी है, वह तो रागद्वेषरूपी धक्कोंको खाकर पीछे ही संसारमें रह जाता है। जब कि शुभ कर्म करता है तब स्वर्गको जाता है, स्वर्ग भोगकर नीचेको आता है। इसीतरह चक्रमें भ्रमता सरा भक्त है, वह धक्के तो खाता है अर्थात् भेद

भावना करके उपासना करनेसे जन्मोंकी परंपरारूपी धक्कोंको तो खाता है परन्तु अपने पितारूपी परमेश्वरका हाथ नहीं छोडता है । इसलिये कभी न कभी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा वह भी पहुंच जाता है । तीसरा जो ज्ञानी है वह विना ही धक्कोंके खानेसे पिताके कांधेपर सवार होकर पिताके साथ जो अभेद ज्ञान होता है, इसीसे वह आरामसे पहुँच जाता है, क्योंकि जो भेद मानताहै वही दूर रहजाता है । अथवा वेदरूपी पिताके कांधेपर बैठकर पहुँच जाता है । वेदकी आज्ञा तिसके ऊपर नहीं रहती है यही कांधेपर बैठना है । और जो कि वेदमें ईश्वरमें प्रेम करना कहा है तिसको जो भक्त नहीं छोडता है यही हाथ पकडना है । और कर्मी अर्थवादरूपी फलोंको जो वेदने कहा है उन्हीके पीछे दौडता है, इसलिये वह परमपदसे दूर रह जाताहै, क्योंकि दुःखका जनक भेदवाद है और सुखका जनक अभेदवाद है । विना अभेदवाद ज्ञानके इस जीवकी मुक्ति कदापि नहीं होती है ॥ १९ ॥

श्रुति भी इसी अर्थको कहती है:—

अन्योसावहमन्योस्मीत्युपास्ते योऽन्यदैवतम् ।
न स वेद नरो ब्रह्मन् स देवानां यथा पशुः ॥ १ ॥

वह ब्रह्म मेरेसे अन्य याने भिन्न है और मैं तिससे भिन्न हूँ, इस प्रकार जान करके जो अन्य देवताओंकी उपासना करता है, हे ब्रह्मन् ! वह पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता है । जैसे मनुष्योंके लादनेके पशु होते हैं, वैसे ही वह भी देवताके लादनेका एक पशु ही होता है ॥ १ ॥

भेदवादकथोन्मत्तः कार्य्याकार्य्यविवर्जितः ।
मद्यसंपर्कमात्रेण कथं वाच्यः स वै द्विजः ॥ इति ॥ १ ॥

जो द्विज भेदवादरूपी कथामें मत्त हो रहा है, कर्तव्य अकर्त्तव्यको नहीं जानता है, जैसे मदिराकी एक बून्दके मिलनेसे गंगाजलका घट अपवित्र हो जाता है, वैसेही तिसको भी जान लेना ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जैसे कोई पुरुष अंधकारसे अंधकारको दूर करना चाहे जैसे कोई मिट्टीकी गैया बनाकर दूध पीना चाहे, जैसे कोई संकल्पकी मिठा-

ईसे पेट भरना चाहे तैसे ही वह भी करता है, जो भेदवादका आश्रयण करके अपनी कल्याणकी इच्छा करता है। हे चित्तवृत्ते! इसीपर एक और दृष्टांतको भी सुनोः—

हे चित्तवृत्ते! एक पुरुष गणेशजीकी उपासना करता था, एक दिन वह पूजा कररहा था, कि इतनेमें एक मूसा जो बिलसे निकला वह आते ही गणेशजीके ऊपर चढकर चावलोंको खाने लगा और भोगकी मिठाईको लेकर भाग गया। तब तिस उपासकने विचार किया कि, गणेशजीसे तो मूसा ही बली निकला और पूजा भी बलीकी करना चाहिये क्योंकि बलीसे ही कुछ मिलता है, दुर्बलसे तो कुछ मिलता नहीं। ऐसा विचार करके तिसने एक मूसाको पकड कर तिसके पांवमें तागा बांधकर पर्यंकमें तिसको बिठाकर तिसीकी नित्य पूजा करने लगा। एक दिन बिलारने वहांपर आकर मूसेकी तरफ जो ताका मूसा तुरंत ही भागकर बिलमें घुसगया। उपासकने देखा मूसासे तो बिलार ही बली निकला। उसी दिनसे वह बिलारको बांधकर चौकीपर बिठाकर तिसकी पूजा करने लगा। एक दिन कूकर एक वहांपर आ निकला और ज्योंही वह बिलारपर झपटा त्योंही बिलार भागा। बिलारको भागते देखकर उस उपासकने जानलिया, कि बिलारसे कूकर बली है। उसी दिनसे वह कूकरकी पूजा करने लगा। एक दिन वह कूकर उनके चौकामें चला गया। तिसकी स्त्री एक लाठी जो उठाकर तिस कूकरके मारी वह भाग गया। तब तिसने जाना कूकरसे तो हमारी स्त्री बली है। उसी दिनसे अपनी स्त्रीकी वह पूजा करने लगा। एक दिन किसी वार्तासे तिसको अपनी स्त्रीपर क्रोध आगया, लाठी लेकर तिसके मारनेको वह दौडा तब स्त्री भागी। उसने मनमें विचार किया, सबसे बली तो मैं ही निकला। उसी दिनसे वह अपनी पूजा करने लगा। आत्माकी मानस पूजा करते २ तिसके मनका निरोध होगया उसीसे उसको परमानंदकी प्राप्ति होगई। हे चित्तवृत्ते! जैसे पक्षी दिनभर इधर उधर भ्रमता रहता है, सुखको नहीं प्राप्त होता है। जब अपने घोंसलेमें आता है तभी तिसको सुख मिलता है। तैसे यह जीव भी अपनेसे भिन्न देवतान्तरकी सुखकी प्राप्तिके लिये उपासना करता है परन्तु इसको सुख नहीं मिलता है

क्योंकि वासनाओंको लेकर उपासना करता है। जब कि यह निर्वासनिक होकर अपने आत्माकी अहंग्रह उपासनाको करता है, तब ही उसको नित्य सुखकी प्राप्ति होती है अन्यथा किसी प्रकारसे भी नित्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २० ॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको सुनो:—

एक पुरुषके तीन लडके थे। तीनोंमेंसे एक तो लूला और लंगडा था। दूसरा अंधा था तीसरा सर्वांगसंपन्न था। तीनोंमेंसे जो कि लूला और लंगडा था यह तो मातापिताकी सेवा किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकता था। क्योंकि सेवा हाथपांवसे होती है सो हाथ पांव तो तिसके थे नहीं, दूसरा जो अंधा था उसको दीखता ही नहीं था इसलिये वह भी सेवालायक नहीं था। तीसरा जो कि सर्वांगसंपन्न था वही सेवालायक था और वही सेवा करता भी था। क्योंकि तिसको सब कुछ दीखता भी था। यह तो दृष्टांत हैं। अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं, एक तो कृपण और आलसी हैं। दूसरे विषयी हैं। तीसरे उद्यमी और उदार हैं। तीनोंमेंसे जो कि कृपण और आलसी हैं वही लूले और लंगडे हैं। वह तो परमेश्वरकी सेवा किसी प्रकारसे भी नहीं करसक्ते हैं। क्योंकि हाथोंसे वह कुछ दानको नहीं करते हैं और पांवोंसे चलकर किसी सत्संगमें या किसी महात्माके पास वह नहीं जाते हैं। और जो विषयी हैं, वह अन्धे हैं, क्योंकि उनको तो परमार्थ दीखता ही नहीं है और न उनको परमेश्वर ही दीखता है। इसलिये वह भी परमेश्वरकी सेवा बंदगी नहीं करसक्ते हैं। तीसरे जो उद्यमी और उदार हैं, वही उद्यम करके सत्संगमें जाते हैं, हाथोंसे दान करते हैं, वही परमेश्वरकी सेवाको करते हैं। वही ज्ञानके भी अधिकारी कहे जाते हैं, दूसरे नहीं। वही अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षको भी प्राप्त होजाते हैं ॥ २१ ॥

हे चित्तवृत्ते! इसी विषयपर एक और दृष्टांत भी तुमको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! संसारमें तीन तरहके घोडे होते हैं, तीनोमेंसे एक लादवे टट्टू कहलाते हैं, जिन पर कि, हमेशा बोझा ही लादा जाता है। वह तो हमेशा लदते ही रहते हैं। और इसीमें मर भी जाते हैं। दूसरे रिसालेके घोडे

होते हैं, जो कि, तुरमके आवाजको सुनकर हमेशा कवायद परेटही करते रहते हैं, वह परेट कवायद करते २ ही मर जाते हैं । तीसरे तोपखानेके घोडे होते हैं, वह हजारों तोपोंके गोलोंके चलने पर भी अपने कानको नहीं उठाते हैं । क्योंकि उनको इतना विश्वास हो चुका है, जो यह तोपें नित्य ही चलती रहती हैं इनके चलनेसे हमारी कुछ भी हानि नहीं है । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टांतमें घटाते हैं । संसारमें भी तीन प्रकारके पुरुष हैं, एक तो वे हैं जो कि, हमेशाही स्त्री पुत्रादिकोंकी सेवामें रहते हैं, कभी भी कहीं सत्संगमें नहीं जाते हैं, वह तो लादवे टट्टू हैं । क्योंकि हमेशा स्त्री पुत्रादिक उनको लादते ही रहते हैं । और वह लदते २ उसीमें मर जाते हैं । दूसरे कर्मी हैं, जो कि श्रुति स्मृति उक्त कर्मोंके करनेमें ही सदैवकाल लगे रहते हैं । रिसालेके घोडोंकी तरह हमेशा कर्मरूपी कवायदको ही करते रहते हैं । वह कवायद करते ही खतम होजाते हैं । तीसरे ज्ञानी हैं, जो कि अर्थ-वादरूपी स्वर्गादि फलोंके दिखानेवाले जो वेदादिक हैं उनके वाक्यरूपी गोलोंके चलने पर भी वह तोपखानेके घोडोंकी तरह कानको नहीं उठाते हैं, अर्थात् आत्मविचारको छोडकर अनात्मविचारमें नहीं लगते हैं. वही पुरुष परमानन्दको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! राजा अपनी सेनाको प्रथम युद्ध करनेकी रीतिको सिखाता है, एक मैदानमें अपनी फौजको लेजाकर आधी फौजको पूर्वकी तरफ भेज देता है और आधी फौजको पश्चिमकी तरफ भेज देता है । दोनों फौजें खाली बारूदके गोलोंको चलाती हुई आपसमें झूठी लडाईको करती हैं । जो लोक इस वार्ताको जानते हैं, जो यह बारूदके झूठे गोले चलते हैं इनके चलनेसे हमारी कुछ भी हानि नहीं होती है, तो वह दोनों फौजोंके बीचमें घूम २ करके दोनोंका तमाशा देखते हैं । न डरते हैं । और न भागते हैं । और जो लोक उन गोलोंको सच्चा जानते हैं वे डरते भी हैं और भागते भी हैं । यह तो दृष्टांत है । अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं । इस संसाररूपी मैदानमें आसुरी सम्पद्वाले और दैवी सम्पद्वाले दो प्रकारके पुरुष हैं । दोनों अपने २ संकल्प विकल्पके रोचक भयानक अर्थवादरूपी झूंठे गोलोंको पडे चलाते हैं ।

जो कि अज्ञानी जीव हैं, वह तो उन गोलोंकी आवाजको सुनकर डरते भी हैं और भागते भी हैं और जो कि ज्ञानवान् हैं, वह उन झूँठे गोलोंकी आवाजको सुनकर न डरते हैं न भागते हैं, किंतु मैदानमें ही खडे रहते हैं और दोनोंके तमाशेको देखते हैं ॥ २३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक आदमीको एक पुरुषका सौ रुपैया देना था, जब वह माँगे तभी वह कह दे, मेरे पास इस कालमें रुपैया नहीं है, जब मेरे पास होगा तभी मैं देऊंगा । एक दिन उसके लेनदारने तिसको पकड करके तंग किया, तब भी उसने तिसको रुपैया न दिया और कहा मेरे पास नहीं है और रुपैया उसके घरमें रखा था, परन्तु देता नहीं था, तब तिस लेनदारने कहा, यदि तुम सौ गठा प्याजका खाजाओ तब हम तुमको रुपैया छोड देवैंगे । उसने सौ गठा प्याज खानेको मंजूर किया । जब खाने लगा तब तिससे नहीं खाये गये किंतु दस बीस खाकरके ही रह गया, तिससे और नहीं खाये गये । तब उसने कहा अच्छा तुम सौ लाल मिरचोंको खालेवो, तो हम तुमको रुपैया छोड देवैंगे । उसने मंजूर किया जब कि मिरचोंको वह खाने लगा तब तिससे सौ मिरचें खाये न गये किन्तु दस पांचही खाकर रह गया । फिर तिसने कहा, तुम सौ जूताकी मार सह लेवो हम तुमको रुपैया छोड देवैंगे । उसने मंजूर किया जब कि दस पांचही जूता लगे तभी चिल्लाने लगा, सौ जूता भी उससे नहीं सहागया । आखिर हारकर तिसको रुपैया देनाही पडा । गठे, मिरचें, जूते सब तिसने मुफ्तमें खाये ।

हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं। अज्ञानी मूर्ख संसारके दुःखों करके दुःखित होकरके जब कि आत्मवित् किसी महात्माके पास उपदेशके लिये जाता है, महात्मा यदि प्रथम ही तिसको कह दे तू ब्रह्म है, तब वह किसी प्रकारसे भी नहीं मानता है, जब कि प्रथम तिससे अनेक देवतोंकी उपासना कराता है, फिर अनेक प्रकारसे व्रतोंको करवाता है फिर अनेक तीर्थोंमें तिसको फिराता है यही सब गठे स्थानापन्न तिसको खाने पडते हैं जब कि सब कुछ करके हार जाता है तब अन्तमें महात्माकी कही हुई बातको मानता है । तात्पर्य यह है, प्रथम मूर्ख सच्चे उपदेशको नहीं मानता है ।

जब कि इधर उधर भटककर हार जाता है, तब शास्त्रके जूतोंको खाकर इसको मानना ही पडता है, जो मैं ही ब्रह्म हूँ तब वह शांतिको प्राप्त होता है और इधर उधरकी भटकनासे छूटता है ॥ २४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको तुम सुनो:—

एक पुरुषका चित्त संसारसे जब बहुत उपराम हुआ तब तिसने अपनी स्त्रीसे कहा, हमारा चित्त गृहस्थाश्रममें नहीं लगता है, हम अब संन्यासाश्रमको अंगीकार करैंगे और गृहस्थाश्रमका त्याग करदेवैंगे। स्त्रीने तिसको बहुतसा मना किया परन्तु तिसने नहीं माना, जाकर एक महात्मासे कहा, हमको उपदेश कीजिये। महात्माने उत्तम अधिकारी जानकर तिसको महावाक्यका उपदेश करके अपना चेला बना लिया। तिसने मनमें विचार किया, महात्माने जो हमको उपदेश किया है इसमें तो कुछभी देर नहीं लगी है, क्योंकि जरासी बात इन्होंने बता दी है न मालूम वेदोंमें क्या लिखा है। चलकर किसी पंडितके पास थोडे कालतक पढना चाहिये। मनमें ऐसा विचार करके वह एक पंडितके पास पढनेके लिये गया और पंडितसे कहा, हमको भी कुछ पढाया करिये। पंडितने कहा, हमारे पास जितने कि विद्यार्थी पढते हैं, एक २ काम हमारा सब विद्यार्थी करते हैं। आप भी हमारा एक काम किया करें और विद्या पढा करैं। तिसने भी मंजूर कर लिया और पंडितसे कहा, आप हमको जो काम बता दें हम उसको नित्य किया करैंगे। पंडितने कहा, हमारी गैयाका कोई गोबर पाथनेवाला नहीं है आप हमारी गैयाका गोबर नित्य पाथ दिया कीजिये। उसने मंजूर करलिया। नित्य ही पंडितजीकी गैयाका गोबर वह पाथा करे और विद्या पढा करै क्रमसे वह पढने लगा। प्रथम व्याकरण, फिर न्याय, फिर सांख्य, फिर योग, फिर मीमांसाको तिसने पढा। इतनेमें बारह बरस व्यतीत हो गये। जब वेदांतको उसने पढा तब सब वेदोंका सारभूत वही बात आयी जिसको कि गुरुने प्रथम ही तिसके प्रति बता दिया था। तब तिसने कहा, बात तो वही सारभूत निकली जिसको कि, गुरुने मेरेको पहले ही बता दिया था। गोबरको हमने बारहबरस मुफ्तमें पाथा। इसीपर एक महात्माने भी कहा है:—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः॥ १॥

अर्द्ध श्लोकसे हम उस वार्ताको कहते हैं जो वार्ता कि, करोडों ग्रन्थोंमें कही है। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है और जीव जो है सो ब्रह्मरूप ही है, दूसरा नहीं॥ १॥

हे चित्तवृत्ते! उत्तम अधिकारीके लिये तो एक वाक्य ही अलं है, मध्यम अधिकारीके वास्ते सब शास्त्र बने हैं। कनिष्ठ अधिकारीके प्रति शास्त्रकी भी कुछ नहीं चलती है॥ २९॥

हे चित्तवृत्ते! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक किसान अपने पकेहुए खेतको बहुतसे मजदूरोंसे कटवा रहा था, जब कि थोडासा दिन बाकी रहगया, तब किसानने मजदूरोंसे कहा, जल्दी २ काटो ऐसा न हो कि, संध्या होजाय। जितना डर हमको संध्याका है इतना हमको सिंहका भी नहीं है। एक अनाजके खेतमें सिंह बैठा हुआ किसानकी वार्ताको सुन रहा था। सिंहने जाना संध्या कोई हमसे भी बली जानवर है, जो यह किसान हमारा डर तो नहीं मानता है और संध्याका डर मानता है। इतनेमें दिन अस्त होगया, किसान और मजदूर सब अपने अपने घरोंको चले गये। उसी ग्रामके धोबीका गधा उस दिन कहीं भाग गया था, अंधेरी रात्रिमें धोबी गधेको खोजता हुआ जब कि, तिस खेतमें आया जहांपर सिंह बैठा था। उसने जाना यह हमारा गधा ही छिपकर खेतमें बैठा है। दो लाठी धोबीने सिंहकी कमरमें दीं और गलेमें रस्सी बांधकर आगे धर लिया। सिंहने जाना यह वही संध्या आगई है, जिसका जिकर किसान दिनमें कररहा था। सिंह धोबीके साथ २ चल पडा। सिंहने जाना यदि बोलूंगा तब दो लाठी और कमरमें लगावेगा। धोबीने घरमें लेजाकर तिसको खूँटेके साथ बांध दिया। जब एक पहर रात्रि बाकी रही तब धोबीने सिंहपर दो चार लादीको लाददिया और नदीकी तरफ चलपडा। आगे रास्तामें एक सिंह खडा था, उसने देखा यह सिंह होकर धोबीकी लादियोंको उठाये हुये चला आता है, इसमें क्या कारण है?

भला सिंहसे पूछे तो तुम इसके बोझा ढोनेवाले क्यों बने हो ? सिंहने उस लदे हुए सिंहसे पूछा, तुम धोबीके गधे क्यों बने हो ? उसने कहा, बोलो मत। यह संध्या बडी बलवान् है हमको अपना गधा इसने बना लिया है, यदि तुम बोलोगे तो सन्ध्या पीछे पीछे चली आती है, तुमको भी पकडकर वह अपना गधा बनालेगी। तुम जल्दी यहांसे भाग जावो। तिस सिंहने कहा अरे तू बडा मूर्ख है। सन्ध्या कौन चीज है। अन्धेरेका नाम सन्ध्या है, संध्या कोई तुमसे बली जानवर नहीं है, तुम्हारे संकल्पका रचा हुआ वह जानवर है। तुम इस संकल्पको दूर करके अपने स्वरूपका स्मरण करो। तुम तो सिंह हो ये तो सब तुम्हारे खाद्य हैं। तुम्हारी आवाजको सुनकर ये सब भाग जायँगे। सिंहको तिसके कहनेसे अपने स्वरूपका स्मरण हो आया। ज्योंही लादीको फेंककर वह गरजा त्योंही धोबी घरकी तरफ भागा और सिंह वनमें चला गया। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको घटाते हैं। यह जीव तो वास्तवमें सिंह था, कर्मीरूपी किसानके भयानक वचनरूपी सन्ध्याको सुनकर अज्ञानरूपी धोबीका यह गधा बनकर कर्मरूपी लादीको ढोने लगा। जब कि सिंहरूपी आत्मवित् गुरुने इसको उपदेश किया, कि तुम गधे नहीं हो किंतु सिंह हो अर्थात् तुम पुण्य पापके कर्ता भोक्ता नहीं हो, किंतु असंग, चैतन्यस्वरूप हो, तभी अपने स्वरूपका इसको स्फुरण हो आता है और बंधनसे रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

चित्तवृत्ति कहती है—हे भ्राता ! जीव ईश्वरकी उपाधियोंके त्यागमें कोई दृष्टांत तुमने नहीं कहा है, सो कहना चाहिये। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! अब हम तुमको उपाधियोंके त्याग करनेमें दृष्टांतको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! किसी ग्राममें दो भाई बनियां एक मकानमें रहते थे। उन दोनों भाइयोंकी स्त्रियें बडी लडाकी थीं। जिस कालमें वे दोनों भाई अपने घरमें आते थे उसी कालमें वह दोनों स्त्रियें परस्पर लडाईको शुरू कर देती थीं। दोनों भाइयोंकी आपसमें फूटको ही बनाये रखती थीं। किसी प्रकारसे भी उनको परस्पर मिलने नहीं देती थीं। नित्यही कलह करती थीं। दोनों भाइयोंने परस्पर विचार करके दोनों स्त्रियोंको घरसे निकाल दिया, तब दोनों भाई परस्पर एक

होगये और नित्यकी कलह भी दूर होगई । यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो । जीव ईश्वर दोनों सगे भाई हैं जीवकी स्त्री अविद्या है ईश्वरकी स्त्री माया है, वह दोनों परस्पर नित्यही लडती रहती हैं । इसीसे दोनोंका मेल परस्पर नहीं होताहै । जब कि, अविद्या मायारूपी स्त्रियोंका त्याग करदिया जाता है, तब दोनों परस्पर मिलजाते हैं अर्थात् दोनोंकी एकता होजाती है ॥ २७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

प्रयागराज तीर्थमें बाप और बेटा दोनों स्नान करनेके लिये गये । जब कि, दोनों स्नान करचुके, तब बेटा वहांपर गंगाजीकी वालुकासे खेलने लगा अर्थात् बेटेने गंगाजीकी वालूका एक किला बनाया । बाप कितना ही बेटेसे घर जानेके लिये कहता था, परन्तु बेटाने बापकी वार्ताका ख्याल ही न किया । ऐसे खेलमें बेटा लगा जो बापकी तरफ देखे भी नहीं । तब बाप भी लगे खेलने याने बापने बेटेसे भी अधिक एक बडा भारी रेतीका किला बनाया । बेटेने देखा बापने तो हमसे भी भारी किला बनाया है, तुरन्तही बेटेने बापके किलेको गिरादिया और बापने बेटेके किलेको गिरा दिया । दोनों परस्पर मिल करके अपने घरको चले गये । यह तो दृष्टांत है अब इसको दार्ष्टान्तमें बटाते हैं । जीव बेटा है, ईश्वर बाप है । ईश्वर वेदवाक्यों करके जीवको अपने घरमें जानेके लिये बार २ उपदेश करता है परन्तु जीव अपने खेलमें ऐसा लगा है, जो बापके उपदेशको नहीं सुनता है । जीवने अपने संकल्पका एक किला बनाया है, वह किला इस तरहका है कि, यह मेरी स्त्री है, यह मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धन है, यह मंदिर है, इस कामको आज मैंने कर लिया है, इसको कल करूँगा ऐसे दृढ किलोंको बनाता ही चला जाता है और ईश्वररूपी पिताकी वार्ताको नहीं सुनता है । जब ईश्वररूपी पिताने देखा कि जीवरूपी पुत्र तो इस तरहसे मेरी वार्ताको नहीं मानता है तबतक हम भी इसीकी तरह एक संकल्पके किलेको बनावैंगे । तब ईश्वरने भी कर्म उपासनारूपी एक भारी किलेको बनाया । जीवने देखा बापने तो मेरे किलेसे भी अपना बडा किला बनाया है, तब जीवने ईश्वरके बनाये हुए किलेको तोड दिया याने मिथ्या कर दिया तब ईश्वरने

जीवके बनाये हुए किलेको भी श्रुतिवाक्योंकरके मिथ्या कर दिया । तब दोनों जीव और ईश्वर अपने शुद्धस्वरूपरूपी वरमें स्थित होगये अर्थात् दोनों एकही होगये ॥ २८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और भी लौकिक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक बनियां बडा गरीब रहता था, उसके एक लडका पैदा हुआ । जब कि, वह लडका एक सालका हुआ तब वह बनियां गरीबीके दुःखके मारे विदेशमें कमानेके लिये चला गया । घूमता फिरता वह काशीजीमें जा निकला । वहांपर जाते ही तिसका रोजगार जम गया और जब कि तिसको काशीजीमें रहते दश या बारह बरस बीतगये तब तिसके पास बहुतसा धन जमा होगया । एक दिन तिसके मनमें आया इस धनमेंसे कुछ धन शुभ मार्गमें लगाना चाहिये । उसने ऐसा विचार करके एक मंदिरका बनाना शुरू कर दिया और इधर पीछे तिसका लडका भी सयाना होगया । उसने अपनी मातासे पूछा पिता हमारे कहांपर गये हैं ? माताने पूर्ववाला सब हाल तिसको कह सुनाया । लडकेने मातासे कहा चलो उनको खोजैं । माताकी भी सलाह होगई, वह दोनों मां बेटा विदेशमें निकल पडे । खोजते २ वह काशीमें जा पहुँचे । एक मकानमें डेरा लगाकर लडकेने मातासे कहा हम मजदूरी करनेको जाते हैं, कुछ कमा लावेंगे तब रात्रिको भोजन बनैगा । माताकी आज्ञाको लेकर लडका मजदूरी करनेको निकला जहांपर बनियांका मंदिर बनता था, वहां पर जाकर वह लडका भी मजदूरोंमें काम करने लगा । बनियाँ जब कि, मंदिर देखनेको आया तब उसने उस लडकेको नया जानकर पूछा तुम्हारा मकान कहाँपर है ? और तुम कौन जाति हो ? और कैसे तुम यहाँपर काम करनेको आये हो ? लडकेने शुरूसे आखीरतक सब अपना हाल बनियांको कह सुनाया । तब बनियांने जानलिया यह मेराही लडका है, उसकी मांको बुलाकर घरके भीतर भेज दिया और लडकेको स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रोंको पहराकर अपनी गद्दीपर बैठाकर अपना सब धन तिसको सौंप दिया । बाप बेटा दोनों मिल-कर बडे आनंदसे रहने लगे । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब तुम इसको दार्ष्टान्तमें सुनो । यह जीवरूपी पुत्र जब कि महान् प्रयत्नको करके

अपने पिताकी खोज करता है, तब अवश्य ही अपने पितासे जा मिलता है और पिता भी तब इसको अपना सब देदेता है । तात्पर्य यह है, इस कायारूपी काशीपुरीके भीतर पितारूपी परमेश्वर रहता है, जबतक जीव बाहर तिसको खोजता है, तबतक पितासे नहीं मिलता है । जब इस कायारूपी पुरीके भीतर खोजता है, तब अपने पितासे जा मिलता है । और पिता भी तिसको अपना सब धनरूपी जो कि महान् सुख है अर्थात् मोक्षरूपी नित्य सुखको जीवके प्रति देदेता है ॥ २९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक अन्धा और दूसरा आंखोंवाला दोनों मिलकर रास्तामें चले जाते थे । दैवयोगसे पूर्वकी तरफसे आँधी उठी और ऐसा गरदा उडने लगा जो समीपकी वस्तु भी नहीं दीखती थी । उन दोनोंकी आंखोंमें मिट्टी भरगई, थोडी देरमें जब कि, आँधी हटगई, तब दोनोंने आंखोंको झाड दिया, अर्थात् आंखोंसे मिट्टीको निकाल दिया तब आंखवालेको तो दीखने लग गया; परन्तु अन्धेको मिट्टीके निकालने पर भी न दिखाई दिया । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो ।

ज्ञानी तो आंखोंवाला है, क्योंकि तिसको सर्वत्र एकही आत्मा दीखता है और अज्ञानी अंधा है, क्योंकि तिसको सर्वत्र आत्मा नहीं दीखता है किंतु भिन्न करके परिच्छिन्न आत्माको वह जानता है, इसीसे वह अंधा है । जब कि क्रोधरूपी आँधी आती है तब दोनोंकी आंखोंमें अविचाररूपी मिट्टी तिस कालमें भरजाती है । क्रोधरूपी आँधीके हटजानेके पीछे ज्ञानी तो विचारके बलसे अविचाररूपी मिट्टीको तुरन्तही निकाल देता है । उसको तो फिर उसी तरह सर्वत्र एकही आत्मा दिखाई पडने लग जाता है । इसीसे तिसका राग-द्वेष फिर किसीसे भी नहीं रहता है और अज्ञानीको क्रोधरूपी आँधीके हट-जानेपर भी सर्वत्र आत्मा नहीं दीखता है क्योंकि विचाररूपी तिसकी आँखें नहीं हैं, इस लिये तिसकी आँखोंमें अविचाररूपी मिट्टी कुछ न कुछ रहही जाती है, इतनाही ज्ञानी अज्ञानीका फरक है । ज्ञानवान्‌के क्रोधादिक पानी-पर लीक है, अज्ञानीके पत्थरपर लीक है, इसीसे ज्ञानवान् सदैवकाल आनन्दमें रहता है । अज्ञानी दुःखमें रहता है ॥ ३० ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने पीछे कहा कि, ज्ञानवान् अपनेको अकर्ता अभोक्ता मानता है और ज्ञानहीन अपनेको कर्ता, भोक्ता मानता है, ऐसा तो संसारमें देखनेमें नहीं आता है । क्योंकि विना कर्ता भोक्ता माननेसे व्यवहार चलही नहीं सक्ता है, तब फिर व्यवहारको करनेवाला ज्ञानी अकर्त्ता कैसे हो सक्ता है ?

विवेकाश्रम चित्तवृत्तिके प्रति कहते हैं. व्यवहारको करता हुआ भी ज्ञानवान् अकर्ता ही होता है, क्योंकि वह अपनी खुशीसे नहीं करता है । इसीमें एक दृष्टांतको कहते हैं:—

एक राजा अपने मंत्रीको साथ लेकर वनमें शिकारको गया, शिकार खेलते २ राजाको प्यास लगी तब राजाने मंत्रीसे कहा कहींसे पानीको मँगावो । मन्त्रीने इधर उधर देखा तो ग्रामकी तरफसे एक आदमी चला आता था, उस आदमीसे मंत्रीने लोटा देकर कहा जल्दी पानी ले आवो । वह लोटा लेकर ग्रामकी तरफ पानी लेनेको जब चला वजीरको जंगलकी तरफ दोपहरकी धूपसे रेता चमकता दीखता था, उसने जाना यह पानीकी नदी चल रही है, वजीरने उससे कहा वो सामने पानी दीखता है तुम दूसरी तरफ क्यों जाते हो ? उसने कहा वह पानी नहीं है, पानीका कुवाँ ग्राममें है; हम ग्रामसे पानीको लाते हैं। वजीरने कहा तुम झूंठ बोलते हो हमको पानी दीखता है, तुम हमको धोखा देकर भागना चाहते हो । ऐसा कहकर वजीरने चार पांच कोडे तिसको लगादिये तब वह उधरको ही चला; जिधरको मृग-तृष्णाका जल तिसको दीखता था । उसने विचार किया, यदि नहीं जाऊंगा तो चार कोडे और लगावेगा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब दार्ष्टांतमें इसको सुनिये । ज्ञानवान्ने संसारके भोगोंको मृगतृष्णाके तुल्य जानकर त्याग दिया है और उनकी तरफ नहीं भी जाता है, तब भी प्रारब्धरूपी कोडा तिसको उधर भोगोंकी तरफही भेजता है न जाय तो और कोडे लगते हैं । तात्पर्य यह है ज्ञानवान्को भोगोंकी इच्छा नहीं भी है, तब भी प्रारब्ध-रूपी कर्म जबरदस्ती इसको भोगोंको भुगाता है और प्रारब्धने ही इसके शरीरको बना रक्खा है, वास्तवसे इसकी दृष्टिमें शरीर भी नहीं है, किंतु ज्ञानवान्के शरीरका योगक्षेम भी प्रारब्ध कर्मही करता है ॥ २१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने कहा है जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भेद नहीं है, किंतु दोनों एक ही हैं, तब फिर ईश्वरमें जो सर्वज्ञतादिक गुण हैं, वह जीवमें क्यों नहीं हैं ? आत्मा तो दोनोंमें एकही है । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! इसमें भी हम तुमको एक दृष्टांत सुनाकर विरोधको हटाकर दिखाते हैं:—

किसी नगरके बाहर एक महात्मा जंगलमें रहते थे । एक दिन एक पुरुषने जाकर उनसे यही सवाल किया, कि आप लोक कहते हैं, जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भेद नहीं हैं, किन्तु दोनोंमें एकही आत्मा है । तब फिर ईश्वरात्मामें जो कि सर्वज्ञतादिक गुण हैं वे जीवात्मामें क्यों नहीं हैं ? महात्माने कहा हमको प्यास लगी है, और गंगाजलको ही हम पीते हैं और गंगाजी हमारी कुटीसे दूर दो कोसके फासले पर हैं । प्रथम तुम जाकर हमारी तूंबडीमें गंगाजलको गंगाजीसे भरलावो मगर गंगाजलको ही लाना कूपके जलको न लाना; जब कि हम गंगाजलको पान कर लेवैंगे, तब फिर तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देवैंगे । वह महात्माकी तूंबडी लेकर गंगाजीसे जल भरलाया और महात्माके आगे तिसने तूंबडीको धर दिया और महात्मासे कहा, लीजिये गंगाजलको मैं लाया हूँ । महात्मा तूंबडीके जलको देखकर कहने लगे यह तो गंगाजल नहीं है। उसने कहा महाराज! यह गंगाजलही है । महात्माने कहा, हम कैसे विश्वास करलें, जो यह गंगाजलही है ? वह कसमें खाने लगा कि, यह गंगाजलही है । महात्माने कहा तुम तो सच कहते हो परन्तु गंगाजीमें तो पचासों नावें चलती हैं, हजारों मछलियें रहती हैं, लाखों मनुष्य तिसमें स्नान करते रहते हैं, सैकडों पर्वत और वृक्ष तथा नगर और ग्राम तिसके किनारेपर रहते हैं उनमेंसे तो इसमें एक भी नहीं दीखता है, तब हम कैसे जानलें कि, यह गंगाजलही है।उसने कहा महाराज!वह बडा भारी गंगाजीका प्रवाह है, जिसके किनारेपर हजारों नगर और पर्वतादिक हैं, यह थोडासा उसी प्रवाहका हिस्सा है, इसमें वह सब कैसे रहसक्ते हैं ? सारांश यह है कि, गंगाजल होनेमें तो कोई भी संदेह नहीं है । क्योंकि, जो माधुर्य उसमें है, सोई इसमें भी है । महात्माने कहा, इसीतरह तू जीवात्मा और ईश्वरात्मामें भी घटाले । जीवात्माकी

उपाधि जो अंतःकरण है, वह छोटीसी उपाधि है, ईश्वरात्माकी उपाधि जो माया है वह सारे ब्रह्मांडमें फैली हुई है। इसीवास्ते ईश्वरात्मामें सर्वज्ञतादिक धर्म रहते हैं, जीवात्मामें नहीं रहते हैं। परन्तु सुखरूपता दोनोंमें बराबरही है और नित्यत्व चेतनत्वादिक भी धर्म दोनोंमें बराबरही हैं। इसीसे सिद्ध होता है कि, जीवात्मा और ईश्वरात्माका बिल्कुल भेद नहीं है॥ ३२॥

चित्तवृत्ति कहती है, ईश्वरात्मा और जीवात्मा यदि दोनों विद्यमान हैं, तब इन नेत्रोंसे क्यों नहीं दीखते हैं, जो वस्तु नेत्रोंसे नहीं दीखती है, उसकी सत्यतामें क्या प्रमाण है? विवेकाश्रम कहते हैं, हम एक दृष्टांतको देकर इस वार्ताके उत्तरको कहते हैं:—

हे चित्तवृत्ते! किसी नगरके बाहर वनमें एक महात्मा रहते थे। उनके पास जाकर एक मूर्ख पुरुषने इसी प्रश्नको किया। तब महात्माने उसको शास्त्रके वाक्यों और युक्तियोंसे बहुत समझाया तब भी वह मूर्ख न समझा और उसने हठ किया कि हमको इन दोनों नेत्रोंसे दोनोंको दिखला देवो। महात्माने एक मिट्टीके ढेलेको उठाकर तिसके शिरमें मारा तिसका शिर फटगया और वह रोता रोता राजाके पास फरयादी गया और राजासे तिसने जाकर कहा मैंने फलाने महात्मासे ऐसा सवाल किया और उन्होंने जवाबके बदले मेरा शिर फोड दिया, अब मेरेको ऐसा दर्द होता है जो दर्दके मारे मेरे प्राण निकले जाते हैं। राजाने सिपाहीको भेजकर उन महात्माको बुलाया और कहा आपने इसका शिर क्यों फोड दिया है? महात्माने कहा हमने इसके सवालका जवाब दिया है। यह जो आपके पास फरयादी आया है सो क्यों आया है? उसने कहा इसके शिरमें दर्द होता है तिसीसे यह फरयादी आया है। महात्माने कहा जैसे दर्द होता है और दीखता नहीं है, तैसे जीवात्मा और ईश्वरात्मा विद्यमान हैं परन्तु दीखते नहीं हैं। हमको यह अपने दर्दको नेत्रोंसे दिखादे तब हम भी इसके प्रति आत्माको नेत्रोंसे दिखा देवेंगे। जैसे दर्द है भी और नेत्रों करके नहीं दीखता है तैसे आत्मा भी है और नेत्रों करके नहीं दीखता है। राजाने कहा ठीक है। महात्मा अपने आसन पर चले आये, हे चित्तवृत्ते! यही तुम्हारे प्रश्नका भी उत्तर है॥ ३३॥

चित्तवृत्ति कहती है हे भ्राता ! जो लोक वैराग्यपूर्वक गृहस्थाश्रमका त्याग करके संन्यासाश्रममें होजाते हैं, वे पहले घरके प्रपंचको त्याग करके फिर संन्यासाश्रममें जाकर उससे भी अधिक प्रपंचको क्यों फैलाते हैं ? इसका क्या कारण है ? विवेकाश्रम कहते हैं उनको पहले मन्द वैराग्य हुआ था; मन्द वैराग्य अल्प कालतक रहता है फिर नष्ट होजाता है। जब कि स्त्रीको लडका पैदा होने लगता है, तब उस कालमें उसको बडा क्लेश होता है तिसकालमें वह कहती है कि, फिर पतिके पास नहीं जाऊंगी। जब कि, कुछ दिन बीत जाते हैं तब वह दुःख भूल जाती है फिर वह पतिके पास जाती है।

इसीप्रकार जब किसी पुरुषको किसी तरहका घरकार्य्योंसे या धनादिकोंके नष्ट होजानेसे दुःख प्राप्त होता है, तब वह गृहस्थाश्रमको किसी मंद वैराग्यमें त्याग देता है। कुछ दिन बीते जब कि, दुःख भूल जाता है और धनादिकोंकी तिसको प्राप्ति होने लगती है, तब वह संन्यासाश्रममें ही फिर मठादिकोंको बांधकर गृहस्थाश्रम बना लेता है। क्योंकि, तिसका वह मन्द वैराग्य भी जाता रहता है। जैसे वैष्णवको मांससे बडा तिरस्कार रहता है कभी स्वप्नमें भी तिसका मन मांसकी तरफ नहीं जाता है, ऐसा जब कि, स्त्री धनादिकोंसे जिसको वैराग्य होजाता है वह फिर त्यागे हुए प्रपंचकी रचनाको नहीं करता है, इसीमें एक दृष्टांतको कहते हैं:-

हे चित्तवृत्ते ! ईरान देशमें किसान लोक घोडोंको पालते हैं, याने चार २ सौ पांच २ सौ घोडियोंके गोलोंको वह रखते हैं। जब कि, वह घोडियें बच्चोंको उत्पन्न करती हैं, तब वह किसान लोग जंगलमें एक किलेको बनाते हैं। गिरदे तिसके तीन खाइयोंको खोददेते हैं, उस किलेमें नये उत्पन्न हुए घोडियोंके बच्चोंको रखकर भीतर जानेके रास्ताको भी बन्द कर देते हैं और ऊपरके रास्तासे बच्चोंको मसाला वगैरह खिलाकर पालते हैं और उस जंगलमें तिस किलेके समीप किसी प्रकारके शब्दको भी वह नहीं होने देते हैं। जब कि वह बच्चे एक सालके होजाते हैं, तब एक दिन वे किसान लोग एक तोपको ले जाकर तिस किलेके समीप चलाते हैं, तिस तोपकी आवाज़को सुनकर वह

घोडियोंके बच्चे कूदने लगते हैं, कोई तो तीनों खाइयोंको फाँदकर जंगलको दौड जाते हैं, कोई दो खाइयोंको फाँदकर तीसरीमें फँस जाते हैं, कोई एक खाईको कूदकर दूसरीमें फँस जाते हैं, कोई एकमें ही गिरकर फँस जाते हैं, कोई उसी जगहमें फड फडाकर रहजाते हैं। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं।गृहस्थाश्रमरूपी एक किला है तिसमें जीवरूपी घोडियोंके बच्चे सब फँसे हैं, जिस कालमें कोई विरक्त महात्मा आकर वैराग्य-रूपी तोपको चलाता है, तिस कालमें जो कि, तीव्रतर वैराग्यवान् होते हैं वे तीनों खाइयोंको कूदकर निकल जाते हैं। प्रथम खाई तो स्त्री पुत्रादिकोंका मोहरूप है दूसरी खाई वर्णाभिमान है, तीसरी खाई आश्रमाभिमानी है। सो तीव्रतर वैराग्यवाले इन तीनों खाइयोंको कूद जाते हैं अर्थात् स्त्रीपुत्रादिकोंमें मोहको त्यागकर फिर वर्णाश्रमके अभिमानको त्यागकर जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं, वे फिर दूसरे प्रपंचकी रचना किसी प्रकारसे भी नहीं करते हैं और जिनको तीव्र वैराग्य होता है, वे प्रथमकी दो खाइयोंको कूदकर तीसरी आश्रम अभिमानरूपी खाईमें फँस जाते हैं। हम संन्यासी हैं, हम दण्डी हैं, हम सबसे उत्तम हैं, हमारे तुल्य दूसरा कौन है,वह मोक्षके अधिकारी नहीं होते हैं। क्योंकि उनका मिथ्या आश्रममें अभिमान बना है और मन्द वैराग्यवान् प्रथमवाली खाईको कूदकर अर्थात् स्त्री पुत्रादिकोंमें मोहको त्याग करके दूसरी वर्णाभिमानरूपी जो खाई है, चेले मठादिक तिनमें फँस जाते हैं वह भी मोक्षके और ज्ञानके अधिकारी नहीं होते हैं। क्योंकि एक गृहस्थाश्रमरूपी खाईसे निकल दूसरी खाईमें अर्थात् नये प्रपंचकी रचनाको करने लग जाते हैं। और जो अतिमंद वैराग्यवान् हैं वे घरको छोडकर ग्रामके वाहर रहकर सन्त नाम अपना धरकर सुपेद वस्त्रोंको और शिखा सूत्रको भी रखकर कथा वार्त्ता वांचकर अपने घरकी और अपनी पालनाको करते हैं वह भी ज्ञानके अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि उनका दाम्भिक व्यवहार है, इस प्रकारके मनुष्य पांचाल देशमें बहुत हैं और चौथे महामूढ पुरुष हैं, जो कि, वैराग्यकी वातोंको सुन घडी दो घडी वाहें वाहें हाय २ करके रहजाते हैं, उनसे तो वैराग्य दूर भाग जाता है॥ ३४॥

चित्तवृत्ति कहती है—हे विवेकाश्रम ! समुच्चयवादी कहता है कि कर्म और ज्ञान दोनोंको इकट्ठा करनेसे मुक्ति होती है । और वेदांती कहता है केवल ज्ञानसे ही मुक्ति होती है सो दोनोंमेंसे किसका कथन ठीक है ? विवेकाश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ते ! कर्म और ज्ञानका समुच्चय नहीं होसक्ता है । जिसको ऐसा अभिमान है कि मैं इस कर्मका कर्ता हूँ, मैं इस कर्मको करके इसके फलको भोगूंगा उसी पुरुषका कर्मोंमें अधिकार है और जिस पुरुषको ऐसा अभिमान नहीं है, किन्तु जिन पुरुषोंकी ऐसी बुद्धि है कि न हम कर्मके कर्ता हैं न हम तिसके फलके भोक्ता हैं किंतु हम असंग सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, उन्हीं पुरुषोंका ज्ञान और मोक्षमें अधिकार है । दोनों विरोधी एक जगहमें नहीं रहसक्ते हैं ।इसीमें एक दृष्टांत तुमको हम सुनाते हैं:—

एक जाटकी दो लडकी थीं, एक लडकीकी शादी किसानके साथ हुई थी और दूसरी लडकीकी शादी कुम्हारके साथ हुई थी। जब कि,लडकियोंकी शादीको हुए बहुत दिन गुजर गये, तब एक दिन जाटसे स्त्रीने कहा बहुत दिन हुए लडकियोंका कोई खत पत्र नहीं आया तुम जाकर उनके आनंद मंगलकी खबर लाओ । जाट घरसे निकलकर उस ग्राममें गया, जहांपर कि, दोनों लडकियें विवाही गईं थीं । पहले वह किसानके घरमें जाकर लडकीसे मिला और हाल चाल पूंछा । लडकीने कहा बापू खेतमें बीज फेंका है और बादल भी घिरा है । यदि वर्षा न हुई तब तो हम उजड जायँगे । क्योंकि धानका बीज सब जलजायगा और जो वर्षा हो जायगी तब तो हम बस जायेंगे । फिर दूसरी कुम्हारके घरवाली लडकीके पास गया और जाटने पूंछा बच्ची सुखसांदकी ख़बर कहो । उसने कहा बापू और तो सब अच्छा है हमने बर्तनोंका आवाँ लगाया है और आजही तिसको आग दी है, इधरसे हमने आवांको आग दी है, उधरसे बादल घिरकर आया है यदि वर्षा हो जायगी तब तो हम उजड जायँगे क्योंकि कच्चे वर्तन सब गल जायँगे । जो वर्षा नहीं होगी तब तो हम बस जायँगे, क्योंकि वर्तन हमारे सब पकजायँगे । जाट दोनों लडकियोंके हालको पूंछकर जब अपने घरमें आया तब स्त्रीने जाटसे पूछा लडकियोंके हालको सुनाओ । जाटने कहा या तो किसान उजडेगा

या कुम्हार उजडेगा । दोनोंमेंसे एक तो जरूर उजडेगा यही सब हाल कह सुनाया । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाते हैं अन्तःकरणरूपी जाट है, तिसकी जो वृत्तियें हैं कर्तृत्व अकर्तृत्व वही तिसकी दो लडकियें हैं । यदि ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होजायगी तब कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप वृत्ति उजड जायगी और जो दूसरी अहमाकार कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप वृत्ति उत्पन्न होजायगी तब तो ब्रह्माकारवाली नहीं होगी । दोनों वृत्तियें परस्पर विरोधी हैं । इसलिये दोनोंमें एकही होगी दूसरी नहीं होगी, तब समुच्चय कैसे होसक्ता है ? किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है । हे चित्तवृत्ते ! जैसे कोई अनजान बालक नशा खानेवालेकी संगतसे नशा खाने लगजाता है और जब पूरा नशाबाज होजाता है, तब दुःखको उठाता है, फिर जब कि तिसको किसी अच्छेकी संगत होजाती है, तब वह नशेको छोडकर अच्छा बनकर दुःखसे छूट जाता है तैसे आत्मा भी निर्धर्मिक है । जैसी संगत इस जीवको होजाती है वैसाही यह अपनेको मानने लगजाता है भेदवादीकी संगत होनेसे भेदवादी, अभेदवादीकी संगत होनेसे अभेदवादी होजाता है । आत्मा असंग है, सब धर्म आत्मामें कल्पित हैं, आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप है ॥ ३९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक लडका सात आठ बरसका अपने मुहल्लामें खेलता था । अपने खेलमेंही लडका चिल्लाने लगा । उस मुहल्लामें मकान बहुत ऊंचे २ थे उसकी आवाजसे टक्कर खाकर गूँज उठे तब आगेसे भी चिल्लानेका प्रतिध्वनिरूप शब्द हुआ, लडकेने जाना कोई मेरी नकल करता है । लडकेने पूछा तू कौन है? आगेसे भी शब्द हुआ तू कौन है? लडकेने कहा मैं तुमको मारूंगा उधरसे भी आवाज आई मैं तुमको मारूंगा ! लडकेने तिसको गाली दी, आगेसे भी गालीकी आवाज आई, तब लडकेने अपनी मातासे जाकर कहा कोई आदमी मेरेको चिढाता है, परन्तु दिखाई नहीं देता है । माताने कहा बेटा ! दूसरे मुहल्लामें इस वक्त कोई भी तुमको चिढानेवाला नहीं है । जब कि, तुम आवाज करते हो तब तुम्हारी आवाज टक्कर खाकर गूँजती है । तुम जो जानते हो कोई दूसरा हमको चिढाता है, यह तुमको भ्रम है, तुम्हारेसे विना दूसरा कोई भी

तुमको चिढानेवाला नहीं है, तुम अपने इस भयको दूर करो । माताके उपदेशसे लडकेका डर जाता रहा । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है अब इसको दार्ष्टांतमें सुनो । इस जीवके विना दूसरा कोई भी इसको :भय देनेवाला नहीं है, इस जीवका संकल्पही इसको भय देता है अपने संकल्पसे यह जीव नरक स्वर्गादिकोंकी कल्पना करता है, फिर उनकी प्राप्तिके लिये कर्मोंकी कल्पना करता है । फिर फलोंकी कल्पना करताहै, आपही कर्ता भोक्ता बनकर कर्मोंके धक्कोंको भोगता है । जैसे मकडी अपने मुखसे तार निकालकर आपही तिसके साथ क्रीडा करती है । जसे वालक अपने परछांहीको देखकर आपही डरता है, तैसे जीव भी अपने संकल्पोंको करके आपही उनसे भयको प्राप्त होता है । अपने स्वरूपसे भूलकरही जीव दुःखको पाता है । इसी पर एक कविने भी कहा है:-

सवैया-रम्यो सब ब्रह्म नहीं कछु भ्रम तू जान न रम जो नाहिं मरे हैं । एकोहि राम झूठी धूमधाम नहीं कोई काम तु काहि डरे हैं ॥ ब्रह्म सो लाग द्वैतको त्याग स्वरूपमें जाग वृथा क्यों जरे हैं । कहे रामदयाल नहीं कोऊ काल तू आप सँभाली जो बेग तरे हैं ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जीव अपने अज्ञान करके ही भयको प्राप्त होता है, वास्तवसे इसको भय किसीका नहीं है, जब कि मन दूसरेकी कल्पना करता है तभी भय खडा होता है । देवीभागवते:-

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ १ ॥

हे परंतप ! बंध मोक्षमें देह और जीवात्मा तथा इंद्रियें ये सब भी कारण नहीं हैं, किन्तु मनुष्योंका मन ही कारण है ॥ १ ॥

शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा नैव बध्येत कर्हिचित् ।
बंधमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यतः ॥ २ ॥

आत्मा सदैवकाल शुद्ध है, मुक्त है, किसी प्रकारसे भी वह बंधायमान नहीं होता है, बंध और मोक्ष मनसेही स्थित रहते हैं अर्थात् मनका संकल्पमात्र है, मनके शांत होने पर वह भी शान्त होजाते हैं ॥ २ ॥

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः ।
एकात्मत्वे कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ ३ ॥

शत्रु, मित्र और उदासीनता ये सर्व भेद मनमेंही हैं एक आत्माके निश्चय होनेसे फिर भेद कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है भेद तो द्वैत-दर्शनहीसे होता है ॥ ३६ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:–

किसी नगरमें एक बनियां बडा धनिक रहता था, रात्रिके समय तिसकी स्त्री एक जलका लोटा भरकर तिसके सोनेके पलंगके नीचे धर देती थी। सवेरे बनियां जब झाडे जाता था तब तिस लोटेको शौच करनेके लिये ले जाता था । दीपमालिका आनेंका दिन जब कि नजदीक आगया तब तिस बनियांकी लडकीने लोटेमें गेरूऔर रगडकर पानी मिलाकर भर दिया और तिस लोटेको बापके पलंगके नीचे धर दिया। सवेरे अन्धेरेमें वही गेरूवाला लोटा बनियांके हाथमें आगया। बनियांने जंगल फिरकर तिस लोटेसे जब कि, शौच किया तब वह पृथिवी सब गेरूके रंगसे लाल होगई। बनियांने जाना यह सब खून पाखानेके रास्तेसे हमारे भीतरसे गिरा है। बनियां घरमें आकर खाटपर गिर-पडा और स्त्रीसे तिसने कहा आज मैं मरूंगा क्योंकि मेरे पेटसे पाखानेके रास्तासे बहुतसा खून गिरा है, जल्दी कुछ तू मुझसे दान पुण्य कराओ। स्त्री रोने लगी। बनियांने कहा अब रोनेका समय नहीं है जल्दी एक गौको मँगाकर दान करावो और कुछ अन्न वगैरा भी मँगाकर दान करावो। स्त्री सब वस्तुओंके मँगानेके फिकरमें हुई और बनियां भी धीरे २ सुस्त होने लगे। इत-नेमें बनियांकी लडकीने पलंगके नीचे जब कि गेरूके लोटेको खोजा और लोटा तिसको नहीं मिला तब लोटाके न मिलनेसे वह लडकी रोने लगी। बापने पूछा क्यों रोती है? उसने कहा मैंने गेरू घोलकर लोटेमें आपके पलंगके नीचे रखा था न मालूम तिसको कौन उठा लेगया और यह दूसरा लोटा पानीका भरा हुआ इस जगहमें रखा है । मेरा लोटा नहीं दीखता है। लडकीकी वार्ताको सुनकर बनियां उठ बैठा और स्त्रीसे कहने लगा अब मैं अच्छा होगया दान पुण्य करानेकी कुछ जरूरत नहीं । वह खून नहीं था

किन्तु गेरूका रंग था मेरेको भ्रम खूनका होगया था, अब वह भ्रम मेरा जाता रहा है । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है अब दार्ष्टान्तमें इसको सुनो । अनादि अज्ञानके सम्बन्धसे इस जीवको अपने स्वरूपमें भ्रम होरहा है, तिसी भ्रम करके यह जीव अजर आत्मामें जन्म मरणादिकोंको मान रहा है; जब आप्त-वक्ताके उपदेश करके इसका भ्रम दूर होजाता है तब यह अपनेको अजर अमर मानने लगजाता है और जन्म मरणसे रहित होजाता है ॥ ३७ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः—

एक राजाने दो नौकरोंको विदेशमें किसी कामके लिये भेजा । जब कि कुछ दिन बीतगये और उनका कोई भी खत पत्र न आया तब राजाने दोनों नौकरोंकी तरफ दो हुकमनामे लिखे और लिखा इनको पूज्य करके मानना । वह दोनों परवाने दोनों नौकरोंके पास जब पहुँचे तब उन दोनोंमेंसे एकने तो जो परवानेमें करनेको लिखा था तिस कामको करके परवानेको फेंक दिया, और दूसरेने उसमें जो लिखा था उसको तो न देखा, किन्तु परवानेको चौकीपर धरकर तिसकी धूप दीपसे नित्य पूजा करने लगा । जिसने लिखेहुए कामको करके परवानेको फेंक दिया था, राजा उसपर तो बडे प्रसन्न हुए और तिसको राजाने भारी दरजा भी दिया, और जो परवानेको चौकीपर धर कर केवल पूजाही करता रहा था, तिसपर राजा नाराज हुए और तिसको निकाल भी दिया । हे चित्तवृत्ते! यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टान्तमें सुनो । वेद शास्त्ररूपी परवाने याने हुकमनामे ईश्वरके भेजे हुए हैं, जो पुरुष उनपर अमल करता है अर्थात् जो कुछ उनमें लिखा है उसको धारण करता है, उसपर तो ईश्वर प्रसन्न होता है, और उसको मोक्ष देता है । जो कि उनमें लिखेको धारण नहीं करता है, किन्तु चौकीपर धरकर धूप दीपादिकोंसे आरती करता है उनके आगे घण्टोंको हिलाता है, उसपर ईश्वर नाराज होकर उसको जन्मोंकी परम्पराको देता है । इसीपर पंचदशीकारने भी लिखा हैः—

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी विचार्य्य च पुनःपुनः ।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥ १ ॥

बुद्धिमान् पुरुष प्रथम ग्रन्थोंका अभ्यास करै, फिर पुनः पुनः उनका विचार करके धारण करै, फिर जैसे धान्यका अर्थी पुरुष धान्यको ग्रहण करके पलालीका त्याग करदेता है इसी प्रकार यह भी संपूर्ण ग्रन्थोंको फिर त्याग करदेवै ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! केवल ग्रन्थोंके वाँचनेसे आत्मबोध नहीं होता है किन्तु धारण करनेसे होता है ॥ ३८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर तुम्हारेको एक और दृष्टांत सुनाते हैं-एक पुरुष तीर्थयात्रामें जाने लगा तब तिसने विचार किया, यदि द्रव्यको साथ लेजायँगे तब तो रास्तामें चोरोंका भय है, कहीं लुटही जायँगे तब क्या करैंगे । हुंडी लिखवाकर लेजायँ तब अच्छा होगा, वहांपर जाकर शाहकी दूकानसे रुपैया लेलेवेंगे । तिस आदमीने हुंडी लिखवा ली । एक दूसरा भी तिसके साथ तीर्थमें चला । उसने भी हुंडी लिखवा ली । तहांपर जब जाकर दोनों पहुँचे तब एकने तो शाहकी दूकानपर जाकर तिस हुंडीको दिखाकर अपना रुपैया लेलिया । उसको तो रुपैया मिलगया और दूसरा अपने डेरेपर बैठके तिस हुंडीका पाठ करने लगा । कई एक दिन पाठ करता रहा तब भी तिसको हुंडीका रुपैया नहीं मिला । यह तो दृष्टांत है, दार्ष्टान्तमें वेद शास्त्ररूपी सब हुंडियें हैं, इनके केवल पाठमात्र करनेसे आत्माका लाभ नहीं होता है, किन्तु इनमें जो उपदेश लिखा है, तिसपर चलनेसे आत्माका लाभ होता है ॥ ३९ ॥

दो प्रकारके राजा होते हैं, एक न्यायकारी दूसरा अन्यायकारी । जो कि, न्यायकारी होता है, वह कामको देखता है, अपनी खाली तारीफको नहीं सुनता है । और जो नौकर तिसका अच्छा काम करता है, उसको भारी ओहदा देता है और जो नौकर कामको नहीं करता है केवल तिसकी तारीफको ही करता है, तिसको वह पसंद नहीं करता है और न तिसको कोई ओहदा देता है, और जो अन्यायकारी है, वह कामको नहीं देखता है, किन्तु केवल अपनी तारीफको ही सुनता है । अन्यायकारी राजाको दोषका भागी कहा है; निर्दोष और धर्मात्मा राजा न्यायकारी होता है, जो सबको सम देखता है । तैसे ईश्वर भी न्यायकारी है वह कर्मको ही देखता है, जो पुरुष उत्तम

कर्मको करता है अर्थात् वेदोक्त मार्गपर चलता है, उसीको मोक्ष देता है। जो वेदोक्त मार्गपर तो नहीं चलता है, केवल वेदोंके और शास्त्रोंके लोकदिखलावेके लिये पाठोंको करता है या झूठे पाखंडोंको ही करता है, उसको कदापि मोक्षको नहीं देता है ॥ ४० ॥

हे चित्तवृत्ते! जबतक इस जीवको देहादिकोंमें अहंता और गेहादिकोंमें ममता बनी है, तबतक इस जीवको कदापि सुख नहीं होता है। अहंता ममताके त्याग करनेसे इसको सुख होता है सो अहंता ममताका त्याग करना बडा ही कठिन है। इसीमें एक दृष्टांतको सुनाते हैं:—

एक कालमें नारदजी पृथिवीपर पर्यटन करते हुए वैकुण्ठमें जा निकले। वहांपर भगवान्को अकेले बैठे हुए देखकर नारदजीने भगवान्से कहा महाराज! आपका वैकुण्ठ तो आजकल खाली पडा है कोई भी पुरुष यहाँपर नहीं दिखाता है, क्या वैकुण्ठमें भी कोई आनेकी इच्छा नहीं करता है। यहाँपर तो सर्व प्रकारका सुख है किसी प्रकारका भी यहांपर दुःख नहीं है फिर क्यों वैकुण्ठ खाली है? भगवान्ने कहा नारदजी! यद्यपि यहाँपर सर्व प्रकारका सुख है तब भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छा किसीको भी नहीं होती है और हमारा भी मन अकेले नहीं लगता है, दूसरा कोई हो तब दो घडी तिससे बातचीत ही करैं, कोई सेवा करनेवाला भी नहीं है हम क्या करैं? मर्त्यलोकनिवासी कोई भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छा नहीं करता है। नारदने कहा ये कैसी वार्ता है? वैकुण्ठका तो नाम सुनकर सब लोक आपसे आप चले आवेंगे। भगवान्ने कहा अच्छा तुम जाकर दो चार आदमियोंको लावो कुछ सेवाका तो काम चले, फिर देखा जायगा। नारदजी बडे उत्साहके साथ चले और आकर एक बूढेसे नारदने कहा बाबा वैकुण्ठको चलोगे? नारदजीकी बातको सुनकर वह बूढा बडा बिगडा और नारदजीसे कहने लगा, अभागे! तूही वैकुण्ठमें जा, जिसका न कोई आगे है न पीछे है मैं क्यों जाऊं? मेरे पुत्र और पोते और स्त्री धनादिक सब मौजूद हैं। जो निपूता हो सो वैकुण्ठमें जाय। नारदजी चुपचाप होकर वहांसे चलपडे। आगे एक और युवावस्थावालेसे नारदजीने

कहा, वैकुण्ठको चलोगे? उसने नारदसे कहा, बाबा! वैकुण्ठ तो बूढोंके लिये बना है, जो कि, किसी कामलायक न हो वह वैकुण्ठमें जाय, हम तो सब काम करसक्तेहैं; हम क्यों वैकुण्ठमें जायँ? वहांसे थोडी दूर जाकर फिर एक पुरुषसे नारदने कहा, वैकुण्ठको जावोगे? उसने कहा किसी दूले लंगडेको खोजो, यहां पर तुम्हारी दाल नहीं लगती है। नारदजीने बहुतसे मनुष्योंको वैकुण्ठ जानेके लिये कहा परन्तु किसीने भी कबूल न किया। तब नारदजीने एक वृद्ध साहूकारको तिलक छापे लगायकर दूकानमें बैठे हुये देखा। नारदजीने अपने मनमें विचार किया यह भगवान्का भक्त दीखता है, यह अवश्य ही वैकुण्ठको चलेगा और जो यह एक भी चलदे तब हमारी भी बात रहजाय, क्योंकि हम भगवान्से कह आये हैं हम किसीको लावेंगे और भगवान्को भी सेवा करनेसे आराम मिलजाय। नारदजी तिस सेठके पास जाकर बैठगये और सीताराम २ करके तिस सेठके कानमें नारदजीने कहा, सेठजी! संसारका सुख तो आपने सब देख ही लिया है, अब चलकर कुछ काल वैकुण्ठके सुखको भोगो। सेठने कहा, महाराज! मेरी भी यही सलाह है परन्तु अभी लडका सयाना नहीं है, यह जरा सयाना होजाय और दूकानके कामकाजको सँभाल ले तब चलूंगा, आप कुछ दिन पीछे फिर आना। नारदजी चले गये और कुछ दिन पीछे फिर उसके पास आये और उससे कहने लगे, अब तो तुम्हारा लडका सयाना होगया है अब चलो। उसने कहा, अभी इसके संतति नहीं हुई है इसके पुत्र हो ले तब चलूंगा नारदजी चले आये। फिर कुछ कालके पीछे तिस सेठसे जाकर कहने लगे, अब तो चलो अब तो तुम्हारे पोता भी होगया है। सेठने कहा महाराज! अभी इसकी शादी नहीं हुई है इसके विवाहको देखकर चलूंगा। नारदजी फिर कुछ कालके पीछे आये और सेठके लिये पूंछा कि, सेठ कहां है? तिसके लडकेने कहा, वे तो मरगये। नारदजीने ध्यान लगाकर देखा तो सर्प बनकर अपने द्रव्यपर बैठे थे। नारदजीने कहा, अब तो चलो। उसने कहा, अपने द्रव्यकी रक्षा करताहूँ अभी लडका द्रव्यकी रक्षालायक नहीं है जब यह रक्षालायक होजायगा तब चलूंगा। नारद कुछ दिन पीछे फिर गये तब

वह कुत्ता बनकर द्वारपर बैठा था, नारदजीने कहा अब तो चलो, तब तिसने कहा महाराज पतोहें अनजान हैं, मैं द्वारपर बैठकर चोर चकारकी रक्षा करता हूँ, नहीं तो चोर घरमेंसे मालको निकालकर लेजायँ । तब नारदजीने तिस सेठकी स्त्रीसे कहा, तुमही वैकुंठको चलो, तिसने कहा महाराज ! अभी दो चार काम घरके बाकी हैं, वह होजायं तब मैं चलूंगी । फिर थोडे दिनोंके पीछे नारदजी जब गये तब वह सेठानी भी मरकर कुतिया बनकर द्वारपर बैठी हुई और कुत्तोंसे खराब हो रही थी । नारदजीने कहा अब तो चलो । उसने कहा अभी तो मैं इसी जन्ममें बडी सुखी हूँ, फिर चलोंगी । नारदजी हारकर वैकुण्ठमें जाकर भगवान्से कहने लगे, महाराज ! आपने सत्य कहा है संसारी लोक ऐसी ममतामें फँसे हैं जो कोई भी वैकुण्ठमें आनेकी इच्छाको नहीं करता है । हे चित्तवृत्ते ! यह संसार असाररूप भी है और अति मलिन भी है, तब भी सांसारिक लोक ऐसी मोह ममतामें फँसे हैं, जो इसके त्यागकी इच्छाको नहीं करते हैं ॥ ४१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! जो वस्तु मलिन होती है उससे तो मनुष्यमात्रको घृणा होती है, फिर संसारी लोकोंको क्यों नहीं घृणा होती है ? विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! मोह ममतामें जो फँसे हैं उनको घृणा नहीं होती है । जैसे भंगीको मैलाके देखनेसे घृणा नहीं होती है, तैसे महामलिन घृणाका जो पात्र गृहस्थाश्रम है, जिसमें कि, नित्यही अपने बाल बच्चोंके पुरीष मूत्रको उठाना और धोना पडता है, घरमें किसी जगहमें मूता है, किसी जगहमें पुरीष किया है, कहीं सींड पडी है, कहीं थूक पडा है, कोई हाय २ करता है, कोई वाह २ करता है, ऐसे मलिन व्यवहारसे संसारियोंको घृणा नहीं फुरती है । क्योंकि, इनका स्वभाव ही वैसा होजाता है । इसीपर एक दृष्टांत कहते हैं:—

किसी नगरके बाहर एक महात्मा रहते थे, एक दिन राजाने जाकर उनसे प्रार्थना की, महाराज ! हमारे घरमें चलकर चरण धरिये जो वह पवित्र होजाय । प्रथम तो महात्माने नहीं माना। जब कि, राजाने बहुतसी विनती की तब राजाके

साथ चलपडे। जब राजाके घरमें जाकर बैठे, तब थोडी देरके पीछे महात्माने कहा हे राजन् ! हम चलैंगे क्योंकि, तुम्हारे घरमें बडी दुर्गंधी आती है. राजाने कहा महाराज ! यहांपर दुर्गंधीका कौन काम है ? यहांपर तो बडी सफाई है। महात्माने कहा, राजन् ! तुमको वह माल्रुम नहीं देती है । क्योंकि तुम्हारा स्वभावभूत हो रहा है, चलो हम तुमको दिखावेंगे । महात्मा राजाको साथ लेकर उस बाजारमें गये जिस बाजारमें कचे चामके कूपे बनते थे, वहांपर जाकर खडे होगये । राजाने कहा, महाराज ! यहांपर तो सडे हुए चर्मकी बडी दुर्गंधी आती है । महात्माने एक चर्मकारसे पूंछा क्यों भाई! यहांपर कुछ दुर्गंधी है ? उसने कहा यहां दुर्गंधी कोई नहीं है। महात्माने राजासे कहा देखो यहांके रहनेवाले कहते हैं यहांपर दुर्गंधी नहीं है फिर आपको कैसे आती है, राजाने कहा, इनका दीमाग गन्दा होगया इसीलिये इनको नहीं आती है । महात्माने कहा इसी तरह आपके यहांकी दुर्गंधी जो है सो आपको भी नहीं आती है क्योंकि, वह आपके दीमागमें घुसगई है । जो वस्तु स्वभावभूत होजाती है उससे घृणा नहीं होती है । सो गृहस्थाश्रमकी दुर्गंधी भी आपकी स्वभावभूत होगई है, इसलिये आपको उससे घृणा नहीं होती है । राजाने कहा ठीक है। हे चित्तवृत्ते ! गृहस्थाश्रम घृणा करनेका स्थान है, क्योंकि अनेक प्रकारके क्लेश इसमें रात्रिदिन बनेही रहते हैं परन्तु मोह ममताके जालमें फँसे हुए जो पुरुष हैं, उनके अन्तःकरण अति मलीन होगये हैं, इसलिये उनको उससे घृणा नहीं होती है और जिनका अन्तःकरण सत्संग करके शुद्ध होगया है उनको घृणा तो होती है। वह विगारी पकडे हुएकी तरह गृहस्थका काम करते हैं, खुशीसे नहीं करते हैं॥ ४२ ॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयपर एक और दृष्टांत तुमको सुनाते हैंः—

किसी नगरके मुहल्लोंमें एक धनी पुरुष अपने द्वारपर खडा था, इतनेमें एक भंगी मैलेकी दौरीको उठाये हुए उस रास्तासे निकला, तब धनिकने उस भंगीसे कहा, अरे नीच ! इस मैलेको नंगा मत लेजाया कर, क्योंकि इसको देखकर लोकोंके जी मिचलाने लगते हैं, किसी कपडासे इसको ढककर

लेजाया कर । भंगीने कहा मैं कपडा कहांसे पाऊं जो इसको ढकूं । धनिकने एक सुपेद रूमाल तिसको देदिया और कहा इससे इसको ढककर लेजा । भंगीने उस रूमालको उस मैलेकी दौरीपर डालदिया और चलपडा । जब कि वह कुछ दूर निकलगया, तब वहांपर तीन पुरुष खडे थे। उन्होंने जाना इस दौरीमें कोई अच्छी वस्तुको यह लिये जाता है । भंगीसे उन्होंने कहा, इसमें क्या है हमको दिखला दे। भंगीने कहा आपके देखने लायक यह नहीं है,ऐसा कह करके भंगी चलपडा । तीनोंने भंगीका कहा न माना, तिसके पीछे २ चलपडे, आगे एक पुरुष खडा था, उसने उनसे कहा, क्यों मैलेके पीछे चले जाते हो ? इसमें मैला है, कोई उत्तम वस्तु नहीं है । एक तो तिसके कहनेपर पीछेको लौट गया, दो फिर भी न हटे किन्तु भंगीके पीछे पीछेही चलने लगे, कुछ दूर जाकर फिर भंगीने उनसे कहा इसमें कोई अच्छी वस्तु नहीं है किन्तु मैला है । तुम क्यों दिक होते हो ? दूसरा भी पीछेको हटा । तीसरेने कहा हम बिना देखे नहीं हटेंगे हमको तुम दिखला देवो । जब कि भंगी एक तंग गलीमें पहुँचा तब उससे कहा आवो देखो। ज्योंही वह आगे देखनेको बढा और भंगीने मैलापरसे रूमालको उठाया और मैलेकी दुर्गंधी सब तिसके नासिका और मुखमें गई और वह भागा त्योंही उस तंग गलीमें वह गिरा और कई एक जगह तिसको चोटभी लगी । हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें सुनो। संसारमें उत्तम मध्यम कनिष्ट ये तीन प्रकारके पुरुष हैं और स्त्रीका शरीररूपी एक मैलेकी दौरी है, ऊपरसे सुपेद चर्मरूपी रूमालसे ढकी हुई है, विषयी पुरुषरूपी भंगी तिसको लिये जाता है, तीनों पुरुष तिसको अच्छी वस्तु जानकर तिसके पीछे चले । आगे कोई महात्मा खडे थे उन्होंने कहा इसके पीछे तुम मत खराब होवो । यह तो एक मैलेकी दौरी है, जोकि उत्तम था वह तो उनके वाक्यपर विश्वास करके पीछेको लौट गया, जो मध्यम था वह कुछ दूर जाकर लौटा, जो कनिष्ट था वह भी लौटा तो सही, परंतु धक्के और चोटको खाकर शिर फटाकर अनेक प्रकारके क्लेशोंको सह करके पश्चात् उसने भी तिसका त्याग किया और जो अति मूर्ख हैं वे इसीमें ही जन्मभर दुःख पाते रहते हैं, उनको कभी भी घृणा नहीं होती है ॥ ४३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! संसारमें जीवोंको जो ममता होरही है, येही दुःखका हेतु है। जिसको ममता नहीं है, वह घरमें रहकरके भी सुखी है। जिसको ममता बनी है वह घरका त्याग करके भी दुःखी है। इसीमें एक दृष्टांतको सुनाते हैं:—

एक राजा बडा सत्संगी था, महात्माका संग सदैवकालही करता था और उसके नगरके बाहर वनमें एक महात्मा रहते थे, नित्यही उनके पास जाया करता था। एकदिन राजाने महात्मासे कहा, महाराज ! राजकाजमें बडा दुःख होता है, इस दुःखकी निवृत्तिका कोई उपाय आप कहिये। महात्माने कहा, राजन् ! तुम अपने राज्यको हमारे प्रति दान करदेवो। राजाने तुरंतही जल लेकर राज्यको महात्माके प्रति दान करदिया। महात्माने कहा, राजन् ! अब तुम्हारी इस राज्यमें कुछ ममता है या नहीं ? राजाने कहा हमारी अब इस राज्यमें कुछ भी ममता नहीं है चाहे बने चाहे बिगडे। महात्माने कहा अब तुम हमारी तरफसे इसका इन्तजाम करो और जो कुछ तुम्हारा खर्च हो वह अपनी तनख़ाह जानकर लिया करो। नौकर वही धर्मात्मा कहाजाता है जो मालिकका काम अच्छा करता है, राजा अपनेको नौकर जानकर राजकाजको करने लगे। फिर राजासे एकदिन महात्माने पूंछा राजन् ! राजकाजमें तुमको कुछ विक्षेप तो नहीं होता है ? राजाने कहा, हमारी अब राज्यमें ममता ही नहीं है, विक्षेप हमको क्यों हो ? महात्माने कहा ठीक है। हे चित्तवृत्ते ! जो पुरुष गृहमें रहकरके भी ममतासे रहित होकर गृहके कामोंको करता है उसको विक्षेप नहीं होता है परंतु ऐसा होना अति कठिन है ॥ ४४ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जबतक पुरुषका मन अंतर आत्माकी ओर नहीं लगता है, तबतक पुरुष विषयोंकी तरफ दौडता है। मनको अंतर्मुख करनेके लिये शास्त्रकारोंने योगाभ्यास आदिक अनेक साधन कहे हैं। प्रथम मनको स्थूल पदार्थमें लगाना कहा है, स्थूलमें जब कि लगने लगता है तब धीरे २ सूक्ष्ममें जाकर ठहर जाता है, विना स्थूलमें लगानेसे सूक्ष्ममें नहीं लग सक्ता है। योगसूत्रमें लिखा है, जो वस्तु अपनेको अति प्यारी हो, उसीमें मनको लगाय किसी मनुष्यकी वा देवताकी मूर्तिमें या सूर्य्य चन्द्रमा आदिक

तारोंमें निरोध करे विना मनके निरोध करनेसे महान् सुखका लाभ नहीं होता है। केवल ज्ञानकी बातोंसे भी सुख नहीं होता है । अभ्यास और वैराग्यको ही मनके निरोधका साधन लिखा है । तात्पर्य यह है, मनका निरोध किसीतरहसे होसके उसी तरहसे सुखका हेतु है । इसीमें एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं:—

हे चित्तवृत्ते ! किसी नगरमें एक भंगी राजाके घरमें नित्यही पाखाना कमानेको जाता था । दैवयोगसे एक दिन जब वह पाखाना कमानेको गया तब रानीको उसने सिंहासनपर बैठीहुई देखलिया । देखतेही उसका मन रानीमें चला गया और किसी तरहसे वह अपने घरतक पहुँचा, आते ही वह गिर पडा और अपनी स्त्रीसे उसने कहा, अब मैं दोचार घडीमें मरूँगा । स्त्रीने हाल जब पूछा तब उसने सब हाल बतादिया । स्त्रीने कहा तुम धीरज धरो, मैं इसका कोई उपाय करूंगी । स्त्रीने रानीसे जाकर कहा, हमारा पति मरता है इसका कोई इलाज तुम बतावो सब हाल पतिका रानीसे कह दिया । आगे रानी बडी बुद्धिमान् थी उसने कहा, तुम पतिसे जाकर कहो वह साधुका भेष बनाकर बाहर नदीके किनारेपर बैठकर रात्रिदिन हमारा ध्यान करे और किसीकी तरफ बिलकुल न देखे अंतर मनमें मेरेको ही देखे । थोडे दिनके पीछे मैं उसी जगहसें उसके पास आऊंगी । उसने जाकर पतिसे रानीके मिलनेका उपाय कह दिया। वह साधुका भेष बनाकर नदीके किनारेपर पद्मासन लगाकर रानीका ध्यान करने लगा । कोई पुरुष कुछ आगे धरजाय चाहे कोई उठाकर लेजाय वहाँ किसीकी तरफ भी न देखें । थोडे ही दिनमें नगरमें बडी चरचा फैलगई; एक महात्मा ऐसे योगिराज आये हैं जो आठों पहर अपनी समाधिमें ही स्थित रहते हैं । अब बहुतसे लोक उनके पास जाने लगे । राजातक खबर पहुँची । राजा भी एक दिन उनके दर्शनको गये, परन्तु उसने राजाकी तरफ भी आँख खोलकर नहीं देखा । ऐसी उसकी वृत्ति रानीके ध्यानमें जमी, जो बाहरके संसारकी उसको कुछ भी खबर न रही और वृत्तिके एकाकार होजानेसे वृत्तिमें चेतनका प्रतिबिंब भी स्थिर होगया, तिस प्रतिबिंबके स्थिर होजानेसे उसको अंतर आत्मसुखका लाभ होगया, तिस आत्मसुखके आगे विषय सुख

सब अति फीके और बेरस मालूम होते हैं। रानीने राजासे कहा, मेरेको हुक्म हो तो मैं भी उन महात्माका दर्शन कर आऊं। राजाने कहा जाओ। रानी वहाँपर गई। कनात लगाई गई, चौगिरदा पहरा खडा होगया। रानीने समीप जाकर उनसे कहा, जरा आंखोंको खोलकर देखो मैं वही रानी हूँ जिसके मिलनेके लिये आपने इतना आडंबर किया है। उसने कहा, मेरेको अब वह रानी मिली है जिसके सामने तुम्हारी जैसी करोडों रानियें हाथ जोड-कर खडी हैं, अब तू चली जा। मैं महान् रानीके साथ जाकर मिलगया हूँ। आंख खोल करके भी उसने रानीकी तरफ न देखा। रानी अपने घरको लौटकर चली आई। हे चित्तवृत्ते! जितना भारी सुख है सो मनके निरोधमें ही है, और जितना भारी दुःख है सो मनके इतस्ततः स्वतन्त्र होकर भ्रमण करनेमें ही है॥ ४९॥

हे चित्तवृत्ते! एक और भी दृष्टांत तुमको मनुष्य जन्मपर सुनाते हैं:—

एक राजाके तीनसौ साठ रानी थीं और प्रत्येक रानीके पास राजा एक २ रात्रिको जाते थे, अर्थात् बरसकी तीनसौ साठ रात्रि होती हैं सो हिसाबसे तीन सौ साठ रातोंपर बटी हुई थीं। जिस रानीके घरमें राजाके आनेकी जिस दिन पारी होती थी वह रानी उस दिन अपने घरमें बडी तैयारी करती थी, क्योंकि फ़िर सालभर पीछे तिसकी पारी पडती थी। जिस दिन सबसे छोटी रानीकी पारी पडी तिसने अपने घरमें बहुतसी तैयारी करी। जब कि, चार पांच घडी रात्रि व्यतीत होगई और राजाको आनेमें देर होगई क्योंकि; राजाको उस दिन कोई काम पेश आगया। राजा उस काममें रुक गये और इधर रानीको नींदने सताया तब रानीने अपनी लौंडीसे कहा, मैं तो सो जाती हूँ, क्योंकि, मेरेको नींदने बहुत सताया है और तू जागती रह, जब राजा साहिब आवें तब हमको जगा देना। लौंडीसे ऐसे कहकर रानी तो सोगई। अर्द्ध रात्रिके बीत जानेपर राजा वहांपर गये और रानीको सोती देखकर बडे क्रुद्ध हुए। लौंडी राजाके सामने कुछ बोल न सकी किन्तु रानीको न जगासकी। राजा भी थके थे वह भी जाकर सोगये। सबेरे राजा उठकर अपने कामपर चले गये। पीछे जब कि रानीकी नींद खुली तब उसने लौंडीसे

पूछा राजा साहिब आये थे ? लौंडीने कहा हां, आये थे। तब रानीने कहा, हमको तुमने क्यों नहीं जगाया ? लौंडीने कहा, राजाके क्रोधके आगे मेरे होश विगड गये थे. कैसे जगाती ? तब रानी रोने लगी और रानीने कहा, फिर कब तीन सौ साठ रात्रि बीतेंगी। जो राजा फिर मिलेंगे। ऐसे कह कर पश्चात्ताप करके रोने लगी। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है। अब इसको दार्ष्टान्तमें लेना। चौरासी लाख योनियोंमेंसे फिरता २ यह जीव मनुष्ययोनिमें आता है, इस मनुष्ययोनिमें भी यदि इसको अपने स्वरूपका बोध न हुवा तब फिर कब चौरासी लाख योनि व्यतीत होंगी जो इसको फिर मनुष्य जन्म मिलैगा ? इस प्रकारका इसको भी अन्तमें पश्चात्ताप ही करना पडैगा ॥४६॥

हे चित्तवृत्ते ! इसी विषयमें हम तुमको एक और दृष्टांत सुनाते हैं:—

एक राजाने किसी दूसरे राजापर चढाई की और उस राजाके देशको इस राजाने जीत लिया। कुछ कालतक राजा उसी देशमें रहा, जब राजाने अपने देशमें आनेकी तैयारी की तब अपने घरमें सब रानियोंके प्रति राजाने लिखा जिस २ वस्तुकी जिसको जरूरत हो वह लिखे उसके लिये मैं वहीं वस्तु खरीद करके लेता आऊंगा। सब रानियोंने उस देशके भूषण वस्त्रोंके लानेके लिये राजाको लिखा, जो कि, सबसे छोटी रानी थी उसने एक सादे कागज पर एकका अंक लिखकर लिफाफामें बन्द करके राजाकी तरफ खतको भेज दिया। राजाने सबके खतोंको वाँचकर जिसने जो २ वस्तु लिखी थी उसके लिये मँगाकर सन्दूकोंमें बन्द करके रखवादी। जब कि, तिस छोटी रानीके खतको वाँचा तब उसमें कुछ भी नहीं लिखा था। केवल एकका एक अंक ही लिखा था। राजाने वजीरसे कहा, यह रानी कैसी मूर्ख है ? इसने खाली अंक लिख-कर भेज दिया है। अब इसका क्या मतलब है आप समझाइये। वजीरने कहा, सब रानियोंमें यही रानी चतुर है, इस एक अंक लिखनेका यह मतलब है हमको एक तुम्हारी ही चाहना है और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है, राजाने कहा ठीक है। जब राजा अपने नगरमें आये तब जो २ वस्तु जिसके लिये लाये थे सो सो वस्तु उसके घरमें भिजवादी और आप राजासाहिब उस छोटी रानीके घरमें चले गये। राजाके वहांपर जानेसे बाकीकी सब विभूति राजाके

साथही तिस रानीके घरमें चली गई। हे चित्तवृत्ते ! यह तो दृष्टांत है, अब इसको दार्ष्टान्तमें घटाओ। संसारमें जितनेक सकामी पुरुष ईश्वरकी भक्ति उपासनाको जिस २ फलके लिये करते हैं उसी २ फलको पाते हैं, उससे अधिकको नहीं पाते हैं। जो कामनासे रहित होकर केवल तिसी एक ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये उपासनाको करता है, वही तिस निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होता है,वही जन्ममरणरूपी संसारचक्रसे छूट जाता है। दूसरा किसी प्रकारसे भी तिस चक्रसे नहीं छूट सक्ता है। इस लिये मुक्तिकी इच्छावालेको उचित है कि, निष्काम होकर तिस एकहीकी उपासना करै ॥ ४७ ॥

विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! एक और दृष्टांतको तुम सुनोः—

किसी नगरमें दो पुरुष परस्पर मित्र थे और इकट्ठे भी रहते थे और दोनोंको यह बीमारी थी जो जहांपर एक आदमी खडा हो वहांपर दो दिखाते थे, अर्थात् एक २ के दो २ उनको दिखाते थे। एक दिन दोनोंने परस्पर विचार किया चलकर किसी वैद्यके पास इस बीमारीका इलाज कराना चाहिये। दोनों एक वैद्यके पास गये और वैद्यसे अपना हाल कहा,हमको एकके दो २ दीखते हैं हम इसकी दवाई करैंगे। वैद्यने. उनसे कहा, हमको तो एकके तीन दीखते हैं। इन्होंने कहा, कैसा भी हो हम तुम्हारी ही दवा करेंगे। दोनोंमेंसे एकने विचार किया हमसे तो वैद्यको अधिक बीमारी है यह हमारी क्या दवाई करैगा ? वह तो ऐसा विचार करके अपने घरको चला गया। दूसरा जो अनजान था वह तिस वैद्यके पास बैठ गया और तिसकी दवाईको करने लगा थोडे दिनमें तिसको भी एक २ के तीन २ दिखने लगगये। यह तो दृष्टांत है, अब दार्ष्टांतमें इसको सुनो। इस जीवको ईश्वर जीवका भेदरूपी द्वैत तो पहले ही दिखाता था। तिस द्वैतके दूर करनेके लिये यह गुरुके पास गया आगे गुरु ऐसा मिला जो उसने त्रैत लगा दिया। एक हम हैं दूसरा ईश्वर है तीसरी प्रकृति याने माया है और तीनों नित्य हैं, अथवा तीन जो ब्रह्मा विष्णु महेश देवता हैं सो तीनों ईश्वर हैं, इन तीनोंकी उपासनासे मुक्ति होती है। इसतरहका त्रैत लगा दिया। इसके तरहके जो गुरु हैं उनके उपदेशसे मोक्ष कदापि नहीं होसक्ता है। मोक्ष उसी गुरुके उपदेशसे होसक्ता है जो एकात्मवादी है ॥ ४८ ॥

हे चित्तवृत्ते ! जिस कालमें यह जीव माताके गर्भमें आता है और फिर पिताके वीर्यसे और माताके रक्तसे जिस कालमें इसका शरीर बनकर गर्भमें तैयार होजाता है उस कालमें जीवको अपने पूर्वके अनेक जन्म याद आते हैं और अनेक जन्मोंमें जो दुःख सुख भोगे हैं वह भी सब इसको याद आते हैं, तब यह ईश्वरसे प्रार्थना करता है, अबकी बार जो मैं जन्मको लेऊंगा, तब अवश्य ही आपकी उपासना करूंगा ऐसा बार २ कहता है । जब कि, जन्म लेता है तब माया मोहमें पडकर तिस करारको भूल जाता है, इसीसे फिर जन्म मरणको प्राप्त होता है और वह पुरुष भी नहीं होसक्ता है । पुरुष वही कहाता है जो अपने वचनकी पालना करता है । हे चित्तवृत्ते ! इसीमें हम तुमको एक दृष्टांत सुनाते हैं:—

किसी नगरके बाहर जंगलमें एक महात्मा रहते थे और नित्य ही वह दोपहरके समय नगरमें भिक्षा मांगनेको जाते थे । रास्तेमें एक वेश्याका मकान था जब कि वह महात्मा उस मकानके समीप जाते थे तब वह वेश्या उनसे नित्यही पूंछती थी आप स्त्री हैं या पुरुष हैं ? तब महात्मा कहते थे इसका जबाब हम फिर देंगे । इसी तरह नित्यही उनकी आपसमें बातें होती थीं। कई बरस इसी तरह कहते सुनते बीत गये । एक दिन उन महात्माका देहान्त होगया । जब नगरमें उनके मरनेकी खबर फैली तब बहुतसे लोग गये । उस वेश्याने जब सुना वह भी गई। आगे वहांपर लोकोंकी बडी भीड लगी थी। उस वेश्याने कहा हटो, हमको भी दर्शन कर लेने देवो । लोक जब थोडासा हटगये तब वेश्याने उनका नाम लेकर पुकारा और कहा तुम स्त्री हो या पुरुष हो ? जब कि तीन बार वेश्याने कहा, महात्मा सत्यवादी होते हैं, आपने कहा था हम तुम्हारे प्रश्नका उत्तर फिर देंगे सो बिना उत्तर दिये क्यों मरगये ? यदि हमारे प्रश्नका उत्तर न देकर मरजावोगे तब असत्यवादी ठहरोगे । जब कि, वेश्याने ऐसा कहा तब महात्मा उठकर कहने लगे हम पुरुष हैं हम पुरुष हैं । वेश्याने कहा, आप तो पहलेसे ही जानते थे हम पुरुष हैं तब फिर आपने क्यों न कह दिया । महात्माने कहा बाहरके चिह्नोंसे आदमी पुरुष नहीं होसक्ता है, किंतु जो अपने वचनकी पालना करता है वह पुरुष कहा जाता है । हम तुमसे तभी कह देते जो हम पुरुष हैं और बीचमें किसी तरहका विघ्न

पडजाता तब हम कैसे पुरुष होसक्ते ? अब तो हमारी आयु समाप्त होचुकी है और किसी तरहका अब विघ्न भी नहीं पडसक्ता है । इसलिये अब हम कह सक्ते हैं जो हम पुरुष हैं। वेश्याने कहा ठीक है । हे चित्तवृत्ते ! जो आदमी तिस गर्भवाले करारको परमार्थदृष्टिसे ही पूरा करता है, वही पुरुष है । ऊपरके चिह्नोंसे परमार्थिक पुरुष नहीं होसक्ता है ॥ ४९ ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और लौकिक दृष्टांतको तुम सुनोः—

दक्षिण देशमें वंजरा और गरुडगंगा नदीका जहाँपर संगम होता है, वहांपर देवशर्मा नाम करके एक ब्राह्मण रहता था और तिसकी स्त्रीका नाम सुवर्मा था, तिस ब्राह्मणके घरमें लडका कोई नहीं था । पुत्रकी उत्पत्तिके लिये वह ब्राह्मण वंजरा और गरुडगंगाकी उपासना करता रहा । जब उपासना करते २ तिसकी उमर साठ बरससे ऊपरकी होगई, तब तिसके घरमें एक अंधा लडका पैदा हुवा । उस अन्धे लडकेके भी पैदा होनेसे तिसको वडा हर्ष हुवा और तिसको बडे लाड प्यारसे वह पालन करने लगा । जब कि, वह लडका पाँच बरसका हुवा तब तिसका यज्ञोपवीत उसने बडी धूमधामसे कराया और फिर तिसको विद्या पढाने लगा, थोडेही बरसोंमें वह अंधा पढकर पंडित होगया । एक दिन वह अंधा अपने आसनपर बैठा था और बाहरसे तिसका पिता आकर जब तिसके पास बैठा तब अन्धेने बापसे पूंछा हे पिता ! पुरुष किस पाप करके अन्धा होजाता है ? पिताने कहा, हे पुत्र ! जो पुरुष पूर्व जन्ममें रत्नोंकी चोरी करता है वह अन्य जन्ममें अंधा होता है । अन्धेने कहा, हे पिता ! यह वार्ता नहीं है, क्योंकि, शास्त्रकारोंने ऐसा नियम करदिया हैः—"कारणगुणा हि कार्य्यगुणानारभन्ते" कारणके जो गुण होते हैं वही कार्य्यके गुणोंको भी आरंभ करते हैं अर्थात् कारणके गुण ही कार्य्यमें भी आजाते हैं । हे पिता ! मैं जानता हूँ जिस हेतुसे तुम अन्धे हो इसी हेतुसे मैं भी तुम्हारे घरमें अंधा पैदा हुवा हूं । पुत्रकी वार्ताको सुनकर पिताने क्रोधसे कहा, मैं कैसे अंधा हूं ? पुत्रने कहा, हे पिता ! साक्षात् मुक्तिको देनेवाला जो वंजरा और गरुडगंगाका संगम है उसकी उपासना तुमने पुत्रकी कामना करके की है, इसीसे मैं जानता हूँ जो तुम ही अन्धे हो मैं अन्धा नहीं हूँ । हे पिता !

ब्रह्मास्त्रको धारण करके भी तुमने एक मच्छरको ही मारा इसीसे तुमही अन्धे हो । हे पिता ! वेद शास्त्रको पढकर एक मूत्रके कीटकी जो इच्छा करता है, वही पुरुष अन्धा कहा जाता है । जैसे और मूत्रसे अनेक कृमि उत्पन्न होते हैं, तैसे पुत्र भी एक मूत्रका कृमि है । हे पिता ! जिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये तुमने जन्मभर तप किया है वह पुत्र तो बिनाही तपके सूकर कूकरादिकोंके भी उत्पन्न होते हैं । हे पिता ! पुत्र करके किसीकी भी गति न हुई है न होवेगी । अपने पुरुषार्थसे ही गति होती है । जो पुरुष संसारबन्धनसे छूटना चाहता है वह पुत्रोंका भी त्याग करदेता है । यदि पुत्रसे गति होती तब वह पुत्रोंका त्याग क्यों करदेता और बहुतसे राजोंने भी आत्मसुखलाभके लिये तप किया है इसीसे साबित होता है कि पुत्रसे गति नहीं होती है, जो पुत्रसे ही गति मानता है वही अंधा है ॥

य आत्मज्योतिरुत्सृज्योदयास्तमयवर्जितम् ।
उदयास्तमयं ज्योतिः सेवते सोऽन्ध ईर्यते ॥ १ ॥

जो पुरुष अन्तरहृदयमें ज्योतिमय नित्य आत्माका त्याग करके उत्पत्ति नाशवाली सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतियोंकी उपासना करता है वही अन्धा है, नेत्रहीन पुरुष अंधा नहीं है ॥ १ ॥

हे पिता ! जैसे ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध है तैसे जीव भी नित्य शुद्ध है और यह जितना जगत् दीखता है सो सब भ्रममात्र है, जैसे मरुभूमिमें जो जल दीखता है, वह जल मरुभूमिरूप ही है । तैसे यह जगत् भी भ्रमकरके अधिष्ठान चेतनमें दीखता है सो अधिष्ठानरूप ही है । हे पिता ! यह जो पुरुष कहता है यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, गृह है, ये सब वासना-करके ही दीखता है, वासना करकेही यह जीव बंधको प्राप्त होता है, वासनाका त्याग करनेसे परमानन्द प्राप्त होजाता है और वासना करके ही यह अज्ञानी बना है वासनाके त्याग करदेनेसे ज्ञानवान् बनजाता है ।

हे पिता ! सच्चिदानंदरूप ब्रह्मको ज्ञानवान् पुरुष ज्ञानरूपी चक्षु करके देखते हैं, अज्ञानी जीव तिसको ज्ञानरूपी चक्षु करके नहीं देखसक्ते हैं । वह

अज्ञानी पुरुष ही अन्धे कहे जाते हैं, जैसे अन्धा पुरुष सूर्यको नहीं देखसक्ता है, तैसे भेदवादी पुरुष भी सर्वत्र आत्माको नहीं देख सक्ता है । हे पिता ! तुम भेदबुद्धिको दूर करके सर्वत्र एक ही आत्माको देखो । पुत्रके उपदेश करके देवशर्मा भी आत्मज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ ९० ॥

हे चित्तवृत्ते ! एक और निर्मोही राजाका इतिहास तुमको सुनाते हैं:—

किसी नगरमें एक धर्मात्मा निर्मोही नाम करके राजा रहता था । तिस राजाका पुत्र एक दिन वनमें शिकार खेलनेको गया, वहांपर तिसको बडी प्यास लगी, तब वह वनमें एक ऋषिके आश्रमपर गया । ऋषिने तिसको जल पिलाकर पूछा, तुम किसके लडके हो ? उसने कहा मैं निर्मोही राजाका लडका हूँ । ऋषि तिसकी वार्ताको सुनकर कहने लगा, निर्मोही और राजा ये दो बातें एकमें कैसे हो सक्ती हैं ? जो निर्मोही होगा वह राजा नहीं होगा जो राजा होगा वह निर्मोही नहीं होगा । राजाके लडकेने ऋषिसे कहा, यदि आपको विश्वास न हो तो जाकर मालूम करलीजिये, याने परीक्षा करलीजिये । ऋषिने राजपुत्रसे कहा हमारे आनेतक तुम इसी हमारे आश्रमपर बैठो मैं जाकर परीक्षा करके आता हूँ । ऋषि जब राजभवनमें गये तब द्वारपर राजाकी लौंडी खडी थी उससे ऋषिने जाकर कहा ।

सवाल ऋषिका दोहा ।

तू सुन चेरी श्यामकी, बात सुनावों तोहिं ।
कुँवर विनास्यो सिंहने, आसन परयो मोहिं ॥ १ ॥

जवाब लौंडीका दोहा ।

ना मैं चेरी श्यामकी, नहिं कोइ मेरा श्याम ।
प्रारब्ध वश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥ २ ॥

ऋषि लडकेकी स्त्रीसे कहते हैं:—

दोहा ।

तू सुन चातुर सुन्दरी, अवला यौवनवान ।
देवीवाहन दलमल्यो, तुम्हरो श्रीभगवान ॥ ३ ॥

लडकेकी स्त्री कहती है:—

दोहा ।

तपिया पूरब जन्मकी, क्या जानत हैं लोक ।
मिले कर्मवश आन हम, अब विधि कीन वियोग ॥ ४ ॥

फिर ऋषिने कुँवरकी मातासे कहा:—

दोहा ।

रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना कियो, तिसी मृतकके काज ॥ ५ ॥

ऋषिसे रानी कहती है:—

दोहा ।

एक वृक्ष डालें घनी, पंछी बैठे आय ।
यह पाटी पीरी भई, उड उड चहुँ दिशि जाय ॥ ६ ॥

ऋषिने राजासे कहा:—

दोहा ।

राजा मुखतैं राम कहु, पल पल जात घडी ।
सुत खायो मृगराजने, मेरे पास खडी ॥ ७ ॥

ऋषिसे राजा कहते हैं:—

दोहा ।

तपिया तप क्यों छोडियो, इहाँ पलक नहिं सोग ।
वासा जगत् सरायका, सभी मुसाफिर लोग ॥ ८ ॥

जब कि ऋषिने सबके उत्तरोंको सुना तब ऋषिको विश्वास होगया जो ठीक राजा निर्मोही है, बल्कि राजाका घरभर निर्मोही है । ऋषिने आकर अपने आश्रमपर राजपुत्रसे कहा कि आपने सत्य कहा था । हमने परीक्षा करली, ठीक राजा निर्मोही है । विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! जो इस प्रकार निर्मोही है वही ज्ञानी है और वही जीवन्मुक्त है ॥ ५१ ॥

चित्तवृत्ति कहती है हे विवेकाश्रम ! आपने कहा है, कि सम्पूर्ण जगत्में एक ही चेतन आत्मा व्यापक है और वही आत्मा सम्पूर्ण शरीरमें भी व्यापक है। जब कि, एक ही आत्मा ऊंच नीच सर्व शरीरमें व्यापक है तब फिर एक जीवको सुख होनेसे सर्व जीवोंको सुख होना चाहिये, एकको दुःख होनेसे सर्व जीवोंको दुःख होना चाहिये, एकके मृत्यु होजानेसे सर्वकी मृत्यु हो जानी चाहिये, एकका जन्म होनेसे सर्वका जन्म होना चाहिये। विवेकाश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! जैसे एकही आकाश अनेक घटादिकोंमें व्यापक होकर स्थित है, एक घटके फूट जानेसे सब घट नहीं फूट जाते हैं, एक घटके उत्पन्न होनेसे सब घट उत्पन्न नहीं होजाते क्योंकि घटादिरूप उपाधियें सब भिन्न २ और फिर घटादिकोंकी उत्पत्ति नाशसे आकाशकी उत्पत्ति तथा नाश नहीं होता है। क्योंकि आकाश व्यापक है, उपाधियें परिच्छिन्न हैं। तैसे एक शरीरकी उत्पत्ति नाशसे भी आत्माकी उत्पत्ति नाश नहीं होता है। क्योंकि आत्मा व्यापक है निरवयव है; उपाधियें सर्व सावयव हैं और परिच्छिन्न हैं। जैसे किसी एक घटमें धूम या धूलि आदिकोंके भरजानेसे सर्व घटोंमें धूमादिक नहीं भर जाते हैं तैसे एक शरीरमें सुख या दुःख होनेसे सर्व शरीरोंमें नहीं होते हैं॥ ९२ ॥

और दृष्टांतको कहते हैं:—

एक शरीरके सम्पूर्ण हस्त पादादिकोंमें एक ही आत्मा नख शिखतक व्यापक है, परन्तु पादमें दुःख होनेसे हाथमें दुःख नहीं होता है। हाथमें सुख होनेसे पादमें सुख नहीं होता है। एक ही कालमें पादमें शीतलता और शिरमें उष्णता होनेसे सर्व शरीरमें उष्णता शीतलता नहीं होती है। आत्मा तो सम्पूर्ण शरीरके अवयवोंमें एक ही है. फिर सुख दुःखादिक क्यों नहीं बराबर ही एक कालमें होते हैं ? जैसे कि एक शरीर सम्पूर्ण अवयवोंमें एक आत्माके होने पर भी सुख दुःखादि बराबर सर्व अवयवोंमें नहीं होते हैं, तैसे ही ब्रह्मांड भरके शरीरोंमें एक आत्माके होनेसे भी सर्व शरीरोंमें सुख दुःख बराबर नहीं होते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण शरीर एकही विराटके अवयव हैं, विराटके शरीरमें आत्मा एकही है। हे चित्तवृत्ते ! एक आत्माके होनेमें कोई भी सन्देह नहीं है और नाना आत्माके माननेमें श्रुतियुक्तिका भी विरोध आता है।प्रथम श्रुतियोंके विरोधको दिखाते हैं:—

कैवल्योपनिषद्:—

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्त-
ममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ तमादिमध्यान्तविहीन-
मेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥ १ ॥

वह ब्रह्म अचिन्त्य है, अनन्तरूप है, कल्याणरूप है, शांतस्वरूप है, अमृत है, मायाका भी कारण है और आदि मध्य अन्तसे भी हीन है, विभु है, एक है, आनन्दरूप है, अद्भुत है ॥ १ ॥

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत् ॥ २ ॥

जो ब्रह्म सर्व प्राणियोंका आत्मा है, संपूर्ण विश्वका आधार है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है नित्य है सो तूही है और तू वही है ॥ २ ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्:—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१॥

एक ही चेतनदेव सम्पूर्ण भूतोंमें छिपाहुआ है, सर्वमें व्यापक है, सम्पूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका भी अध्यक्ष याने ज्ञाता है, सम्पूर्ण भूतोंके निवासका स्थान भी है, साक्षी है, चेतन है, द्वैतसे रहित है, निर्गुण है ॥ १ ॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥ २ ॥

न यह आत्मा स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है किन्तु जिस २ शरीरको धारण करता है तिसी २ के साथ जुड जाता है ॥ २ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक है और आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे रहित है सर्वका स्वामी है, सर्वका प्रेरक है और सर्वका आश्रय भी है ॥ ३ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषम् महान्तम् ॥ ४ ॥

जिस चेतनके न हाथ हैं न पाद हैं, फिर भी बडे वेगसे चलता है और ग्रहण करता है । विनाही नेत्रोंके देखता है, विनाही कानोंके सुनता है और जानने योग्य पदार्थोंको जानता है । तिसको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है, तिसको आदिपुरुष और सबसे महान् कहते हैं ॥ ४ ॥

इत्यादि अनेक श्रुति वाक्य जीव ब्रह्मके अभेदको और चेतनकी एकताको कथन करते हैं और युक्तियोंसे भी एक ही चेतन साबित होता है ॥

चित्तवृत्ति कहती है—हे विवेकाश्रम ! जीव ईश्वरके स्वरूपको भिन्न २ करके तू मेरे प्रति कह, फिर उनकी एकताको कहो । विवेकाश्रम कहते हैं—हे चित्तवृत्ते ! जीव ईश्वरके स्वरूपको मैं आपको मतभेदसे दिखाताहूँ ! प्रकटार्थकारका यह मत है कि, अनादि अनिर्वचनीय जो माया है, तिस मायामें जो चेतनका प्रतिविंब है, तिस प्रतिविंबका नाम तो ईश्वर है और तिस मायाका आवरण विक्षेप शक्तिवाला जो अविद्यानामवाला भाग है तिस अविद्याके जो अन्तःकरणरूपी अनेक प्रदेश हैं उनमें जो चेतनका प्रतिविंब है, उसका नाम जीव है ।

प्रश्न—वह माया चेतनसे भिन्न है या अभिन्न है ? ।

उत्तर--वह माया चेतनसे भिन्न नहीं है, क्योंकि भिन्न माननेमें "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होगा और अभिन्न भी नहीं कहसक्ते हैं । क्योंकि जड चेतनका अभेद कदापि नहीं होसक्ता है और माया चेतनका भेदाऽभेद भी नहीं कह सक्ते हैं अर्थात् चेतनसे माया भिन्न भी है और अभिन्न भी है, इसमें कोई दृष्टांत नहीं मिलता है और जड चेतनका भेदाऽभेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसक्ता है । क्योंकि उभय विरोधी धर्म एकमें नहीं रह सक्ते हैं, इस लिये भेदाऽभेद भी नहीं बनता है । फिर यदि मायाको सत्य माना

जाय तब अद्वैत श्रुतिसे विरोध आता है। यदि असत्य माना जाय तब मायाको जड जगत्की कारणता नहीं बनती है। क्योंकि असत्से जगत्की उत्पत्ति नहीं होसकती है। असत् नाम अभावका है, यदि अभावसे उत्पत्ति मानी जायगी तब घटरूपी कार्यके लिये मृत्तिकाकी कुछ भी जरूरत नहीं होगी, सर्वत्रही सब वस्तुओंका अभाव विद्यमान है, सर्वत्र सब पदार्थोंकी उत्पत्ति होनी चाहिये, ऐसा तो नहीं देखते हैं, इस लिये अभावसे भाव पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये माया असत्यरूप भी नहीं है और सत्असत् उभयरूप भी माया नहीं है। क्योंकि विरोधी धर्म दो एकमें रह सक्ते हैं और माया सावयव या निरवयव भी नहीं है। यदि मायाको सावयव माना जायगा तब तिसका कोई दूसरा कारण मानना पडेगा क्योंकि जो सावयव पदार्थ होता है वह जरूर किसी कारणसे उत्पन्न होता है। इसलिये तिसको सावयव भी नहीं मान सक्ते हैं, कारण अनवस्था आदिक दोष आवेंगे और मायाको निरवयव भी नहीं मान सक्ते हैं; क्योंकि निरवयव मायासे सावयव जगत्की उत्पत्ति भी नहीं होसक्ती है, और सावयव निरवयव दोनों रूप एकमें रह भी नहीं सक्ते हैं। जो सावयव होगा, वह कदापि निरवयव नहीं होसक्ता है। जो निरवयव होगा वह कदापि सावयव नहीं होसक्ता है। एक तो दोनों परस्पर विरोधी हैं, दूसरा इसमें कोई दृष्टांत भी नहीं मिलता है इस वास्ते मायाका स्वरूप अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीयका अर्थ क्या है? जिसका कुछ भी निर्वचन नहीं होसक्ता प्रथम तो मायाके कार्यका ही कोई भी निर्वचन नहीं कर सक्ता है। देखो अतिछोटेसे वटके बीजमें इतना बडा वटका वृक्ष रहता है और भावरूप करकेही रहता है, अभावरूप करके नहीं रहता। क्योंकि अभावकी उत्पत्ति नहीं होती है फिर हम पूछते हैं इतने छोटेसे बीजमें अनेक शाखा और पत्तोंके सहित इतना बडा वृक्ष किसतरहसे रह सक्ता है, इसको आप किसी तरहसे भी नहीं बतला सक्ते हैं। फिर हरएक बीजमें कारणरूप करके कार्य विद्यमान है, कार्योंमें अनेक प्रकारकी रचना हमको दिखाई पडती है कारणमें वह नहीं दिखाती है और सूक्ष्मरूप तिसमें तिसकी सब रचना विद्यमान है। तिस छोटेसे बीजमें इतनी बडी रचना क्योंकर रह सक्ती है?

इसका निर्वचन भी तुमसे कुछ नहीं बनेगा, तब अर्थसे ही कार्य भी अनिर्वचनीय सिद्ध होगा। जिसका कार्य्य अनिर्वचनीय है, तिसका कारण तो अर्थसेही अनिर्वचनीय सिद्ध हुआ और साइन्सवालोंने पैंसष्ट तत्त्व माने हैं, जल और अग्निको इन्होंने स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना है, किन्तु और तत्त्वोंके संयोगसे इनकी उत्पत्ति उन्होंने मानी है। दो प्रकारकी भिन्न २ वायुके मिलनेसे जलकी उत्पत्ति इन्होंने मानी है। हम पूछते हैं उन दो प्रकारके वायुओंमें प्रथम जल था या नहीं था। यदि कहो था तब पृथक् तत्त्व जल साबित होगया। यदि कहो उन दो प्रकारके वायुओंमें जल नहीं था तब उनके संयोगसे भी जल उत्पन्न नहीं होसक्ताहै। क्योंकि अभावसे भावकी उत्पत्ति कदापि नहीं होसक्ती है। और जलका निर्वचन भी कुछ न हुआ इसी प्रकार एक एक वृक्षके पत्तेका निर्वचन करोगे तब सैकडों बरसों तक भी नहीं होगा और न पूर्व हुआ है। जिस मायाके अनन्त कार्योंमेंसे एक कार्यका भी निर्वचन नहीं होसक्ता है, उस कारणरूप मायाका कौन निर्वचन करसक्ता है? फिर जब पुरुष सो जाता है, तब इसको अपने भीतर बडे २ देश, पर्वत, नदियें हाथी, घोडे आदिक दिखाते हैं और जिस नाडीमें मनके जानेसे स्वप्न आताहै वह नाडी बालसे भी महीन है, उसमें सुईके नोककी भी जगह नहीं है और हाथी घोडे आदिकोंका कोई कारण भी बीजादिक वहांपर नहीं है और जाग्रत् होनेपर सब हाथी घोडे आदिक लय भी होजाते हैं। अब इसका निर्वचन कौन करसक्ता है जो कहांसे वह सब पैदा होते हैं और कहांपर लय होजातेहैं। जैसे स्वप्नके पदार्थोंका और उनके कारणका कुछ निर्वचन नहीं हो सक्ता है, तैसे माया और मायाके कार्यका भी कुछ निर्वचन नहीं होसक्ता है। तब दोनों ही अनिर्वचनीय साबित हुए, उस अनिर्वचनीय मायामें जो कि चेतनका प्रतिबिंब है, उसका नाम तो ईश्वर है और मायामें आवरण विक्षेप शक्तिवाले जो कि परिच्छिन्न अनन्त प्रदेश हैं उन्हीका नाम अविद्या है। उन प्रदेशोंमें जो कि चेतनका प्रतिबिंब है उसका नाम जीव है, प्रदेशोंके अनन्त होनेसे जीव भी अनन्त हैं। इस मतमें एकही अनिर्वचनीय प्रकृतिमें.

प्रदेश प्रदेशिरूपकी कल्पना करके जीव और ईश्वरको प्रतिबिंबरूप करके माना है ॥ १ ॥

अब तत्त्वविवेक करके मतको दिखलाते हैं:-

त्रिगुणात्मिका एक मूलप्रकृति है। तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम ही मूलप्रकृति है। वह मूलप्रकृति आप ही माया और अविद्या रूपोंवाली हो जाती है। और एकही चेतनको जीव ईश्वर दो रूपोंवाला भी कर देती है। शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान वही प्रकृति माया कहलाती है। और मलिन सत्त्वप्रधान वही प्रकृति अविद्या कहलाती है तिस मायामें जो कि चेतनका प्रतिबिंब पडता है तिसका नाम ईश्वर है और अविद्यामें जो प्रतिबिंव है तिसका नाम जीव है "जीवेशावाभासेन करोति माया च अविद्या च स्वयमेव भवति"। वह मूल प्रकृति जीव ईश्वरको अपनेमें आभास करके कर देती है और आपही माया और अविद्यारूप भी हो जाती है यही श्रुति जीवेश्वरकी सिद्धिमें प्रमाण है और एक ही प्रकृतिमें सत्त्व गुणकी शुद्धि अशुद्धिसे माया अविद्याका भेद भी कल्पना किया है ॥ २ ॥

अब अपरमतसे कहते हैं:—

एक ही मूलप्रकृति विक्षेप प्रधानतासे माया और आवरण शक्ति प्रधानतासे अविद्या कही जाती है। माया ईश्वरकी उपाधि है और अविद्या जीवकी उपाधि है और विंबरूप साधारण चेतनके वह आश्रित भी है, तथापि 'अज्ञोहं' ऐसा जीवको ही अनुभव होता है। ईश्वरको नहीं होता। क्योंकि जीवकी उपाधिमें ही आवरणविक्षेप शक्ति है ईश्वरकी उपाधिमें वह नहीं है इसलिये ईश्वरको 'अज्ञोहम्' ऐसा नहीं होता है। इस मतमें आवरण विक्षेप शक्तिका भेद कल्पना करके जीव ईश्वरका भेद माना है॥ ३ ॥

अब संक्षेपसे शारीरककारके मतको दिखाते हैं:—

वह कहता है "कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" कार्योपाधिवाला जीव है कारणोपाधिवाला ईश्वर है। इस श्रुतिके अनुसार अविद्यामें प्रतिबिंबका

नाम ईश्वर है और अविद्याका कार्य्य जो अन्तःकरण तिसमें प्रतिविंबका नाम जीव है और जहांपर विंब एक हो, वहांपर उपाधिके भेदसे विना प्रतिविंबका भेद नहीं बनता है । इसलिये ईश्वरकी उपाधि अविद्या भिन्न है और जीवकी उपाधि अन्तःकरण भिन्न है । दोनों उपाधियोंके भेद होनेसे जीव ईश्वरका भेद है, अविद्या एक है, इसलिये ईश्वर भी एक है । अन्तःकरण अनन्त हैं जीव भी अनन्त हैं, अविद्याका सम्बन्ध ईश्वरके साथ हैं, अन्तःकरणका संवन्ध जीवके साथ है । जैसे घटकरके आकाशका अवच्छेद मानते हैं, तैसे यदि अन्तःकरण करके चेतनका अवच्छेद माना जावैगा तव दोष आवैगा सो दिखाते हैं । इस लोकमें ब्राह्मणजाति ब्राह्मणादि शरीरमें गत जो अन्तःकरण, तदवच्छिन्न जो चेतन प्रदेश है, सो तो कर्मोंका कर्ता होगा और परलोकमें देवादिशरीरमें जो अन्तःकरण तदवच्छिन्न चेतन प्रदेश भोक्ता होगा जो कि इस लोकमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन प्रदेश कर्मोंका कर्ता था वह तो भोक्ता नहीं होगा, क्योंकि वह परलोकमें देवादिशरीरमें नहीं है और जो देवादिशरीरमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन प्रदेश है, वह इस लोकमें नहीं है, वह कर्ता न हुआ तब अन्य करके किये हुए कर्मोंका फल अन्य ही भोगेगा । यही अवच्छेदवादमें दोष आता है, इसी हेतुसे अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन जीव नहीं होसक्ता है, किन्तु अन्तःकरणमें जो कि चेतनका प्रतिबिम्ब है वह जीव होसक्ता है । घटरूप उपाधिके गमनागमन होनेपर भी जैसे तिस घटरूप उपाधिमें एकही सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सर्वत्र उसी घटमें पडता है, प्रतिविंबका भेद नहीं होता है, तैसे अन्तःकरणरूपी उपाधिके गमनाऽगमन होनेपर भी एकही चेतनका प्रतिबिम्ब तिसमें पडता है । तव जो कर्ता होगा वही भोक्ता भी होगा, कोई भी दोष नहीं आवेगा ॥ ४॥

अब अवच्छेदवादीके मतको दिखाते हैं:—

अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनका नाम जीव है, अन्तःकरणानवच्छिन्न चेतनका नाम ईश्वर है, इस मतमें कोई भी दोष नहीं आता है, किन्तु प्रतिविम्बवादमें ही दोष आता है सो दिखाते हैं । जैसे जलसे बाहर आकाशमें स्थित जो सूर्य्य है तिसीका प्रतिविम्ब जलमें पडता है । तैसे उपाधियोंसे बाहर स्थित चेतनका

भी प्रतिबिम्ब उपाधियोंमें मानना पडैगा तब ब्रह्मांडसे बाहर कहीं स्थित चेतन सिद्ध होगा । ब्रह्मांडके अन्तर्गत नहीं सिद्ध होगा । तब फिर चेतन भी परिच्छिन्न होजायगा परिच्छिन्न होनेसे व्यापक नहीं सिद्ध होगा, किंतु विनाशी सिद्ध होगा । एक तो प्रतिबिम्बवादमें यह दोष आवेगा, दूसरा व्यापक चेतन निरवयव निराकारका प्रतिबिंब कहना भी नहीं बनता है, क्योंकि ऐसा देखनेमें आता है कि जलसे बहिर्गत मेघाकाशका जलमें प्रतिबिम्ब पडता है, जलगत आकाशका जलमें प्रतिबिंब नहीं पडता है । तैसेही ब्रह्मांडके बहिर्गत चेतनका ही प्रतिबिंब भी मानना होगा । ब्रह्मांडके अन्तर्गत चेतनका तो नहीं मानना होगा, तब फिर 'विज्ञाने तिष्ठन्' जो विज्ञानके अन्तरस्थित होकर प्रेरणा करता है इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध भी जरूर आवैगा और ईश्वर भी ब्रह्मांडसे बाहिर सिद्ध होगा इसी हेतुसे प्रतिबिंबवाद असंगत है । यदि उपाधिके अन्तर्गतका भी प्रतिबिम्ब माना जावैगा तब जसे जलसे बहिर्गत मुखका जलमें प्रतिबिम्ब पडता है, तैसे जलके अन्तर्गत मुखका भी जलमें प्रतिबिम्ब पडना चाहिये सो तो देखनेमें नहीं आता है । और जैसे जलसे बहिर्गत मुखका प्रतिबिम्ब पडता है,तैसे अन्तःकरणसे बहिर्गत चेतनका भी प्रतिबिंब अन्तःकरणमें कहना होगा । तब भी पूर्वोक्त श्रुतिसे विरोध बनाही रहेगा । और जो वादीने अवच्छेदवादमें कर्ता भिन्न भोक्ता भिन्न होजानेका दोष दिया है वह दोष प्रतिबिम्बवादमें तुल्यही लगता है। तथाहि यदि सम्पूर्ण अन्तःकरणोंमें ब्रह्मांडसे बहिर्गत अर्थात् व्यवहित चेतनका प्रतिबिंब माना जावै तब तो इस लोक परलोकमें प्रतिबिंबका भेद सिद्ध नहीं होगा । तथापि एक तो ब्रह्मांडके बहिर्गत समग्र चेतनका अन्तःकरणमें प्रतिबिम्ब किसी प्रकारसे भी नहीं पडसक्ता है और न तिसके एकही देशका प्रतिबिम्ब पडसक्ताहै । क्योंकि ब्रह्मांडसे बहिर्गत समग्र चेतनके साथ या तिसके एक देशके साथ अन्तःकरणकी सन्निधि नहीं है और बिना सन्निधिके प्रतिबिंब पड नहीं सक्ताहै।जैसे ब्रह्मांडके बहिर्गत आकाशका जलमें प्रतिबिंब नहीं पडसक्ताहै,तैसे ब्रह्मांडसे बहिर्गत चेतनका भी प्रतिबिंब नहीं पडसक्ता है।यदि ब्रह्मांडके अन्तर्गत अन्तःकरण सन्निहित चेतनका प्रतिबिंब अन्तःकरणमें मानोगे तब भी ब्रह्मांडभरके अन्तर्गत चेतनका प्रतिबिंब अन्तःकरणमें नहीं मान-

सकोगे। क्योंकि ब्रह्मांडभरके चेतनकी अंतःकरणके साथ सन्निधि नहीं है, किन्तु ब्रह्मांडके अन्तर्गत जो चेतन तिसीके किसी प्रदेशके साथ अंतःकरणकी सन्निधि होगी उसी चेतनके प्रदेशका प्रतिबिंब भी तुमको मानना पडैगा। तब फिर पूर्ववाला दोष लगाही रहेगा। अंतःकरणके गमनाऽऽगमन करनेसे बिंबके भेदसे प्रतिबिंबका भेद भी अवश्य ही होगा, तब फिर कृतहानि अकृतकी प्राप्तिरूप दोष होगा। यदि प्रतिबिंबरूप जीवकी अन्तःकरणरूप उपाधिका त्याग करके अविद्याको जीवकी उपाधि मानोगे तब अविद्याका गमन बनैगा नहीं। तब इस लोक परलोकमें प्रतिबिंबका भेद भी सिद्ध नहीं होगा और प्रतिबिंबके भेदके न सिद्ध होनेसे पूर्वोक्त दोष भी नहीं आवैगा। सो अवच्छेदवादमें हम भी अविद्या अवच्छिन्न चेतनको ही जीव मान लेवेंगे। हमारे मतमें भी अविद्याके गमनागमनके अभाव होनेसे चेतनका भेद नही होगा, चेतनके भेदका अभाव होनेसे पूर्वोक्त दोष भी नहीं आवैगा। इन्ही हेतुओंसे प्रतिबिंबका निषेध करके अवच्छेदवादीने अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनको ही जीव माना है और अन्तःकरण अनवच्छिन्न चेतनको तिसने ईश्वर माना है ॥ ९ ॥

अब औरके मतको दिखाते हैं:—

अन्य कोई कहता है प्रतिबिंबवाद और अवच्छेदवादमें श्रुतिका विरोध दूर नहीं होता है। श्रुति कहती है जो जीवात्माके अन्तःस्थित होकर जीवात्माको प्रेरणा करता है सोई ईश्वर है। सो जीवात्माके अन्तःस्थित होना ही प्रथम ईश्वरके नहीं बनता है सो दिखाते हैं। अवच्छेदवादमें अंतःकरणके भीतर जो चेतन आगया है, उसीको जीव माना है और अंतःकरणके बाहर जो चेतन है उसको ईश्वर माना है। अब इस मतमें अंतःकरणके अंतर ईश्वर है नहीं तब जीवको प्रेरणा कैसे करेगा और तिसके कर्मोंको कैसे जानेगा। यदि कहो वह ईश्वर चेतन व्यापक है तिसके भीतर भी रहेगा बाहर भी रहेगा सो नहीं बनता। निरवयव निराकार दो पदार्थ, एक स्थानमें नहीं रह सक्ते हैं जो रहेंगे तब वह उपाधि करके परिच्छिन्न होजायेंगे। परिच्छिन्न होनेसे वह जीव ही होगा सो परिच्छेदवाला जीव तो तुमने पहले ही मान लिया है। दो जीव

एक अन्त:करणमें तुमने भी माने नहीं हैं और न जीव ईश्वर दोकी उपाधि अन्त:करण होसक्ता है, इसी युक्तिसे श्रुतिका विरोध बनाही रहेगा फिर यही दोष प्रतिबिंबवादमें भी होगा । पूर्वोक्त मतमें अविद्यामें प्रतिबिंबको ईश्वर माना है और अन्त:करणमें प्रतिबिंबको जीव माना है। वहां अविद्यामें जो प्रतिबिंब है, जब अन्त:करणमें नहीं है और प्रतिबिंबका प्रतिबिंब बनता नहीं, तब प्रतिबिंबवादमें भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर न रहा तिस मतमें भी दोष बराबर ही लगा रहा । और प्रकटार्थकरके मतमें भी यही दोष लगाही रहेगा । क्योंकि उसने भी मायामें प्रतिबिंबको ईश्वर माना है और मायाके प्रदेशोंमें चेतनके प्रतिबिंबको जीव माना है । अब इस मतमें भी मायामें जो प्रतिबिंब वह मायाके प्रदेशोंमें नहीं है और जो आवरण विक्षेप शक्तिवाले प्रदेशोंमें प्रतिबिंब है मायामें वह नहीं है, तब भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर साबित न हुआ और दो प्रतिबिंब एक उपाधिमें नहीं रह सक्ते हैं । यदि कहो जलमें सूर्य और आकाश तथा इतर वृक्षादिकोंका प्रतिबिंब एक ही जलरूप उपाधिमें देखते हैं सो दृष्टांत यहांपर नहीं घटता है क्योंकि सूर्य्य और वृक्षादि सब भिन्न भिन्न सावयव पदार्थ हैं उनका प्रतिबिम्ब जलरूप उपाधिमें पड भी सक्ता है । परन्तु एकही आकाशके दो प्रतिबिंब एकही घटमें जैसे नहीं पडसक्ते हैं, तसे एकही चेतनके एकही उपाधिमें दो प्रतिबिंब नहीं पडसक्ते हैं । तब जीवके अन्तर्गत ईश्वर भी सिद्ध न हुआ और पूर्वोक्त दोष लगाही रहा । और जिसके मतमें एकही प्रकृतिके माया अविद्या दो भेद मानकर जीव ईश्वरका भेद सिद्ध भया उस मतमें भी मायामें जो प्रतिबिंब है वह अविद्यामें नहीं है । अविद्यामें भिन्न है, मायामें भिन्न है। इस मतमें भी जीवके अन्तर्गत ईश्वर सिद्ध नहीं होता है; श्रुतिविरोध इस मतमें भी हट नहीं सक्ता है । सांख्यमतवालोंने ईश्वरको नहीं माना है किन्तु जीवको ही चेतनरूप करके व्यापक माना है अर्थात् इनके मतमें ब्रह्माण्ड भरके जीव व्यापक हैं और चेतनरूप हैं, असंग हैं निराकार निरवयव हैं, जीव कर्ता नहीं भोक्ता है कर्त्री प्रकृति है । इनके मतमें एक तो यह दोष पडता है जो जड प्रकृतिको कर्तृत्वपना नहीं बनता है । यदि जडको कर्ता माना जवैगा तब मृत्तिका आप ही घटको बनालेगी घटके बनानेके लिये कुलालकी आवश्य-

कता नहीं होगी। दूसरा निरवयव निराकार अनेक विभु एक देशमें रह नहीं सक्ते हैं। इन दोनोंमें कोई भी दृष्टांत नहीं मिलता है। और नैयायिक जीव और ईश्वर दोनोंको विभु और जड मानता है, चेतनता उनका गुण मानता है। इसके मतमें भी एक तो वही दोष आवैगा जो बहुतसे विभु एक देशमें नहीं रह सक्ते हैं। यदि मानेंगे तब कर्मोंका संकर होजायगा और जीवोंके कर्म ईश्वरमें भी जारहेंगे। क्योंकि दोनों निराकार व्यापक हैं। भेदक तो कोई ईश्वर जीवके अन्तरमें नहीं है। दोनोंको निराकार होनेसे दोनों एक ही होजायँगे तब जीव ईश्वरकी कल्पना भी इनकी मिथ्या होजायगी। फिर जड निराकार हो भी नहीं सक्ता है। यदि मानैंगे तब शून्यवाद ही सिद्ध होगा और जडका धर्म चेतनता भी नहीं होसक्ती है। इसमें भी कोई दृष्टांत नहीं मिलता है इसलिये इनका मत श्रुतियुक्तिसे विरुद्ध होनेसे असंगत है। वैष्णव और आचारी लोक जीवात्माको निरवयव और अणु परिमाणवाला मानते हैं और चेतन भी मानते हैं। चेतन निरवयव विना उपाधिके अणु परिमाणवाला नहीं होसक्ता है और फिर केवल चेतनमें चेतन रह भी नहीं सक्ता है। इस मतमें भी ईश्वरको प्रेरणा करनी जीवको नहीं बनती है। इसी तरह और भी मतोंवालोंने अपने ईश्वर भिन्न २ माने हैं और फिर भिन्न उनके लोक माने हैं। उन सबके मत तो सर्वथा श्रुति युक्ति विरुद्ध हो त्यागने योग्य हैं। पूर्व जो मत दिखाये हैं उनको यदि सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तब उन सब मतोंमें जीव ईश्वरका भेद सिद्ध नहीं होता है। इसीसे यह वार्ता भी साबित होती है जो भेद कल्पित है, वास्तवसे अभेद ही है। अब अपने मतको दिखाते हैं। न तो प्रतिबिंबरूप जीव है और न अवच्छेदरूपही जीव है, किंतु जैसे कर्णको सूतपुत्र भ्रम हुआ था जो मैं सूतपुत्र हूँ और अपनेको सूतपुत्र करके ही मानता था और वास्तवसे वह सूतपुत्र नहीं था, तैसे अवच्छेद और प्रतिबिंब भावसे रहित ब्रह्मको अनादि अविद्याके सम्बन्धसे अपनेमें जीवत्वका भ्रम हुआ है और अपनी अविद्या करके जीवभावको प्राप्त जो ब्रह्म है, उसने सर्व प्रपंचकी कल्पना की है अर्थात् वही ब्रह्म ही सर्व प्रपंचकी कल्पना करनेवाला है। जैसे और संपूर्ण जगत्की तिसने कल्पना की है, तैसे सर्वज्ञत्वादि धर्मोंवाले ईश्वरकी कल्पना भी

तिसी जीवने ही की है अर्थात् ईश्वर भी जीव करके ही कल्पित है जैसे स्वप्नमें जीव सर्वज्ञत्वादिक गुणों करके विशिष्ट ईश्वरकी कल्पना करके तिसकी उपासनाको कर्ता है और कल्पित उपासनाके कल्पित फलको भी प्राप्त होता है, तैसे जाग्रत्में भी जीव ईश्वरकी कल्पना करके तिसकी उपासना करके कल्पित फलको प्राप्त होता है। वास्तवसे जीवत्व ईश्वरत्व दोनों धर्म चेतनमें कल्पित हैं। एक चेतनमें धर्मही सत्य है ॥ ६ ॥

अब एक जीववाद और अनेक जीववादोंको दिखाते हैं:—

एक जीववादी कहता है एक ही शरीर सजीव है, बाकीके सब शरीर स्वप्नके शरीरोंकी तरह निर्जीव हैं; इसलिये जीव एकही है नाना जीव नहीं हैं।

प्रश्न—जैसे एक शरीरमें हिताहित प्राप्ति परिहारार्थ चेष्टा प्रतीत होती है तैसे संपूर्ण शरीरोंमें भी हिताऽहित प्राप्ति परिहारार्थ चेष्टा प्रतीत होती है; इसवास्ते ऐसा कथन नहीं बनता ह जो एक ही शरीर सजीव है और बाकीके शरीर सब निर्जीव हैं।

उत्तर--जैसे स्वप्नकालमें स्वप्नके द्रष्टाकी दृष्टिसे स्वप्नके कल्पेहुए जीव सब चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवसे वह सब निर्जीव हैं तैसे जाग्रत्के द्रष्टा करके कल्पेहुए जीवभी सब चेष्टावाले प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवसे वह सब निर्जीव हैं। जसे स्वप्नका कल्पक निद्रा है तैसे जाग्रत्का कल्पक अज्ञान है। जैसे जबतक निद्रा नाश नहीं होती है तबतक स्वप्नका सर्व व्यवहार होता है तैसे जबतक आत्मज्ञान करके अज्ञानका नाश नहीं होता है, तबतक जाग्रत्का भी सर्व व्यवहार होता है। जैसे स्वप्नसे जागा हुआ पुरुष स्वप्नरूप भ्रांतिसिद्ध अपर पुरुषकी मुक्तिको दूसरेके प्रति कथन करता है, तैसे जीवकी भ्रांतिसिद्ध शुकादिकोंकी मुक्तिको तिसके प्रति शास्त्रबोधन करता है, जैसे स्वप्नमें स्वप्नका द्रष्टा गुरु और ईश्वरकी कल्पना करके उनकी उपासनाको करता है और उनसे विद्या आदिक फलको प्राप्त होता है तैसे जाग्रत्का द्रष्टा भी जाग्रत्में गुरु ईश्वरकी कल्पनाको करके उनसे आत्मविद्याको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

अब एक जीववादमें दूसरेके मतको दिखाते हैं:—

पूर्व जो एक जीववादीने कहा है, एक शरीर सजीव है अपर शरीर सब निर्जीव हैं ऐसा तिसका कथन ठीक नहीं है क्योंकि वह एक जीव एकही शरीरमें रहता है और शरीरोंमें नहीं रहता है। इस अर्थको सिद्ध करनेवाली कोई भी प्रवल युक्ति नहीं मिलती है और श्रुतियोंमें जीवसे भिन्न ईश्वरको सिद्ध किया है और तिसी ईश्वरको ही जगत्का कर्ता भी कहा है जीवको जगत्का कर्ता नहीं कहा है। किन्तु ब्रह्मका प्रतिनिम्बरूप हिरण्यगर्भ ही मुख्य एक जीव है और विम्बरूप ब्रह्मको ईश्वर कहा है, सो जीवसे भिन्न करके माना है, वही हिरण्यगर्भ भौतिक प्रपञ्चका कर्ता माना है उसीको कारणोपाधि भी कहा है। तिसी हिरण्यगर्भ मुख्य एक जीवके अपर जीव सव प्रतिविम्व रूप भी हैं और जैसे पटपर लिखेहुए चित्रमें मनुष्योंके जो शरीर हैं,तिनपर दिये हुए जो पटाभास हैं उनके समान यह सब जीव भी जीवाभास रूप हैं और वह सब जीवाभास रूपही संसारी जीव हैं। जैसे हिरण्यगर्भका शरीर मुख्य जीव होनेसे सजीव है, तैसे अपर शरीर भी जीवाभास होनेसे सजीव हैं ॥ २ ॥

तीसरे एक जीववादीके मतको दिखाते हैं:—

पूर्व मतमें कहा है, कि, बिम्बरूप ईश्वर है, तिसका प्रतिविम्वरूप हिरण्यगर्भ ही एक जीव है, अपर जीव सब तिसके प्रतिविम्ब रूप हैं। प्रथम तो प्रतिबिम्बका प्रतिबिम्ब नहीं होसक्ता है, दूसरा हिरण्यगर्भका कल्प २ में भेद है, इससे यह वार्ता नहीं सिद्ध होती है जो किस हिरण्यगर्भका शरीर सजीव है और वही मुख्य जीव है और इसमें कोई निश्चित प्रमाण भी नहीं मिलता है। जो हिरण्यगर्भका शरीर मुख्य जीवसे सजीव है और अपर शरीर जीवाभासरूप जीवाभासोंसे सब सजीव हैं ये क्लिष्ट कल्पना है, किन्तु अविद्यामें जो कि चेतनब्रह्मका प्रतिविम्ब है सोई जीव है। अविद्याके एक होनेसे वह जीव भी एक ही है वह एकही जीव भोगके लिये संपूर्ण शरीरोंको आश्रयण करता है, तिसी एक एक जीवके प्रतिविम्बरूप ही अपर सब जीव हैं। उन्हीं प्रतिबिंबाभासरूप जीवोंसे अपर शरीर सब जीवाभासरूप हैं और एक जीवात्माको मुख्य असु-

स्वरूप करके जीवपनेकी कल्पना करनी असंगत है। जैसे देवदत्तको अपने एकही शरीरके अवयवरूपी शिरमें सुख भान होता है और पादमें दुःख भान होता है, तैसे एक ही जीवको सर्वशरीरोंमें अंगीकार करनेसे देवदत्तके शरीरमें हमको सुख है यज्ञदत्तके शरीरमें हमको दुःख है इस प्रकार सर्व शरीरोंमें तिस एकही जीवको सुख दुःखका अनुभव होना चाहिये किन्तु होता नहीं है। तथापि शरीरका भेद सुख दुःखके अनुसन्धानका साधक है। जैसे प्रथम शरीरमें और उत्तर शरीरमें जीव एक है, तब भी प्रथम शरीरका याने पूर्व जन्मवाले शरीरके सुख दुःखका अनुसन्धान होता नहीं तिसके अनुसन्धानका साधक शरीरका भेद है, तैसे ही सब शरीरोंमें जो सुख दुःखका अनुसन्धान है, तिसका साधक भी शरीरका भेद है।

इस मतमें अनेक शरीरोंमें एक ही जीव अंगीकार किया है:—

एक जीववादमें तीन मतोंको दिखादिया है, अब अनेक जीववादमें मतभेदको दिखाते हैं:—

अनेक जीववादके प्रथम मतको दिखाते हैं:—

तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् ॥ १ ॥

देवतोंमेंसे जिस २ ने ब्रह्मको जाना सो २ ब्रह्मरूप ही होगया। इत्यादि श्रुतियोंने जीवके भेदसे बद्ध और मुक्तकी व्यवस्था कही है। सो इस रीतिसे एकजीववादमें बद्ध मुक्तकी व्यवस्था बनती नहीं है; क्योंकि श्रुति कहती है देवतोंमेंसे जिसने ब्रह्मका साक्षात्कार किया है वही ब्रह्मरूप हुआ है व जिसने नहीं किया वह ब्रह्मरूप नहीं हुआ। इस श्रुतिने ज्ञानीको मोक्ष और अज्ञानीको बंध कहा है। यदि एकही जीव माना जावैगा तब यह बंधमोक्षकी व्यवस्था नहीं बनेगी। इस लिये अनेक जीववाद मानना चाहिये। जिस हेतुसे अन्तःकरण अनेक हैं इसी हेतुसे अन्तःकरण उपाधिवाले जीव भी अनेक हैं और अन्तःकरणोंका उपादान कारण जो मूल अज्ञान है वह एक है। वह अज्ञान शुद्ध ब्रह्मके ही आश्रित है और तिसको विषय करता है। तिस अज्ञानकी निवृत्तिका नाम ही मोक्ष है और वह मूल अज्ञान सांश है, अर्थात् अंशोंवाला

है निरंश नहीं है। और फिर वह अज्ञान अनिर्वचनीय है तिसके अंश भी अनिर्वचनीय हैं। अन्तःकरणरूपी तिस अज्ञानके अंश हैं। जिस अन्तःकरण-रूपी अज्ञानके अंशमें ज्ञान उत्पन्न होता है उसी अंशकी निवृत्ति होती है, इतर अंशोंकी नहीं होती है ॥ १ ॥

अनेकजीववादमें अब दूसरे मतको दिखाते हैं:-

जीव चेतनका जो कि, अज्ञानसे संबन्ध है सोई बंध है और अज्ञानके सम्बन्धके नाशका नाम ही मुक्ति है। अज्ञानकी निवृत्तिका नाम मुक्ति नहीं है। केवल अज्ञानके सम्बन्धाभाव मात्रसे ही बन्धकी निवृत्ति होसक्ती है। यदि ऐसा नहीं मानोगे तब मूल अज्ञानका विरोधि जो ज्ञान तिसके उदय होनेसे, जैसे अग्निके सम्बन्धसे तूलका पिंड समग्र जलजाता है तैसे ज्ञानके सम्बन्धसे समग्र अज्ञान भी भस्म होजावैगा तब फिर बंध मोक्षकी व्यवस्था भी नहीं बनैगी। इन पूर्वोक्त युक्तियोंसे जीव नहीं सिद्ध होते हैं, जीव एक नहीं है॥२॥

अनेकजीववादमें अब तीसरे मतको दिखाते हैं:-

और कोई कहता है "अहमज्ञः ब्रह्म न जानामि" मैं अज्ञ हूँ ब्रह्मको मैं नहीं जानता हूँ। इस अनुभवसे यह सिद्ध होता है कि, जीव ही अज्ञानका आश्रय है, विषय नहीं है। और शुद्ध ब्रह्म अज्ञानका विषय है, आश्रय नहीं है, और अज्ञानके अंशरूप अन्तःकरण अनंत हैं, इसलिये तिनमें प्रतिबिम्बरूप जीव भी अनेक हैं। जैसे एक ही जाति अनेक व्यक्तियोंमें रहती है, तैसे एक ही अज्ञान अनेक जीवोंमें रहता है। जिस अन्तःकरणमें ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानकरके तिसी अन्तःकरणकी निवृत्ति होती है। अन्तःकरणकी निवृत्ति होने-पर प्रतिबिंबकी भी निवृत्ति होजाती है, अर्थात् अपने बिम्बमें प्रतिबिंब लय होजाता है। प्रतिबिंबके निवृत्त होनेके समकालमें ही अज्ञान भी तिस उपा-धिको त्याग देता है वही मोक्ष है। "जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" यह श्रुति भी इसमें प्रमाण है, इस पक्षमें अज्ञानका संबन्ध ही बंध है, तिसकी निवृत्ति मोक्ष है ॥ ३ ॥

अनेकजीववादमें अब चतुर्थ मतको दिखाते हैं:-

अविद्या अनेक हैं, तदुपाधिक जीव भी अनेक हैं जिस जीवकी आत्मविद्याकरके अविद्या निवृत्त होजाती है, वही मुक्त होजाता है । जिसकी अविद्या निवृत्त नहीं होती है तिसको बन्ध वनाही रहता है और अविद्याका नाश होनेपर तिसके नाशके संस्कार बाकी वने रहते हैं:। इसलिये जीवन्मुक्ति भी बनजाती है । विदेहमुक्तिमें वह संस्कार भी नाश होजाते हैं । इस मतमें अज्ञानकी निवृत्तिका नामही मोक्ष है अज्ञानके असंबन्धका नाम मोक्ष नहीं है, और ज्ञानके अनेक होनेमें प्रत्यक्ष ही प्रमाण है । क्योंकि प्रत्येक जीवको 'अज्ञोहं' ऐसा होता है और सबमें अज्ञानके अनेक अंश हैं । अज्ञान एक है, इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देखते हैं, इसलिये अज्ञान एकही है ॥ ४ ॥

प्रश्न—अनेक जीववादमें हम पूंछते हैं, एक जीवकी अविद्यासे यह प्रपंच रचा गया है, या संपूर्ण जीवोंकी अविद्यासे यह प्रपंच रचा गया है ?

उत्तर—कोई तो ऐसा कहते हैं, जैसे अनेक तन्तुओंसे एक पट रचित है. तैसे सब जीवोंकी संपूर्ण अविद्याका परिणाम प्रपंच है । अथवा संपूर्ण अविद्याका विषय जो ब्रह्म है तिसका विवर्त प्रपंच है । जैसे एक तंतुके नाश होजानेसे पटका नाश नहीं होता है, तैसे एकके मुक्त होजानेसे तिसकी अविद्याका नाश होनेपर भी तत्साधारण प्रपंचका भी नाश नहीं होता है । एक तंतुके नाशकालमें विद्यमान अपर तंतुओंसे अपर पटकी तरह अपर सर्व जीवोंकी सर्व अविद्यासे साधारण प्रपंच बना रहता है । इस मतमें संपूर्ण जीवोंकी सर्व अविद्याका प्रपंच एक माना है ॥ १ ॥

अब इसी विषयमें दूसरे मतको दिखाते हैं:—

संपूर्ण अविद्याओंका कार्य्य जो प्रपंच है, सो अविद्याके भेदसे प्रत्येक जीवके प्रति प्रपंच भिन्न २ है और स्व स्व अविद्याकृत गगनादि प्रपंच भी जीव २ का भिन्न २ है यद्यपि जहांपर एक कालमें बहुतसे पुरुषोंको शुक्तिमें रजतका भ्रम हुआ वहांपर सर्व पुरुषोंके सर्व अज्ञानोंसे एक २ जनकी उत्पत्ति बनती है । इससे तो यह साबित हुआ कि जीव २ के अज्ञानके भेदसे अज्ञानकृत रजतका भेद भी कहना बनता है । तथापि तहांपर दैवयोगसे एक पुरुषको शुक्तिके

ज्ञान सहित अज्ञान उपादान रजतका नाश होनेपर भी अपर पुरुषको रजत भ्रम बनाही रहता है। इस हेतुसे वहांपर रजतका भेद अवश्यही मानना पड़ेगा। जैसे शुक्तिके अज्ञानसे शुक्ति रजतका भेद है अर्थात् अपनी २रजत भिन्न २ शुक्तिके अज्ञानसे जैसे रची हुई है तैसे जीव २ का प्रपंच भी अपना २ भिन्न २ ही रचा हुआ है, किंतु एक नहीं है। और एक पुरुषसे दूसरा पुरुष वहांपर कहता है कि, शुक्ति रजतमें जो रजत तुमने देखा है वही रजत हमने भी देखा है यह प्रतीति भी भ्रममात्र है। तैसे जो घट तुमने देखा है सोई घट हमने भी देखा है यह प्रतीति भी भ्रममात्र है। इस मतमें संपूर्ण अविद्याओंका कार्य्य प्रपंचको मान करके भी भिन्न २ ही प्रपंचको माना है ॥२॥

अब इसी विषयमें तीसरे मतको दिखाते हैं:—

गगनादि प्रपंच जीवकी अविद्याका परिणाम नहीं है, किंतु जीवाश्रित जो अविद्या तिस अविद्याके समूहसे भिन्न जो माया सो सर्व जीवोंके साधारण प्रपंचका परिणामी उपादान है, सो माया ईश्वरके आश्रित है और तिस मायाका कार्य्य प्रपंच भी एक ही है इसीसे एकत्व प्रतीति सबकी भ्रमरूप एकही है "माया च अविद्या च मायिनं तु महेश्वरम्" इस श्रुतिसे अविद्यासे भिन्न ईश्वराश्रित माया प्रतीत होती है और जीवोंकी अविद्याका आवरण-मात्रमें और शुक्ति रजतादिक प्रातिभासिक विक्षेपमें उपयोग है। इस मतमें गगनादि प्रपंचको ईश्वराश्रित मायाका कार्य्य मानकर सर्व जीवोंका साधारण प्रपंच माना है ॥ ३ ॥

जीवन्मुक्तिका विचार:—

अविद्यामें आवरण विक्षेप दो शक्तियें हैं। ब्रह्मज्ञान करके आवरण शक्तिका नाश होता है, विक्षेपशक्तिमान् मूल अज्ञानका नाश नहीं होता है। प्रारब्ध कर्मरूप प्रतिबंधकके नाश होनेसे आवरण रहित चेतनसे विक्षेपशक्तिमान् अविद्याका नाश होता है। इस मतसे विक्षेपशक्तिमान् अविद्याको ही अविद्याका लेश माना है। तिस लेशकी निवृत्ति वृत्तिके संस्कारोंके सहित चेतनसे मानी है ॥ १ ॥

और कोई कहता है कि, जसे लशुनके वासनके धोनेसे भी तिसमें लशुनकी वास रहजाती है तैसे तत्त्वबोधसे अंतःकरणका उपादानकारण जो अविद्या तिसकी निवृत्ति होनेपर भी अविद्याजन्य देहादिकोंकी स्थितिका कारण कोई वासना विशेष रहजाती है उसीका नाम लेश अविद्या है। तिसी लेश अविद्या करके देहादिकोंकी प्रतीति जीवन्मुक्तकी बनी रहती है ॥ २ ॥

और कोई कहता है, जैसे दग्धपटमें स्वकार्य्य करनेकी सामर्थ्य नहीं रहती है तैसे तत्त्वज्ञान करके बाधित दृढकार्य्य करनेमें असमर्थ जो मूल अविद्या सोई लेश कहलाती है ॥ ३ ॥

और कोई कहता है कि, विरोधी साक्षात्कारके उदय होनेसे लेश अविद्या भी नहीं रहती है, ब्रह्म साक्षात्कारके उदय मात्रसे कार्य्यसहित वासनासहित अविद्याकी निवृत्ति होजाती है। जीवन्मुक्तिका बोधक जो शास्त्र सो श्रवणविधिका अर्थवादमात्र है। जीवन्मुक्तिमें तिसका तात्पर्य नहीं है किन्तु श्रवणकी प्रवृत्तिमें तिसका तात्पर्य है ॥ ४ ॥

प्रश्न–ज्ञानके उदय कालमें और उपाधिके लयकालमें जीवत्वभावसे रहित जो आत्मा है तिसका ईश्वरसे अभेद होता है, अथवा शुद्ध ब्रह्मसे अभेद होता है?

उत्तर–एक जीववादीका तो इसमें यह मत है कि, एकही जीव है और मूल अज्ञान भी एकही है तिस जीवको जिस किसी अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय होनेसे कार्यसहित अज्ञानका तिसी क्षणमें बाध होता है, अज्ञानके बाध होनेपर निर्विशेष चैतन्यरूपसे अवस्थानका नाम ही मुक्ति है इस मतमें शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्तिका नाम ही मुक्ति है ॥ १ ॥

और जो प्रतिबिंबकोही जीव ईश्वररूप करके मानता है तिसका यह मत है। अनेक उपाधियोंमें एकका प्रतिबिम्ब होनेपर जिस उपाधिका नाश होताहै तिसका प्रतिबिम्ब अपने बिम्बरूपसे स्थित होजाता है दूसरे प्रतिबिम्बसे तिसका अभेद होता नहीं किंतु अपने बिम्बसेही तिसका अभेद होता है। इस मतमें भी मुक्तपुरुषका शुद्ध ब्रह्मसेही अभेद होता है ॥ २ ॥

अब जीवप्रतिविम्बवादीके मतसे कहते हैं:-

जैसे अनेक दर्पणोंमें एक मुखका प्रतिविंब होनेपर भी जब कि; एक दर्पण नष्ट होजाता है तब तिसका प्रतिविंब विंबरूपसे स्थिर होजाता है। मुखमात्र रूपसे स्थित नहीं होता है, किन्तु तिस कालमें अपर दर्पणोंकी समीपतासे मुखके प्रतिविंबत्वका अभाव होता नहीं है, तैसे एक ब्रह्म चेतनका अनेक उपाधियोंमें प्रतिविंब होनेपर भी एक उपाधिमें आत्मज्ञानके उदयकालमें तिस उपाधिका बाध होनेसे तिसके प्रतिविंबका सर्वज्ञ सर्वकर्ता सर्वेश्वर सत्यकामादि गुणोंवाले विंबरूपसे तिसका अभेद होजाता है। यद्यपि अविद्याके अभाव होनेसे सत्यकामादि गुणविशिष्टकी प्राप्ति संभव भी नहीं है और ईश्वरका ईश्वरत्व और सत्यकामादि गुणविशिष्टत्व स्वअविद्याकृत नहीं है, किन्तु बद्ध पुरुषकी अविद्याकृत है इसलिये सत्यकामादि गुणोंका कथन भी बन जाता है ॥ ३ ॥

चित्तवृत्ति कहती है:-हे विवेकाश्रम ! एक वेदांतमें आपने बहुतसे मत कहे हैं और हरएक मतवालोंने जीव ईश्वरका स्वरूप भिन्न २ तरहका माना है और मुक्तिमें भी कुछ फरक माना है, तब किसका मत ठीक है और किसका ठीक नहीं है और किसके मतमें विश्वास करनेसे कल्याण होता है ? विवेकाश्रम कहते हैं-हे चित्तवृत्ते ! सबके ही मत ठीक हैं, क्योंकि सबका तात्पर्य आत्मबोधमें है। अपनेको ब्रह्मरूप निश्चय करनेसे पुरुषका कल्याण होता है। सो सबका तात्पर्य जीवको ही ब्रह्मरूप कथन करनेमें है। किसी मतसे तुम अपनेको ब्रह्मरूप निश्चय करलेओ सो कहा भी है:-

यया यया भवेत्पुसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ।
सा सैव प्रक्रिया साध्वी ज्ञेया सर्वात्मना बुधैः ॥ १ ॥

जिस रीतिसे पुरुषोंको प्रत्यगात्माका बोध हो वही साध्वी प्रक्रिया तिसके लिये बुद्धिमानोंको जानने योग्य है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! पूर्वोक्त सर्वमतोंका तात्पर्य अद्वैत आत्माके बोधमें है, वह बोध किसी रीतिसे हो वही रीति उत्तम है। विना अद्वैत बोधके कदापि मुक्ति नहीं होती है। और जितने भेदवादी मत हैं, यह सब बन्धनमें फँसानेवाले हैं, छुडानेवाले नहीं हैं। इसलिये भेदवादियोंका संग भी मोक्षका विरोधी है।

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ १ ॥

किसी देशमें मोक्षका वास नहीं है न किसी ग्रामके भीतर मोक्षका वास है किंतु हृदयमें जो अज्ञानकी ग्रन्थि है तिसके नाशका नामही मोक्ष है ॥ १ ॥

अनात्मभूते देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनाम् ।
साऽविद्या तत्कृतो बंधस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ॥ २ ॥

अनात्मरूप जो देहादिक हैं उनमें जो जीवोंकी आत्मबुद्धि है उसीका नाम अविद्या है तिस अविद्याकृत ही बन्ध है, तिसके नाशका नाम मोक्ष है ॥२॥

कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्तितः ।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥ ३ ॥

कामनाओंका जो हृदयमें निवास है तिसका नाम संसार है । उन कामनाओंका जो सर्वरूपसे नाश होजाना है, तिसीका नाम मोक्ष है ॥ ३ ॥

हे चित्तवृत्ते ! और सब मतोंवालोंकी मुक्ति अनित्य है, क्योंकि वह सब मोक्षावस्थामें भी भेद मानते हैं और लोकांतरकी प्राप्तिको वह मोक्ष मानते हैं । इसीसे उनकी मुक्ति वेदविरुद्ध भी है और अनित्य भी है और वेदमें कहीं भी मुक्तका पुनरागमन नहीं लिखा है सो दिखाते हैं । व्याससूत्रम्:—

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ १ ॥

श्रुतिमें मुक्तकी अनावृत्ति कही है "नच पुनरावर्तते नच पुनरावर्तते" मुक्तहुआ पुरुष फिर हटकरके संसारमें नहीं आता है, फिर हटकरके संसारमें नहीं आता है ॥ १ ॥ गीतायामपि—

यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ।

जिस पदको प्राप्त होकर फिर लौटकर नहीं आता है, वही मेरा परम स्वरूप है । सांख्यसूत्रम्:—

न मुक्तस्य पुनर्बंधयोगोपि अनावृत्तिश्रुतेः ।

मुक्त पुरुषको फिर बंधका सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि प्रतियोंमें अनावृत्ति शब्द श्रवण किया है ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम् ॥ १ ॥

जिस कालमें विद्वान्के हृदयकी ग्रंथियां सब भेदन होजाती हैं, इससे अनंतर वह अमृत अर्थात् मोक्ष होजाता है, यही वेदका अनुशासन है ॥ १ ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः।
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ॥ १ ॥

परब्रह्मको जानकर संपूर्ण पाशोंसे छूट जाताहै, अविद्या आदिक क्लेशोंके नाश होनेसे जन्म मरणसे छूट जाता है ॥ १ ॥

हे चित्तवृत्ते ! मुक्त पुरुषका पुनरागमन किसी प्रकारसे भी नहीं होता है, क्योंकि अनेक श्रुतियें इसमें प्रमाण हैं। उनमेंसे कुछ पीछे दिखाईं और अब युक्तिसे भी दिखाते हैं:—मुक्त होजानेपर कोई कर्मोंका संस्कार बाकी रहता है या नहीं रहता है ? यदि कहो रहता है, तब मुक्त न हुवा, क्योंकि मुक्त नाम कर्मबन्धनसे छूटजानेका है; जिसके ज्ञानरूपी अग्नि करके संपूर्ण कर्मोंका नाश होजाय वही मुक्त कहाता है। जिसका कोई एक कर्म शेष रहजाय वह मुक्त नहीं कहाता है, क्योंकि जन्मका हेतु तो कर्म है, वह तो तिसका शेष बैठा है तब मुक्त कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है। यदि कहो मुक्त पुरुषका कोई कर्म शेष नहीं रहता है, अर्थात् कोई भी कर्मोंका संस्कार नहीं रहता है, तब फिर तिसका पुनरागमन नहीं बनता है। क्योंकि जन्मका हेतु जो कर्मोंका संस्कार वह तो तिसके बैठे हैं; फिर मुक्त कैसे होसक्ता है किंतु कदापि नहीं होसक्ता है।

चित्तवृत्ति कहती है, हे विवेकाश्रम ! आपने पीछे आत्माको प्रकाशरूप कहा है और अज्ञानको तमरूप करके कहा है। जैसे प्रकाशरूप सूर्य्यमें तमरूप अंधकार किसी प्रकारसे भी नहीं रहसक्ता है, तैसे प्रकाशरूप चेतनमें

भी अज्ञान नहीं रहसक्ता है तब फिर चेतनके आश्रित होकर कैसे अज्ञान रहता है मेरे इस संशयको तुम दूर करो । वैराग्याश्रम कहते हैं, हे चित्तवृत्ते ! यह शंका भेदवादियोंकी है, जो भेदवादी ऐसी शंकाको करते हैं, उनसे हम पूछते हैं ईश्वरको तो वह भी प्रकाशस्वरूप मानते हैं और जगत्को तमरूप करके मानते हैं । प्रकाशस्वरूप ईश्वरमें तमरूप जगत् कैसे रहसक्ता है ? फिर प्रकृतिको वह जड मानते हैं, जो जड होता है वही तमरूप भी होता है, वह प्रकृति तिस व्यापक चेतनमें कैसे उनके मतमें रहती है ? फिर शुद्ध ईश्वरमें वह इच्छादिक गुणोंको मानते हैं, शुद्धमें वह इच्छा आदिक गुण कैसे रहते हैं? यदि रहेंगे तब तिसकी शुद्धता न रहेगी और जीवके साथ गुणों करके तुल्यता भी होजायगी । क्योंकि जीवभी इच्छा आदिक गुणोंवाला है फिर व्यापक प्रकाशस्वरूप चेतनमें अंधकाररूपी रात्रि कैसे रहती है ? यदि कहो तिस ईश्वरमें प्रकृति और जगत् तथा रात्रि नहीं रहती है तब ईश्वर व्यापक सिद्ध नहीं होगा। फिर उन भेदवादियोंका आत्मा भी चेतन है, शुद्ध है क्योंकि जो चेतन होता है वह शुद्धभी होता है तब फिर जिस कालमें तिसमें एक वस्तुका ज्ञान रहता है तिसकालमें इतर वस्तुओंका अज्ञानभी रहता है और ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ति करोडों पदार्थोंका अज्ञान सदैवकालमें तिसमें बना रहता है और यह तो आप कहही नहीं सक्ते हैं जो उसमें संपूर्ण पदार्थोंका ज्ञानही बना रहता है यदि ऐसे कहोगे तब तुमको सर्वज्ञ होना चाहिये, सो तो नहीं है इसीसे सिद्ध होता है कि तुम्हारे आत्मामें अनंत पदार्थोंका अज्ञान बैठा है, वह फिर कैसे रहता है ? और यदि कहो वह अज्ञान इस बाहरके तमकी तरह नहीं है तब हमारा अज्ञान भी बाहरी तमकी तरह नहीं है ! इससे विलक्षण है । जैसे तुम्हारा अज्ञान तुम्हारे चेतनमें रहता है तैसे हमारा अज्ञानभी चेतनके ही आश्रित रहता है । यदि कहो हमारा आत्मा शुद्ध नहीं, तब हम पूछते हैं कि, तुम्हारे आत्माको अशुद्ध किसने किया है । एक पदार्थ जो शुद्ध होता है सो दूसरे पदार्थके सम्बन्धसे अशुद्ध होजाता है; जैसे शुद्ध जल मलके सम्बन्धसे या किसी और दुर्गंधिवाले पदार्थके सम्बन्धसे अशुद्ध होसकता है क्योंकि वह दोनों सावयव पदार्थ हैं । आत्मा निरवयव निराकार तिसके साथ दूसरे मलिन पदार्थका सम्बन्धही किसी प्रकारसे नहीं बनता है । तब वह अशुद्ध कैसे,

होगया ? सावयवका निरवयवके साथ संयोग या समवाय कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है, क्योंकि संयोगसंबंध सावयव पदार्थोंकाही होता है सावयव निरवयवका संयोगसम्बन्ध किसी प्रकारसे भी नहीं होता है । फिर कार्यकारणका समवायसम्बन्ध होता है, सो चेतन किसी भी जडकार्य्यका उपादानकारण नहीं है और जड चेतनका कोई सम्बन्ध भी माना नहीं है, तब कैसे तुम्हारा आत्मा अशुद्ध होगया यदि कहो कर्मोंके संस्कार तिसमें रहते हैं इसीसे वह अशुद्ध होगया है, सोभी नहीं । क्योंकि विना शरीरके केवल आत्मा कर्म कर्ताही नहीं है और लोकमें भी शरीरकोही कर्म करते सब कोई देखता है, आत्माको किसीने नहीं देखा और शरीरके किये हुए कर्म आत्माको लग भी नहीं सक्ते हैं । क्योंकि ऐसा नियम है । यज्ञदत्तका कर्म देवदत्तको नहीं लगसक्ता है । यदि कहो शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध होनेसे शरीरकरके करे हुए कर्म आत्मामें चलेजाते हैं, सोभी नहीं क्योंकि शरीरके साथ संयोगादि सम्बन्ध निरवयव चेतनके वनतेही नहीं हैं । यदि कहो कल्पित सम्बन्ध मानेंगे तब तुम्हारा मतही जाता रहेगा और फिर जैसे कल्पित सम्बन्ध शरीरका आत्माके साथ मानते हो ऐसेही तुमको कल्पित सम्बन्ध अज्ञानकाभी मानना पडैगा । यदि कहो आत्मा अशुद्ध नहीं है, भ्रांति करके अपनेको अशुद्ध मानता है तब उसी भ्रांतिको हम अज्ञान कहते हैं, फिर शुद्धको भ्रांति कैसे होगई और तिस भ्रांतिका स्वरूप क्या है ? यदि कहो वह भ्रांति अनादि है और कुछ कही नहीं जाती है, तब फिर उसीको अनादि अनिर्वचनीय अज्ञान क्यों नहीं तुम मान लेते हो ? यदि प्रकाशस्वरूप आत्मा अज्ञानका विरोधी होता तब तुम्हारे आत्मामें अनेक पदार्थोंका अज्ञान और भ्रांति कैसे रहती ? और रहती है इसीसे सिद्ध होता है आत्मा अज्ञानका विरोधी नहीं हैं । जैसे जीवात्मा अज्ञानका विरोधी नहीं है, तैसे ईश्वरात्माभी अज्ञानका विरोधी नहीं है । क्योंकि समसत्ताक पदार्थ परस्पर विरोधी होते हैं, विषमसत्ताक पदार्थ परस्पर विरोधी नहीं होते हैं । जैसे एक अधिकरणमें समसत्तावाले अर्थात् व्यावहारिक सत्तावाले घट पट दो पदार्थ नहीं रहसक्ते हैं, जिस जगह पर घट रक्खा

रहेगा, उसी जगहमें पट नहीं रक्खा जाता है; किंतु उस जगहसे दूसरी जगहमें पट रक्खा जावैगा। परन्तु विषमसत्तावाले दो पदार्थ एकही जगहमें रह जाते हैं जैसे व्यावहारिक शुक्तिमें प्रातिभासिक रजत रहती है। शुक्तिकी व्यावहारिक सत्ता है, रजतकी प्रातिभासिक सत्ता है। फिर जैसे व्यावहारिक अन्तःकरणमें प्रातिभासिक स्वप्नके पदार्थ रहते हैं तैसेही पारमार्थिक सत्ता चेतनकी है। प्रातिभासिक सत्ता अज्ञानकी है, वह अज्ञान भी चेतनमें रहसक्ता है। क्योंकि चेतन अज्ञानका साधक है, बाधक नहीं है। जैसे सामान्य अग्नि सब काष्ठोंमें रहती है, परन्तु काष्ठका विरोधी नहीं है, अर्थात् काष्ठको जलाती नहीं है, किन्तु विशेष अग्नि जो कि प्रज्वलित हो रही है वही काष्ठोंकी विरोधी है, तथा काष्ठोंको जला देती है। तैसे सामान्य चेतन भी किसीका विरोधी नहीं है, किन्तु वृत्ति प्रतिबिंबित जो विशेष चेतन है, वही अज्ञानका विरोधी है अर्थात् अज्ञानका नाशक है। हे चित्तवृत्ते! इस रीतिसे चेतनमें अज्ञान रहता है वह अज्ञान भी कल्पित ही है केवल चेतन ही नित्य है। और सदैवकाल एक रस अपनी महिमामें ज्योंका त्यों स्थित रहता है। चित्तवृत्ति कहती है—हे भ्रातः! तुम्हारी कृपादृष्टिसे और तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंको सुनकर मैं कृतार्थ होगई हूं। अब मेरेको कुछ भी संदेह नहीं रहा है मैंने आपकी दयादृष्टिसे अपने आत्माको जान लिया है। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

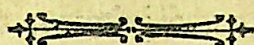
दोहा।

सँवत एक अरु नव पुनि, पञ्चहि नव पुनि आन।
सिंह मास एकादशी, पूर्ण ग्रन्थ यह जान॥ १ ॥

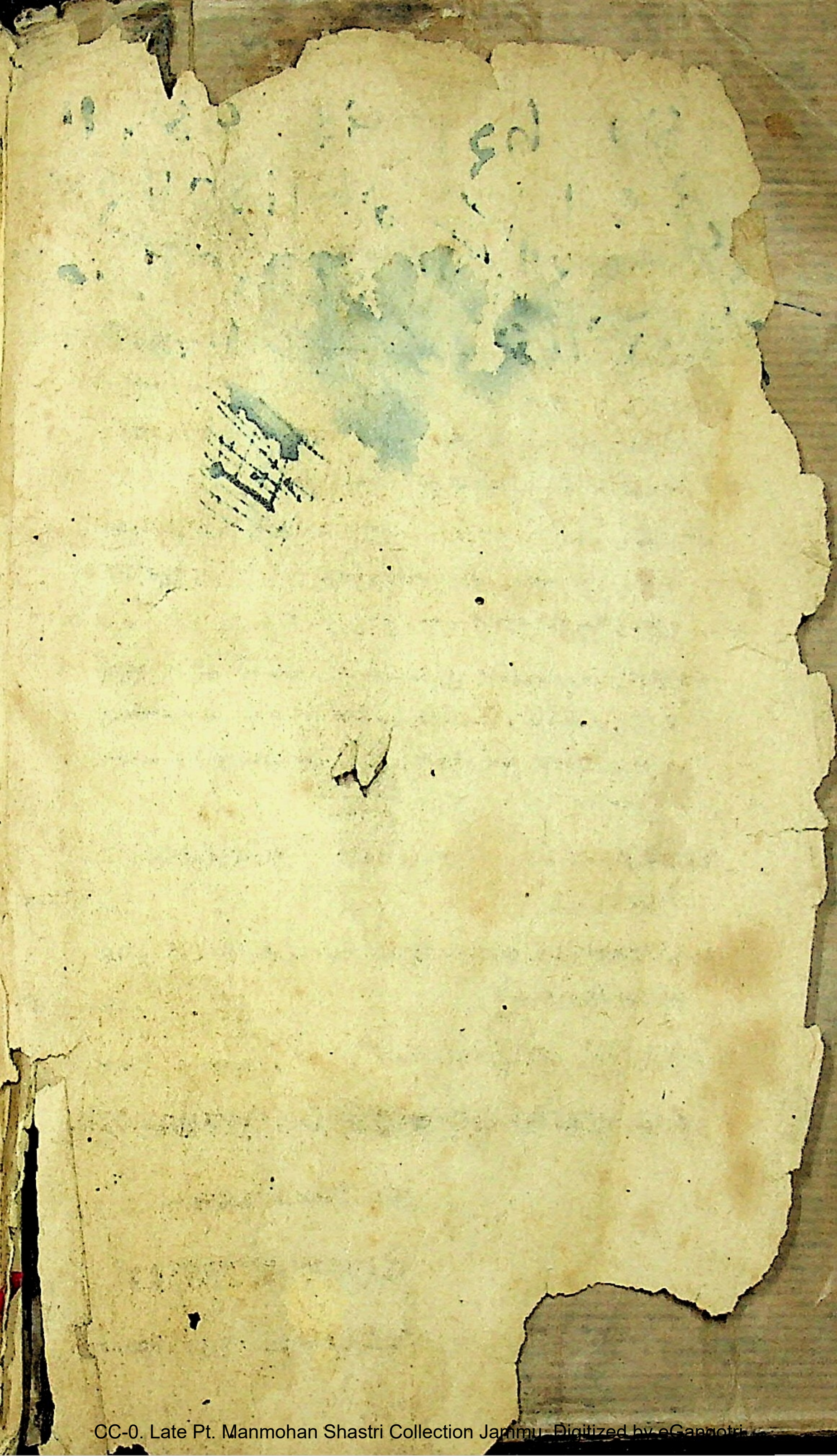
इति श्रीस्वामिहंसदासशिष्येण स्वामिपरमानन्दसमाख्याधरेण विरचिते ज्ञानवैराग्यप्रकाशनामकग्रन्थे ज्ञाननिरूपणं नाम द्वितीयः किरणः ॥ २ ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

विक्रय्यपुस्तकें (वेदान्तग्रन्थ-भाषा)



नाम.	कि. रु. आ.
अनुभवप्रकाश-(वेदांत) योगेश्वर श्री १०८ बनानाथजीकृत मारवाडी भाषा इसमें-गुरुकी महिमा, योगीकी प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनकी चेतावनी, वेदान्तके पद, तत्त्वमस्यादि वाक्योंका सार, आसावरी, सोरठ, वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें वर्णन किया है.	०-१०
अभिलाखसागर-भाषामें स्वामी अभिलाखदास उदासी कृत । इसमें वन्दनविचार, ग्रन्थविचार, मार्गविचार, भजनविचार, जडब्रह्म-विचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकारब्रह्मविचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमान ब्रह्मविचारादि विषय अच्छी रीतिसे वर्णित हैं	१-८
अध्यात्मप्रकाश-श्रीशुकदेवजीप्रणीत-कवित्त, दोहे, सोरठे, छन्द, चौपाई इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ है	०-३
अमृतधारा-वेदान्त भाषाछन्दोंमें भगवानदास निरंजनीकृत वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखीगई है	०-१०
आत्मपुराण-भाषामें दशोपनिषद्का भावार्थ श्रीमत्परमहंस परिव्राज-काचार्य चिद्घनानंद स्वामीकृत	१२-०
आनंदामृतवर्षिणी-आनंदगिरि स्वामीकृत-गीताके कठिन शब्दोंका प्रतिपादन अर्थात् यह वेदांतका मूल है.	०-१२
एकादशस्कन्ध-भाषामें चतुर्दासजी कृत भागवतके एकादशस्कंधकी वेदांत रसमय कथा सुगम रीतिसे वर्णित है	०-१२
गर्भगीताभाषा-श्रीकृष्णार्जुनसंवाद अत्यंत स्पष्टरीतिसे लिखा गया है	०-१
गुप्तनादभाषा-मिसेस एनीबिसेण्टकृत-फ्रीमेशन थियोसोफी भैरवी इत्यादिका सार	०-१॥



४७॥ ७२॥ ४३॥ ४२॥
२९॥ ४७॥ ३०॥ २८।
३४॥ ४२॥ १५६॥ २०॥ ३७॥
२७॥ २०॥ २६ २८॥ ७८॥



East or weast
Home is the best

